प्रथम सस्करण ३२००
७ अप्रेल, १९६०
(महावीर जयन्ती)

मूल्य पाँच रुपये मात्र

मुद्रक
प्रिमियर प्रिन्टिग प्रेस
जालूपुरा जयपुर

प्रकाशकीय

पण्डित प्रवर श्री दौलतरामजी कृत छहढाला की सभी छहढालों पर आध्यात्मिक सत्पुरूष श्री कानजीस्वामी के प्रवचन वीतराग विज्ञान के नाम से गुजराती मे प्रकाशित हुए है, उन्हीं का हिन्दी भाषा मे अनुवाद कराकर भाग १, २, व ३ पूर्व मे सोनगढ से प्रकाशित किए गए थे। चुंकि काफी समय से उक्त पुस्तके अप्राप्य् थी अतः हमारे सत्साहित्य प्रकाशन एव प्रचार विभाग ने उक्त तीनों भागों को पुनः प्रकाशित करने का निर्णय लिया जो शीघ्र ही ऑफसेट पद्धति से मुद्रित कराकर आपके हाथों मे हैं।

छहढाला दिगम्बर जैन समाज का सर्वाधिक लोकप्रिय सरल एव बोधगम्य गथ है। अध्यात्म रस से भरपूर यह गंथ 'गागर मे सागर' की उक्ति को चरितार्थ करता है। आज भी दिगम्बर जैन समाज मे सैकडों नर-नारियो को यह गथ कठस्थ है तथा दिगम्बर समाज के सभी परीक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रम मे यह सम्मिलित है।

समयसार आदि आध्यात्मिक गथो की भाति छहढाला भी पूज्य स्वामीजी को अत्यन्त प्रिय था तथा इस पर उन्होने प्रवचन करके इसका अर्त जन-जन तक पहुचाया है।

पूज्य स्वामी जी इस युग के सर्वाधिक चर्चित आध्यात्मिक क्रान्तिकारी महापुरूष हो गये है। वर्तमान मे दृष्टगोचर दिगम्बर जैनधर्म की अभूतपूर्व धर्मप्रभावना का श्रेय पूज्य स्वामीजी को ही है। उनका कार्यकाल दिगम्बर जैन धर्म के प्रचार-प्रसार का स्वर्णयुग रहा है।

यद्यपि आज वे हमारे बीच नहीं है, तथापि उनके प्रताप से निर्मित इकसठ दिगम्बर जिन मदिर एव लाखों की सख्या मे प्रकाशित सत्साहित्य हमे हजारो वर्षों तक सत्य का दर्शन कराता रहेगा।

श्री षट्खण्डागम भाग-4, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय संग्रह, नियमसार, अष्टपाहुड, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, बृहद्द्रव्यसंग्रह, मोक्षमार्ग प्रकाशक, तत्त्वार्थसार, आत्मानुशासन, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पद्मनन्दिपंचविंशतिका, समयसार कलशटीका, नाटक समयसार, छहढाला आदि अनेक ग्रंथों पर प्रवचनों के माध्यम से उन्होंने अनेकान्त, वस्तु स्वातन्त्र्य, कर्ताकर्म सम्बन्ध, क्रमबद्धपर्याय, निमित्त उपादान आदि और जैन दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों की आगम एवं युक्तिसंगत व्याख्या करके जिनशासन की अद्वितीय सेवा की है। उनके प्रवचनों के प्रभाव से जिनागम का प्रत्येक सैद्धान्तिक पहलू तथा जिनागम की प्रतिपादन शैली-स्याद्वाद, निश्चय-व्यवहार तथा प्रमाण-नय-निक्षेप आदि का स्वरूप भी जन-जन में चर्चित हो गया है।

अध्यात्म के गूढ रहस्यों का सांगोपांग विवेचन उनकी वाणी की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। उनके द्वारा प्रतिपादित स्वानुभूति का स्वरूप, विषय एव उसके पुरुषार्थ का विवेचन चिरकाल तक स्वानुभूति की प्रेरणा देता रहेगा।

स्वाध्याय के क्षेत्र मे पूज्य स्वामीजी ने अभूतपूर्व क्राति की है। उनके प्रवचनों के प्रभाव से समाज मे स्वाध्याय की प्रवृति को यथार्थ दिशा मिली है। नय विवक्षापूर्वक जिनवाणी का भावार्थ हृदयगम करते हुए स्वाध्याय करने की परम्परा का विकास उन्हीं की देन है।

छहढाला ग्रथ पर उन्होंने गुजराती भाषा मे प्रवचन किए थे, जिनका सकलन स्व ब्र हरिलाल ने वीतराग-विज्ञान के नाम से किया था। लेखक ने प्रवचनों मे आए विषयों को और अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से उन्हे प्रशनोत्तर के रूप मे विभाजित किया है जो पुस्तक के अन्त मे दिए गए है। इस सुन्दर स कलन के लिए स्व हरिभाई मुमुक्षु समाज मे सदैव स्मरणीय रहेगे।

प्रत्येक ढाल के प्रवचनो का सकलन एक-एक भाग के रूप मे सोनगढ से प्रकाशित हुए थे जिनका हिन्दी अनुवाद वीतराग-विज्ञान

भाग-१, २, व ३ के रूप मे सोनगढ द्वारा ही प्रकाशित किए गये थे । चूकि ये तीनों भाग काफी समय से अप्राप्य थे अतः उक्त तीनों भागों को इस ट्रष्ट द्वारा प्राकाशित करने का निर्णय लिया गया । चौथा भाग तो पूर्व में प्रकाशित हो ही चुका है । अब भाग-५ और भाग-६ का प्रकाशन भी यथाशीघ्र किया जाएगा ।

प्रस्तुत पुस्तक का मूल्य कम करने हेतु जिन महानुभावों ने आर्थिक सहयोग दिया है उनकी सूची पृथक् से प्रकाशित की जा रही है । सभी दान दातारों का हम हृदय से आभार मानते है । इस पुस्तक के प्रकाशन मे लागत की ३० प्रतिशत राशि श्री भगवानजी भाई कचराभाई शाह लन्दन द्वारा प्राप्त हुए हैं, उनके इस सहयोग के लिये उन्हे जितना भी धन्यवाद दिया जावे कम है । प्रकाशन का सम्पूर्ण दायित्व विभाग के प्रभारी अखिल बंसल ने सम्हाला है अतः उन्हे भी धन्यवाद देता हू ।

सभी लोग इस गति से लाभ उठाकर आत्म कल्याण के मार्ग पर चले, इसी पवित्र भावना के साथ ।

नेमीचन्द पाटनी

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची-

१.	श्री भगवानजी भाई कचराभाई शाह लन्दन	८७३३ ००
२.	कुमारी रीता दिनेशचन्द्र शाह, बम्बई	५०० ००
३	श्री जयन्तिभाई भाणजीभाई दोशी, दादर बम्बई	१११.००
४	श्री शामजी नागजी शाह गोरेगांव बम्बई	१११.००
५.	श्रीमती अमृताबेन प्रेमजी जैन, मलाड बम्बई	१११ ००
६	श्रीमती मीना गोयल रायपुर	११० ००
७	श्रीमती राजकुमारी ध प श्री कोमलचन्दजी गोधा, रायपुर	१०१ ००
८.	श्रीमती आशाकुमारी ध. प श्री प्रेमचन्दजी बडजात्या दिल्ली	१०१ ००
९	श्री फूलचन्दजी जैन, बम्बई	१०१.००
	कुल योग	६६७० ००

आत्माके हितरूप मोक्षमार्गका उपदेश
हे जीव ! तू मोक्षमार्गमें लग ।

वीतरागविज्ञान मंगलरूप है और तीनों लोकके जीवोंको वही सारभूत है, उसीके द्वारा पंच परमेष्ठीपदकी प्राप्ति होती है। ऐसे वीतरागविज्ञानको मंगलरूपसे नमस्कार करके पं. श्री दौलतरामजीने इस छहढालाका प्रारंभ किया है। जीवने चार गतिमें कैसे कैसे दुःख भोगे, यह पहली ढालमें दिखाया; उन दुःखोंका कारण मिथ्या-श्रद्धा-मिथ्याज्ञान और मिथ्याआचरण है अतः उसको पहचानकर उस मिथ्यात्वादिको शीघ्र छोड़ और आत्महितके सुपथमें लग,—ऐसा दूसरी ढालमें कहा। अब उस आत्महितका पथ क्या है यह दिखाते हैं। आत्महितका पथ कहो या मोक्षका मार्ग कहो, उसका वर्णन इस तीसरी ढालमें करते हैं, उसमें भी सम्यग्दर्शनका वर्णन मुख्य है।

मोक्षमार्गकी आराधनाका उपदेश

[छंद—जोगीरासा]

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता-विन कहिये,
आकुलता शिवमांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव, मग सो द्विविध विचारो,
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥ १ ॥

देखो, अब इसमें मोक्षमार्गके वर्णनका प्रारंभ हो रहा है। इसमें संक्षेपमे भी बहुत सी बातें समझाई हैं, जीवको सुखी होनेके लिये यह प्रयोजनभूत बात है।

आत्माका हित क्या है?—सुख होना, वह सुख कैसा? आकुलतासे रहित अर्थात् निराकुलता ही सुख है। मोक्षदशामें आकुलताका अभाव है अत' वही आत्माको हितरूप है, इसलिये जीवको उस मोक्षके मार्गमें लगना चाहिए।

मोक्षका मार्ग क्या है?—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र मोक्षका मार्ग है, उस मार्गका दो प्रकारसे विचार करो अर्थात् ज्ञान करो। जो सत्यार्थरूप है वह तो निश्चय मोक्षमार्ग है, और उसमे जो कारणरूप या निमित्तरूप है उसको व्यवहार जानो। देखो! यहाँ दो प्रकारके मोक्षमार्ग विचारनेके लिये कहा, परन्तु उनमे सत्यार्थरूप तो एक निश्चयको ही कहा है, अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र ही सच्चा मोक्षमार्ग है, और जो व्यवहार है वह तो उपचार है, वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है।

मोक्षका मार्ग दो नहीं, मोक्षका मार्ग एक ही है। इस संबंधमें पं. श्री टोडरमलजीने मोक्षमार्ग प्रकाशकमें बहुत अच्छा स्पष्टीकरण किया है। वे कहते हैं कि–

- शुद्ध आत्माका अनुभव ही सच्चा मोक्षमार्ग है
- व्रत–तपादि कोई मोक्षमार्ग तो नहीं है परन्तु निमित्तादिकी अपेक्षा लेकर उपचारसे उनको मोक्षमार्ग कहा जाता है, अतः उसे व्यवहार कहा है।

꙰ इस प्रकार भूतार्थ–अभूतार्थ मोक्षमार्गपनेसे उसको निश्चय–व्यवहार कहा है,–ऐसा ही मानना अर्थात् भूतार्थ मोक्षमार्गको तो निश्चय मोक्षमार्ग कहा और अभूतार्थको व्यवहार कहा,–ऐसा ही जानना; परन्तु, ये दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं और दोनों उपादेय हैं–ऐसा मानना वह तो मिथ्याबुद्धि ही है।

꙰ तो क्या करना? उसका समाधान करते हुए पंडितजी जैन-सिद्धान्तका रहस्य समझाते हैं कि 'निश्चयनयके द्वारा जो निरूपण किया हो उसको तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान् अंगीकार करना, तथा व्यवहारनयके द्वारा जो निरूपण किया हो उसको असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान् छोड़ना।' निश्चयनयके द्वारा शुद्ध ज्ञानघनस्वभावकी महिमामें लीन होना सो मोक्षका कारण है।

यहाँ मोक्षमार्गका दो प्रकारसे विचार करनेके लिये कहा, उसमें भी यह नियम समझ लेना चाहिए कि सच्चा मोक्षमार्ग एक ही है। इसलिये यहां पहले ही छंदमें पं. श्री दौलतरामजीने कहा 'जो सत्यारथरूप सो निश्चय,' जो निश्चय मोक्षमार्ग है वही सच्चा मोक्ष-मार्ग है। पं. श्री टोडरमलजीने भी यही कहा है कि 'मोक्षमार्ग तो दो नहीं हैं किन्तु मोक्षमार्गका निरूपण दो प्रकारसे है। जहां सच्चे मोक्षमार्गको मोक्षमार्गरूपसे निरूपण किया है वह निश्चय मोक्षमार्ग है, तथा जहां पर जो मोक्षमार्ग तो नहीं है परन्तु मोक्ष-मार्गका निमित्त है अथवा सहकारी है उसको उपचारसे मोक्षमार्ग कहा जाय तो वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। निश्चय–व्यवहारका सर्वत्र

ऐसा ही लक्षण है, अर्थात् जो सच्चा निरूपण है सो निश्चय, और उपचार निरूपण है सो व्यवहार। इसप्रकार निरूपणकी अपेक्षासे दो प्रकार जानना, परन्तु एक निश्चय मोक्षमार्ग है तथा एक व्यवहार मोक्षमार्ग है—ऐसे दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। निरूपण दो प्रकारसे है परन्तु मार्ग तो एक ही है। निश्चय मोक्षमार्ग एक ही सच्चा मोक्षमार्ग है। श्री कुन्दकुन्दस्वामीने समयसारमें जगह जगह पर यह बात स्पष्ट समझायी है कि भूतार्थस्वभावके आश्रयसे ही जीव सम्यग्दृष्टि होता है, निश्चयनयके आश्रयसे मुनिवर मोक्षको साधते हैं। अहो, समयसारमें तो आचार्यदेवने मोक्षका मार्ग खोलकर रखा है। हजारों शास्त्रोंका भण्डार समयसारमें भरा है।

वीतरागी देव–गुरु–धर्मकी श्रद्धा, नव तत्त्वका ज्ञान और व्रत–समितिरूप चारित्र—ऐसा जो व्यवहार उसे निश्चयका कारण कहा, परन्तु उसका अर्थ ऐसा न समझना कि निश्चयके ज्ञानके विना अकेला व्यवहार करते करते वह निश्चय मोक्षमार्गका कारण हो जायगा। निश्चयरहित व्यवहारमें तो कारणका उपचार भी नहीं आता। कार्यके विना कारण किसका? निश्चयपूर्वक जो व्यवहार है उसे उपचारसे कारण कहा जाता है। और शुद्ध आत्माके आश्रयसे जो सम्यक् रुचि–ज्ञान व लीनता हुई वह सच्चा मोक्षमार्ग है। ऐसे मोक्षमार्गको जानकर हे जीव! उसकी आराधनामें अपने आत्माको जोड़। आत्माके आश्रित जो रत्नत्रय है उसीसे मोक्ष प्राप्ति होती है, उसीमें निराकुल सुख है और वही आत्माका कल्याण है।

'सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्राणि मोक्षमार्गः' उसका यह वर्णन है। मोक्ष क्या है? और मोक्षका उपाय क्या है? ये दोनों बातें

एक श्लोकमें दिखा दी हैं। आत्माका हित क्या है?–मोक्ष। सर्वार्थसिद्धिमें पहले सूत्रके उपोद्‌घातमें उसका बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

जिसको अपने हितकी भावना जागृत हुई है ऐसा कोई निकट भव्य मुमुक्षु जीव रमणीय वनमें गया और वहां निर्ग्रंथ मुनिराजसे विनयपूर्वक मोक्षका मार्ग पूछा।

कैसे हैं मुनि? जो आत्माके ध्यानमें बैठे हैं और बिना बोले वीतरागीमुद्रासे ही मानों मोक्षका मार्ग दिखला रहे हैं;–ऐसे मुनिराजके निकट जाकर शिष्य विनयसे पूछता है—प्रभो! आत्माका हित क्या है?

श्रीगुरु प्रसन्नतासे उसे समझाते हैं कि हे वत्स! आत्माका हित मोक्ष है।

तब शिष्य फिरसे पूछता है कि प्रभो! उस मोक्षका उपाय क्या है?

उसके उत्तरमें मोक्षशास्त्रका पहला सूत्र कहा है कि–'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।'

इस तीसरी ढालके पहले छंदमें भी यही बात की है कि—

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता-विन कहिए;
आकुलता शिवमांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिए।

आत्माका जो निराकुलस्वभाव है वही सुख है; आत्माका पूर्ण अतीन्द्रियसुख उसका नाम मोक्ष और वही आत्माका हित है। लोग बाहरमें जो सुख मानते हैं वह सुख नहीं है, बाह्यपदार्थकी ओर वृत्ति वह तो आकुलता है, दुःख है। पाप रागमें आकुलता है, एवं

पुण्यरागमें भी आकुलता ही है, अतएव दुःख ही है, उसमें सुख नहीं है। [illegible] पुण्य दोनों प्रकारकी आकुलतासे रहित जो सहज ज्ञान–आनंदमय आत्मस्वभाव है उसमें एकाग्रताके द्वारा जो शांत–निराकुल–चेतनरसका अनुभव होता है वह सुख है; ऐसे सुखकी पूर्ण प्राप्ति वही मोक्ष है। उसको पहचानकर उसके मार्गमें लगना चाहिए।

उस मोक्षका मार्ग क्या है?–तो कहते हैं कि–

सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चरन शिव-मग सो द्विविध विचारो;
जो सत्यारथरूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।

पुण्य एवं पाप दोनोंमें आकुलता होनेसे उनको मोक्षमार्गमें-से निकाल दिया है। संपूर्ण निराकुल सुखके अनुभवस्वरूप जो मोक्ष उसकी प्राप्तिका मार्ग भी निराकुल भावरूप ही है। सच्चा मोक्षमार्ग निराकुल अर्थात् रागरहित ही है। उसके साथ जो राग-सहित श्रद्धा–ज्ञान–आचरण हो उसको मोक्षमार्गका कारण कहना सो व्यवहार है। जो व्यवहार–रत्नत्रय है वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग नहीं है, नियमरूप मोक्षमार्ग वह नहीं है। रागसे पार आत्माके स्वभावमें प्रविष्ट होकर जो सम्यक् श्रद्धा–ज्ञान–चारित्र हुआ वह निश्चय–मोक्षमार्ग है; वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग है, मोक्षके लिये वह नियमसे करने योग्य कार्य है; अत. कहा है कि 'शिवमग लाग्यो चहिए।' शुभरागमें लगे रहनेके लिये न कहा, परन्तु आत्माके सम्यक् श्रद्धा–ज्ञान–चारित्ररूप निश्चयमोक्षमार्गमें लगना कहा, उसीमें आत्माका हित व सुख है।

सुख तो आत्माका स्वभाव है; राग आत्माका स्वभाव नहीं है; अतः राग आत्माके सुखका कारण नहीं हो सकता। सुख जिसका स्वभाव है उसको जाननेसे-अनुभवमें लेनेसे ही सुख होता है। जीव सुख चाहते हैं परन्तु अपने सुखस्वभावको भूलकर वह रागमें या संयोगमें सुख शोधते हैं। अरे भाई! सुख रागमें होता है? कि वीतरागतामें? वीतरागता ही सुख है उसको जीवने कभी नहीं जाना। जिसने रागमें या पुण्यमें सुख माना उसको मोक्षकी श्रद्धा नहीं है। इसलिये कहा कि सुख तो आकुलता रहित है और ऐसे सुखके लिये शिवमार्गमें लगे रहना चाहिए। आत्माके ऐसे अतीन्द्रिय-सुखको धर्मी जीव ही जानते हैं; और स्व-परके भेदज्ञानपूर्वक वीतराग-विज्ञानसे ही वह सुख अनुभवमें आता है।

पहली ढालमें चार गतिके दुःख दिखाये; दूसरी ढालमें उन दुःखके कारणरूप मिथ्यात्वादिको छोड़कर आत्महितके पथमें लगनेके लिये कहा; अब इस तीसरी ढालमें आत्महितका उपाय दिखाते हैं। पूर्वाचार्योंके कथनका सार लेकर पंडितजीने इस छहढालारूपी गागरमें सागर भर दिया है; संस्कृत-व्याकरण आदि न आते हों तो भी जिज्ञासु जीव समझ सके ऐसी सुगम शैलीसे हिन्दी भाषामें प्रयोजनभूत कथन किया है।

आत्माका कल्याण कहो, हित कहो या सच्चा सुख कहो, सब एक ही है। जिस भावसे अतीन्द्रियसुख हो वही आत्महित है; इसके बिना और कहीं भी शरीरमें-धनमें या प्रतिष्ठा आदिमें सुख नहीं है, उनके लक्षमें तो आकुलता है परन्तु अज्ञानी उसमें सुख

मानते हैं। पुण्य बाँधनेके भावमें आकुलता है और उस पुण्यके फल भोगनेमें भी आकुलता है, सुख उसमें कहीं भी नहीं है। बाह्य विषयोंके विना आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है। ऐसे चैतन्यस्वरूप आत्माके अनुभवमें जो वीतरागी निराकुलता है वही सच्चा सुख है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप वीतरागविज्ञानके विना ऐसा सुख किसीको नहीं होता। धर्मी जीवको इन्द्रपदके वैभवमें भी प्रसन्नता नहीं, चैतन्यके आनन्दमे ही प्रसन्नता है।

सुख अर्थात् निराकुलता; अतीन्द्रिय आनन्दका बड़ा पुंज आत्मा है। सुख अपने अन्तरमें है परन्तु उसको भूलकर बाहरमें सुख मानकर जीव हैरान हो रहा है। अरे जीव! तू बाहरमेंसे सुख लेना चाहता है परन्तु तेरे ही अन्तरमें आत्माका जो सच्चा सुख है उसको तू भूल रहा है;–अरे, यह बात तू जरा लक्षमें तो ले। मेरा सुख मेरे आत्मामें ही है–ऐसा लक्ष करते ही बाह्य विषयोंमेंसे (अशुभमेंसे एवं शुभमेंसे) सुख लेनेकी बुद्धि नहीं रहती, और परिणति अंतरमें आत्मसन्मुख होकर अतीन्द्रिय सुख अनुभवमें आता है, ऐसा सुख वही सच्चा सुख है। बाहरमे सुख दिखता है वह तो अज्ञानीकी मात्र कल्पना ही है, मृगमरीचिकामे जल जैसी वह कल्पना मिथ्या है। जैसे हिरण मृगमरीचिकाको पानी समझकर उसे पीनेको दौड़ता है... बहुत दौड़ता है तो भी उसे पानी नहीं मिलता।–कहांसे मिले? वहा पानी हो तब मिले न? वहां पानी है ही नहीं, वहा तो गरमागरम रेत है। अरे मृग! बहुत दूर दूर तक दौड़नेपर भी पानीकी शीतल हवा भी तुझे न मिली, अब तू

सोच तो सही कि तेरेको जो दिख रहा है वह सचमुचमें पानी नहीं है परन्तु तेरी कल्पना ही है, दृष्टिभ्रम है। परन्तु मृगजलके पीछे वेगसे दौड़नेवाले मृगको इतना विचार करनेका अवकाश ही कहां है? उसीप्रकार मृगजल जैसे विषयोंकी ओर झंपापात करनेवाले प्राणियोंको इतना विचार भी नहीं आता कि अरे! अनादिकालसे अशुभ एवं शुभ विषयोंके पीछे दौड़ते हुए भी मुझे जरासा भी सुख क्यों न मिला? सुखकी शीतल हवा भी क्यों न आयी?—कहांसे आवे? उसमें सुख हो तब आये न? विषयोंके वेदनमें तो गरम रेत जैसी आकुलता ही है: उसमें जो सुख दिखता है वह तो अज्ञानीकी दृष्टिका-भ्रम ही है।

बाह्यमें अनुकूलताका होना सो सुख, और प्रतिकूलताका होना सो दु:ख—ऐसा नहीं है: धनवान सुखी और निर्धन दु:खी—ऐसा भी नहीं है, निरोगतामें सुख और रोगमें दु:ख—ऐसा भी नहीं है। बाहरकी दरिद्रतामें न दु:ख है और न लाखों-अरबों रुपयेके ढेरमें सुख है। इन दोनों ओरके झुकावमें आकुलतासे जीव दु:खी है। चैतन्यप्रभु आत्मा ही एक ऐसा है कि जिसमें देखते ही सुख हो। आत्मा ही सुखका भंडार है परन्तु उसकी पहचान नहीं है। सुख तो आत्माका अपना निजवैभव है, जड़वैभवमें वह नहीं होता।

भाई! तुम्हे सुखी होना है न?—हाँ, तो सुख कैसा होता है और उसकी प्राप्ति कैसे होती है यह पहचानना चाहिए। आत्माका जो सहज स्वभाव है उसके बीचमें यदि रागकी आड न लावे, तो तेरा आत्मा स्वयमेव निराकुल सुखरूपसे अनुभवमें आयेगा।

सुखस्वभाव तो आत्मा ही है। निराकुलता है वह सुख है, और वह आत्माकी मुक्तदशा है; अतः सुखके अभिलाषीको मोक्षके मार्गमें लगना चाहिए। मोक्षमार्ग माने रागरहित सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र; मोक्ष निराकुल है और उसका मार्ग भी निराकुल है, रागमें तो आकुलता है—दुःख है।

सिद्ध व अर्हन्त भगवंत बाहरके किसी भी साधनके बिना स्वयमेव अनंत अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव करते हैं। अभी इस समय भी सीमंधर भगवान एवं अन्य लाखों अरिहंत भगवंत ऐसे अनंत आनन्दमें विराजमान हैं; सिद्ध भगवंत अनंत हैं वे लोकके शिखर विराज रहे हैं। प्रत्येक आत्मा ऐसे ही अतीन्द्रियसुखसे भरा है, उसको पहचानकर उसके ही आश्रयसे मोक्षसुख साधनेके उपाय-मे लगना चाहिए। श्री जिनदेवके द्वारा कथित वीतरागी सम्यग्दर्शन –ज्ञान–चारित्र जो कि आत्मशुद्धिरूप है वही सच्चा मोक्षमार्ग है। वीतरागी रत्नत्रय कहो या निश्चयरत्नत्रय कहो, वह मोक्षके लिये नियमसे कर्तव्य है अत उसे 'नियम' कहा है; उसमें रागका अभाव सूचित करनेको 'सार' विशेषण लगाया है; ऐसे शुद्ध रत्न-त्रयरूप जो नियमसार है वही परमसुखका मार्ग है।

अब कहते हैं कि ऐसा जो मोक्षमार्ग है उसका दो प्रकारसे विचार करो : एक सत्यार्थरूप सच्चा मोक्षमार्ग है सो तो निश्चयसे मोक्षमार्ग है, और उसका जो कारण है—सच्चा कारण नहीं परन्तु उपचारकारण है—सो व्यवहार है। जो निमित्तकारण है वह स्वयं मोक्षमार्ग न होते हुए भी उपचारसे उसको मोक्षमार्ग कहना

[ज]ो व्यवहार है; वह सत्यार्थ नहीं है परन्तु असत्यार्थ है, अभूतार्थ है। जो सच्चा मोक्षमार्ग है उसीको मोक्षमार्ग कहना वह सत्यार्थ है, वह निश्चय है।

यहां सत्यार्थको ही निश्चय कहा है यह महत्त्वकी बात है। निश्चयको सत्यार्थ कहा उसका अर्थ यह हुआ कि व्यवहार असत्यार्थ है। निर्विकल्प शुद्ध आत्माके आश्रयसे जो रत्नत्रयरूप शुद्ध परिणति हुई वह मोक्षमार्ग है, वही सच्चा मोक्षमार्ग है—ऐसा समझना। आंशिक शुद्धता पूर्ण शुद्धताका कारण है, इसमें कारण और कार्यकी एक जाति होनेसे यह निश्चयकारण है; परन्तु उसके साथमें जो अशुद्धता है (-शुभराग है) वह तो शुद्धताका सच्चा कारण नहीं है; परन्तु शुद्धताकी साथमें भूमिकाके अनुसार देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा; नव तत्त्वका ज्ञान और पंचमहाव्रतादिके विकल्प होते हैं, उनको भी 'मोक्षमार्गका सहकारी' जानकर (-वे स्वयं मोक्षमार्ग नहीं हैं परन्तु मोक्षमार्गमें साथ साथ रहने वाले हैं अतः सहकारी जानकर) उपचारसे उनको भी मोक्षमार्ग कहते हैं परन्तु वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग नहीं है, अतः उनको व्यवहार कहा, गौण कहा, और असत्यार्थ कहा; वे अशुद्ध हैं, पराश्रित हैं। और शुद्ध आत्माके आश्रयसे रागरहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग है वह निश्चय है, मुख्य है, सत्यार्थ है, शुद्ध है और स्वाश्रित है। इसप्रकार 'दुविध' मार्ग कहा उसमें एक ही सत्यार्थ है—'जो सत्यारथरूप सो निश्चय' एक निश्चय मोक्षमार्ग ही सच्चा है। इसप्रकारसे मोक्ष-मार्गके स्वरूपका जो विचार किया जाय वह विचार सच्चा है; परन्तु

जो व्यवहारको ही सच्चा मोक्षमार्ग समझकर उसमें ही लगा रहे और निश्चय मोक्षमार्गको न पहचाने तो उसको मोक्षमार्गका विचार भी सच्चा नहीं है; वह तो बंधके मार्गको ही मोक्षका मार्ग समझकर उसका सेवन कर रहा है।

निश्चय मोक्षमार्ग एक ही सच्चा मोक्षमार्ग है। निश्चय अर्थात् अकेले शुद्ध आत्मामें रुचि-ज्ञान-एकाग्रता सो यथार्थ वास्तविक शुद्ध उपादानसे प्रगट हुआ सत्य मोक्षमार्ग है, वह नियमसे मोक्षमार्ग है, उसके सेवनसे मोक्ष अवश्य होता है—ऐसा नियम है। और उसके कारणरूप (अर्थात् निमित्तकारणरूप) सो व्यवहार है। ऐसे मोक्षमार्गमें दोनों प्रकार जैसे हैं वैसे जानना चाहिए। दोनोंको 'जानना' चाहिए, परन्तु दोनोंको जानकर आदरणीय तो एक निश्चय सत्यार्थ मार्ग ही है,—ऐसा समझे तब ही दोनोंका सच्चा ज्ञान होता है।

स्वभावके आश्रयसे शुद्ध रत्नत्रयके द्वारा मोक्षको साधनेवाले साधकको अपनी भूमिकाके अनुसार व्यवहार कैसा होता है, देव-गुरु-शास्त्रकी तथा नव तत्त्वकी पहचान कैसी होती है उसे भी पहचानना चाहिए उसको जो अन्यथा माने उसने सच्चे मोक्ष-मार्गको नहीं जाना। परसे विभक्त और स्वभावमें एकत्व ऐसे शुद्धात्माके आश्रयसे जो रत्नत्रयरूप निर्मल पर्याय प्रगटी वह निश्चय मोक्षमार्ग है। उसकी साथमें जो व्यवहाररत्नत्रय है वह स्वयं सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है परन्तु निमित्तरूपसे उसको भी मोक्षमार्ग कहा जाता है, सो वह व्यवहार है, असत्यार्थ है-ऐसा समझना। उस

समयकी शुद्धताको मोक्षमार्ग जानना सो अनुपचार है-सत्य है; और उस समयके शुभरागको मोक्षमार्ग कहना सो उपचार है-असत्य है। मोक्षमार्गी जीवको भूमिकाके अनुसार दोनों प्रकार होते हैं यह दिखानेके लिये 'द्विविध' कहा है; उनमें मोक्षका सच्चा कारण एक ही है, दो नहीं। साधकको निश्चय सम्यक्त्वकी साथमें जो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्रकी पूजनादिका शुभ विकल्प होता है वह बंधका कारण होनेपर भी आरोपसे उसको भी मोक्षमार्ग कहनेमें आता है; मोक्षमार्गके निमित्तका ज्ञान करानेके लिये उसको व्यवहार कहा

व्यवहार कारण है,-परन्तु किसका? कि निश्चय मोक्षमार्गका; अतएव जहां सच्चा मोक्षमार्ग विद्यमान है वहीं पर वह उसका कारण उपचारसे है; परन्तु जहां सच्चा मोक्षमार्ग है ही नहीं वहाँ कारण किसका कहना? निश्चयका तो लक्ष भी न हो और अकेले व्यवहारके सेवनसे मोक्षमार्ग प्रगट हो जाय-ऐसा तो कभी नहीं होता। अतः मोक्षार्थी जीवोंको सच्चे मोक्षमार्गको अच्छी तरह पहचानकर उसका उद्यम करना चाहिए।

आत्माका पूर्ण आनन्द सो मोक्ष; उसकी प्राप्तिका जो उपाय वह मोक्षमार्ग; मोक्षका मार्ग, मोक्षका उपाय, मोक्षका कारण, मोक्षका उद्यम, मोक्षकी क्रिया या मोक्षकी आराधना ये सब एक ही हैं; वही धर्म है। आत्माके श्रद्धा-ज्ञान-लीनतारूप अन्तर्मुख शुद्ध भावसे वह साधे जाते हैं। शुभभाव तो बहिर्मुखवृत्ति है, उसके द्वारा मोक्ष नहीं सधता। स्वाश्रित वीतरागभावसे निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट होता है, और ऐसे निश्चयसहित व्यवहारको उपचारकारण कहनेमें

आता है। जो निश्चय है वही मुख्य है, वही सत्य है; जो व्यवहार है, वह आरोप है, गौण है। परिणति अन्तरमें झुककर ज्ञायक-स्वभावमे मग्न होनेसे अतीन्द्रियसुखका वेदन होता है वही सच्चा परमार्थ-निश्चयमोक्षमार्ग है, और वही शुद्धमार्ग है। ऐसे ही मार्गके सेवनसे तीर्थंकरादि महान पुरुषोंने मोक्षसुख प्राप्त किया है, और मुमुक्षुओंको भी यही मार्ग दिखाया है।

मिथ्यादृष्टिका निश्चय या व्यवहार एक भी नय सच्चा नहीं होता, क्योंकि नय तो सच्चे ज्ञानका प्रकार है। शुद्ध आत्माके ज्ञानके विना प्रमाणज्ञान नहीं होता अर्थात् भावश्रुत नहीं होता; और भाव-श्रुतप्रमाणके विना निश्चय या व्यवहार नय नहीं होता। आत्माका स्वानुभव होने पर मति-श्रुत दोनों ज्ञान एकसाथ सम्यक् हो जाते हैं, उनमेंसे श्रुतज्ञानमें अनन्त प्रकारके नय होते हैं। नय है सो सच्चे श्रुतज्ञानका प्रकार है, परन्तु ज्ञान ही जिसका मिथ्या हो उसको नय कैसा ?—अर्थात् उसको नय होता ही नहीं। अत. मिथ्यादृष्टि जिसको व्यवहार समझकर सेवन करता है वह तो मोक्षमार्गका सच्चा व्यवहार भी नहीं है। विना निश्चयका व्यवहार तो मिथ्या है। शुद्ध आत्मा जैसा है वैसा जानकर प्रतीतिमे लिया तब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ, उसके साथ चारित्रका भी अंश प्रगट हुआ, इसप्रकार मोक्षमार्गका प्रारंभ हुआ। ऐसे जीवको निश्चय-व्यवहार सच्चा होता है। पहले अकेला व्यवहार हो और वह करते करते निश्चय प्रगट हो जायगा—ऐसा नहीं है। उपयोगस्वरूप शुद्धात्माके आलम्बनसे जो शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ वह शुद्ध मोक्ष-

मार्ग है. और उसके साथ जो शुभ रागादि है वह अशुद्ध है, उसको मोक्षमार्गका कारण कहना–सो उपचार है।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यधातु है उसने अपने अनंत आनंदको अपनेमें धारण किया है; ऐसे चैतन्यसमुद्रमें लीन होते ही मोक्षके आनन्दका अनुभव होता है। ऐसे आनन्दका अनुभव हो तभी मोक्षमार्ग प्रगट हुआ ऐसा समझना चाहिए। आत्मा तो रत्नोंकी बड़ी खानि है; उसको खोदनेसे अर्थात् अंतर्मुख होकर अनुभवमें लेनेसे महान रत्न निकलते हैं; अनन्त आनन्दमय रत्न उसमें भरे हैं।

- संसारके जडरत्नोंका तो धर्ममें कोई मूल्य ही नहीं है।
- आत्मामें मोक्षके कारणरूप तीन रत्न हैं—सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र।
- उसका फल केवलज्ञानादि चतुष्टय–सो महारत्न है।
- अनन्त केवलज्ञानपर्यायरूप होनेकी जिसमें ताकत है ऐसा ज्ञानगुण सो महा–महारत्न है।
- और अनन्त गुणरत्नोंसे भरा हुआ जो चैतन्यसमुद्र है वह तो महा–महा–महारत्न, अर्थात् चैतन्यरत्नाकर है।

भाई, ऐसे रत्नोंकी पूरी खानि तुम ही हो; तुम अपने मति-श्रुतज्ञानको अन्तर्मुख करके तुम्हारे ही अंतरमें चैतन्यरत्नके पहाड़को देखो। जीव स्वयं आनन्दका बड़ा पहाड़ है परन्तु दृष्टिदोषके कारण वह अपनेको नहीं देखता। जैसे सामने ही रत्नोंका बड़ा पहाड़ हो परन्तु जिसकी आंखके आड़े तृणका आवरण है वह मनुष्य पहाड़को नहीं देखता, वैसे जीव स्वयं अनंत गुण रत्नोंका बड़ा पहाड़ है,

परन्तु रागमें एकत्वभावनारूप जो तृण अर्थात् मिथ्यात्वका तुच्छ भाव, उसके आवरणके कारण अज्ञानी जीव अपने चैतन्यस्वभावरूप बडे पहाड़को भी नहीं देख सकता। वीतरागविज्ञानके उपदेशके द्वारा ज्ञानी सन्त उसका भ्रम छुड़ाकर उसका सच्चा स्वरूप दिखाते हैं कि जिसकी महिमा मेरुपर्वतसे भी महान है। अरिहंतोंने जो केवलज्ञान प्राप्त किया वह कहांसे आया? क्या बाहरसे आया?—नहीं, अन्दर आत्मामे ही था वह प्रगट हुआ, वैसे प्रत्येक आत्मा अरिहंत भगवान जैसा ही सामर्थ्यवाला है। आचार्यदेव कहते है कि ऐसे अपने आत्माको तुम पहचानो।

जो जानते अरिहंतके द्रव्य गुण अरु पर्यायको।
वे जानते निज आत्मको, अरु मोह पाते क्षयको ॥८०॥

केवलज्ञानी अरिहंत भगवानके द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों शुद्ध चेतनमय हैं, और रागका उनमे सर्वथा अभाव है; उनको पहचाननेसे रागसे भिन्न चैतन्यस्वरूप अपना आत्मा अनुभवमें आता है और सम्यग्दर्शन होता है। अपने आत्माके शुद्धस्वभावका निर्णय, एवं अरिहंतके शुद्धात्माका निर्णय, ये दोनों एकसाथ ही होते हैं। रागसे जो भिन्न है ऐसी ज्ञानपर्यायने अंतरमे ढलकर जब आत्माका अनुभव किया तब उसकी साथमे अरिहंतके व सिद्धके शुद्धात्माका निर्णय भी सच्चा हुआ। इसके पहले अरिहंतके शुद्ध आत्माका निर्णय करनेका जो लक्ष था उसको उपचारसे सम्यग्दर्शनका कारण कहा जाता है। जब परलक्ष छोड़कर अंतरमे आया तभी आत्म-स्वरूपका सम्यक् निश्चय हुआ और तभी भूतनैगमनयसे पूर्वके

रागमिश्रित निर्णयको उसका कारण कहा। बिना निश्चय किसका व्यवहार कहना? निश्चयके लक्षके बिना एकान्त परसन्मुखतासे तो अनंत-बार अरिहंतदेवका विचार किया, धारणा की, वह सम्यग्दर्शनका कारण क्यों न हुआ?—क्योंकि निश्चयका लक्ष नहीं था, निश्चयसे रहित यह सब वास्तवमें व्यवहाराभास ही है, अरिहंतका सच्चा निर्णय उनमें नहीं है। अतः अज्ञानीके शुभरागमें मोक्षमार्गका व्यवहार लागू नहीं होता. उसको मोक्षमार्ग हुआ ही नहीं है। रागके द्वारा मोक्षमार्गका प्रारंभ नहीं होता। रागसे दूर होकर (भिन्न होकर) ज्ञान जब अंतर्स्वभावमें प्रवेश कर तन्मय हो जावे तब शुद्धात्माके अपूर्व अनुभव सहित मोक्षमार्गका प्रारंभ होता है।

ऐसा मोक्षमार्ग जिसको प्रगट हुआ उसका निश्चय और व्यवहार कैसा होता है—उसकी यह बात है। मोक्षमार्ग जिसको हुआ हो उसको दो बात लागू होती हैं—जो रत्नत्रयकी शुद्धता है सो तो यथार्थ मोक्षमार्ग है; और जो शुभराग भूमिकाके अनुसार रहना है वह उपचारसे मोक्षमार्ग है। सच्चा मोक्षमार्ग जहां हो वहां दूसरेमें उसका उपचार लागू हो सकता है। शुद्ध आत्माके आश्रयसे होनेवाला शुद्ध भावरूप निश्चयमोक्षमार्ग ही सच्चा मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई सच्चा मोक्षमार्ग नही है। वीतरागमार्गमे ऐसी वस्तुस्थिति है; इसके बिना अन्य किसी प्रकारसे मोक्षमार्ग सिद्ध नहीं होता।

अहो, चैतन्य भगवान आत्मा! जिसे लक्षमे लेते ही आत्मामें आनन्द सहित भावश्रुतरूपी अंकुर प्रगट होता है; भावश्रुत वह केवलज्ञानवृक्षका अंकुर है; ज्ञानका यह अंकुर किसी रागके विकल्प-

मेंसे नहीं आता। रागमेंसे ज्ञानका अंकुर कभी नहीं हो सकता; आत्मा स्वयं बोधबीज स्वरूप है—उसीमेंसे श्रुतका अंकुर आता है; उसके साथ जो शुद्ध दृष्टि है वह सम्यग्दर्शन है, और जितनी रागरहित स्थिरता हुई वह सम्यक्‌चारित्र है;-ऐसा मोक्षमार्ग है। मोक्षका मार्ग अर्थात् आनन्दका मार्ग। आत्मराम निजपदमें रमे सो आनन्दका मार्ग है; परपदमें रमे सो मोक्षमार्ग नहीं है, उसमें आनंद नहीं है। रागादिक भाव तो परपद है, उसमें जो रमे अर्थात उसमें जो सुख माने उसको मोक्षमार्ग नहीं हो सकता। मोक्षका मार्ग तो स्वपदमें ही समाता है। काया और आत्माकी भिन्नताको जानकर निजस्वरूपमें जो समाये-लीन हुए ऐसे निर्ग्रंथ मुनिवरोंका मार्ग वही भवके अन्तका उपाय है, उसीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

मोक्षके मार्गमें भावश्रुतज्ञान होता है, वह भी आनन्दके स्वादसे भरपूर है और स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्ष है। जैसे केवलज्ञान प्रमाण है वैसे श्रुतज्ञान भी प्रमाण है, परोक्ष होने पर भी वह प्रमाण है, और स्वसंवेदनमें तो वह प्रत्यक्ष है। अपने आत्माके अनुभवको साधक जीव स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्ष प्रमाणसे जानते हैं, उसमें उनको कोई सन्देह नहीं। परोक्षरूप प्रमाणज्ञान भी सन्देहसे रहित होता है। जब केवलज्ञानकी ही जातिका, स्वसंवेदन-प्रत्यक्षरूप भावश्रुत-ज्ञान हो तभी मोक्षमार्ग होता है और उसी जीवको सच्चे निश्चय -व्यवहार नय होते हैं।

सम्यक्‌चारित्र सो मुख्य मोक्षमार्ग है।

चारित्र अर्थात् स्थिरता;–किसमें ? निजस्वरूपमें।
निजस्वरूप क्या है उसके ज्ञानके विना स्थिरता नहीं होती।

संसारके कारणरूप शुभाशुभरागसे निवृत्त होकर अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें प्रवृत्ति होना सो सम्यक्‌चारित्र है। आत्मज्ञानपूर्वक ही ऐसा चारित्र होता है, अज्ञानीको नहीं होता–यह सूचित करनेके लिये उसको 'सम्यक्' कहा है।

आत्मा ज्ञानधातुका वीतरागी निधान है, राग उससे भिन्न है। रागादि विकल्प तो अचिद्‌धातु है। अरे, यह अचिद्‌धातुका आभास तो देखो! अज्ञानीको ऐसा भ्रम होता है कि यह विकल्प ही आत्मा है। परन्तु हे भाई! उस विकल्पमें तो चेतना नहीं है, स्व–परको जाननेकी जागृति उसमें नहीं है। तुम ही जागृत चेतनावाले शुद्ध चैतन्यभगवान हो–उसमें विकल्पका प्रवेश नहीं है। —ऐसे आत्माको पहचानकर अनुभव करो, इसके बाद ही उसमें एकाग्रतारूप सम्यक्‌चारित्र होगा। स्ववस्तुके श्रद्धा–ज्ञानके विना एकाग्र होगा किसमें ? चौथे गुणस्थानमें चैतन्यका श्रद्धा–ज्ञान एकसाथ होता है, वहां स्वरूपाचरणदशा भी होती है; मुनिदशारूप चारित्र छठवें-सातवें गुणस्थानमें होता है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन–ज्ञानसहित चारित्र ही मोक्षमार्ग है। चौथे गुणस्थानसे उसका प्रारंभ होता है।

धर्मी जीवको सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों एकसाथ होते हैं। सम्यग्दर्शनकी साथमें जो भाव श्रुतप्रमाण होता है उसमें ही सच्चे नय होते हैं। मोक्षमार्गका उद्यम करनेवाले जीवको नव

तत्त्वके निर्णयका विचार, सच्चे देव-गुरु-धर्मके स्वरूपका विचार इत्यादि शुभभाव होते हैं, और भूतनैगमनयसे उनको भी मोक्ष-मार्गका कारण कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहितकी भूमिकामे भी ऐसे शुभभाव होते है, परन्तु उनमे विरुद्ध (अर्थात् कुदेवादिको माननेका, या जगतको किसीने बनाया ऐसे विपरीततत्त्वको माननेका) भाव उस भूमिकामे नहीं होता,-ऐसा ज्ञान करानेके लिये उस भूमिकाके शुभभावोंको व्यवहारकारण कहनेमे आता है। वहां अकेला शुभराग ही नहीं है अपितु सम्यग्ज्ञानपूर्वक शुद्धताका अंश भी साथमें है। इस प्रकारकी निश्चय-व्यवहारकी संधि मोक्षमार्गमे रहती है। यहाँ निश्चय रहित व्यवहारकी तो बात ही नहीं है, और निश्चय सहितका जो व्यवहार है वह भी मोक्षका सच्चा कारण नहीं है, उपचारसे ही उसको कारण कहते है। सच्चा मोक्ष कारण तो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही है और वह आत्माके अनुभवरूप है।

मोक्षमार्गमें पहले सम्यग्दर्शन और बादमे सम्यग्ज्ञान ऐसा नहीं है, एवं पहले सम्यग्ज्ञान व बादमे सम्यग्दर्शन ऐसा भी नहीं है, शुद्ध आत्माके अवलंबनसे दोनों एक साथ ही हो जाते हैं; तो भी दीपक और प्रकाशकी तरह उनमे कारण-कार्यपना कहा जाता है, सम्यग्दर्शनको कारण और सम्यग्ज्ञानको कार्य कहा है परन्तु वे आगे-पीछे नहीं है, दोनों साथ ही है। स्व-आत्माको ज्ञेय बनानेवाले ज्ञानके साथ उसकी निर्विकल्प प्रतीति भी रहती ही है। जिसकी प्रतीति करते है उसका सच्चा ज्ञान भी साथमे रहता ही है। बिना जानी हुई वस्तुकी श्रद्धा तो गधेके सींग जैसी असत्य है।

सम्यग्दृष्टिके ज्ञानमें ही निश्चय और व्यवहार ऐसे दो नय होते हैं, सम्यग्दृष्टिके वह दोनों नय सच्चे हैं। अज्ञानीका एक भी नय सच्चा नहीं होता। क्योंकि दो नयोंमेंसे जो निश्चयनय है वह तो सत्य वस्तुरूप दिखाता है और व्यवहारनय तो निमित्त आदिका ज्ञान कराता है। श्रुतज्ञानमें अनन्त नय समाते हैं परन्तु साधक जीव उन अनन्त नयोंको भेद करके नहीं जान सकता। प्रयोजन साधनेके लिये संक्षेपमें दो नय—एक स्वाश्रितस्वरूपको जाननेवाला निश्चयनय; और दूसरा पराश्रितभावको जाननेवाला व्यवहारनय: इनमें निश्चयनयके अनुसार जो वस्तुस्वरूप है उसकी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभवसे मोक्षमार्ग सधता है, क्योंकि वह सत्यार्थ है।

किया फिर भी तुझे कुछ भी धर्म प्राप्ति क्यों न हुई? अतः सोच, और समझ कि यह मार्ग सच्चा नहीं है, सच्चा मार्ग उससे भिन्न ही है। वह मार्ग है—वीतरागविज्ञान, जो कि जैन संत तुझे समझाते हैं।

दृष्टि ही जिसकी बंद है, ज्ञानचक्षु ही जिसके खुले नहीं उसको नय कैसा? जो केवल व्यवहारको ही देखते हैं उनको तो रागमें एकत्वबुद्धि हो गई है, राग ही उनको सर्वस्व हो गया है; यदि वह रागको ही सर्वस्व न मानता हो तो रागसे भिन्न दूसरा स्वरूप कैसा है उसका उसको लक्ष होना चाहिए, अर्थात् निश्चयका लक्ष होना चाहिए। और यदि निश्चयका लक्ष हो तो व्यवहारके आश्रयसे कल्याण माने नहीं। निश्चयके लक्षके बिना मोक्षमार्ग कैसा? एकान्त व्यवहारका आश्रय तो संसार है–मिथ्यात्व है। बहिर्मुखदृष्टिवाले अज्ञानीको जो शुभ–विकल्प है वह व्यवहार नहीं है, वह तो व्यवहाराभास है। यहाँ तो मोक्षमार्गके साधनेवाले साधकको निश्चयके साथ जो व्यवहार है उसकी बात है। केवल-ज्ञानके पहले साधकदशामें जो व्यवहार है उसको जो नहीं समझता वह निश्चयाभासी है। मुनिको आत्माके रत्नत्रयकी शुद्धता कैसी होती है और उस भूमिकामें पंचमहाव्रतादि कैसे होते हैं, इन दोनों प्रकारको पहचानना चाहिए उसमें यदि विपरीतता माने तो मुनिकी सच्ची पहचान नहीं होती। उसीप्रकार सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें भी निश्चय और व्यवहार दोनों कैसे होते हैं यह पहचानना चाहिए। जिस भूमिकामें निश्चय–व्यवहारके जैसे प्रकार होते हैं

वैसे यथार्थ पहचानना चाहिए। भाई, यह तो सब तेरे आत्माके ही भाव हैं इनको तुम समझो। समझ माने ज्ञान; ज्ञान माने आत्मा; केवलज्ञान भी समझका ही पिंड है; उसमें कहीं राग नहीं है। ज्ञानकी जाति अपेक्षासे केवलज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों एक जातिके हैं। जैसे रूईकी गठड़ीसे सर्वत्र रूई ही भरी है वैसे आत्मा ज्ञानकी बड़ी भारी गठडी है, ज्ञान ही उसमे भरा है। अरे, जीव स्वयं ज्ञानका ही पिंड होते हुए भी वह ऐसा कहे कि मेरा स्वरूप मेरी समझमे नहीं आता,—यह कैसी बात? मीठे जलके समुद्रमे रहनेवाली मछली ऐसा कहे कि मैं प्यासी हूं-उसके जैसी यह बात है। भाई! रागसे ममत्व छोड़कर शुद्धात्माको तुम्हारी दृष्टिमे लो तो तुम्हें आत्मशुद्धिरूप सम्यग्दर्शन होगा, उसके साथ ही सम्यग्ज्ञान होगा; सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होनेपर ही स्वरूपमें निश्चलतारूप चारित्र होगा,—इस प्रकार मोक्षमार्ग होगा, वही सुख है, और वही जीवका हित है, उसीको धर्म कहते हैं।

आत्मा ही स्वयं सुखस्वरूप है, अत. आत्मामें उपयोग लगानेसे सुखका अनुभव होता है। आत्माका सुख कहीं बाहरमें नहीं है अतः बाह्य पदार्थके आश्रयसे सुख नहीं होता। सुख जहा हो उसीमें उपयोग जोड़नेसे सुख होता है: अर्थात् निश्चयके आश्रयसे सुख होता है, और परके-व्यवहारके-रागके आश्रयसे सुख नहीं होता, अतः निश्चयका आश्रय करना चाहिए और व्यवहारका आश्रय छोड़ना चाहिए।

श्रीमद् राजचन्द्रजी (जो कि ववाणीया ग्राम सौराष्ट्रमें हुए थे)

१७ सालसे भी छोटी उम्रमें यह बात बहुत अच्छे शब्दोंमें लिख गये हैं—

१. स्वद्रव्य और परद्रव्यको भिन्न भिन्न देखो।
२. स्वद्रव्यके रक्षक शीघ्र बनो हो जाओ।
३. स्वद्रव्यमे व्यापक शीघ्र बनो।
४. स्वद्रव्यके धारक शीघ्र बनो।
५. स्वद्रव्यमें रमक शीघ्र बनो।
६. स्वद्रव्यके ग्राहक शीघ्र बनो।
७. स्वद्रव्यकी रक्षाका लक्ष रखो।
८. परद्रव्यकी धारकता शीघ्र तजो।
९. परद्रव्यमे रमणता शीघ्र तजो।
१०. परद्रव्यकी ग्राहकता शीघ्र तजो।

—इसमे प्रारंभके सात बोलके द्वारा स्वद्रव्यका आश्रय करनेका दिखाया है, और पीछेके तीन बोलके द्वारा परद्रव्यका आश्रय छोड़नेको कहा है। इस प्रकार दस बोलोंके द्वारा जैन सिद्धान्तका सारा रहस्य बतलाया है; थोड़े शब्दोंमें बड़ी गम्भीर बात की है।

चैतन्यवस्तु रागादि आस्रवसे रहित है और अजीवकर्मसे भिन्न है, ऐसी अपनी चैतन्यवस्तुको अनुभवमें लेकर जब सम्यग्दर्शन हो तब निश्चयके साथके रागमें आरोप करके उसको व्यवहार कह सकते हैं। परन्तु जो रागसे भिन्न स्वतत्त्वको नहीं जानता और रागमें एकत्व मानता है उसको तो व्यवहार कहां रहा? उसको तो राग ही निश्चय हो गया, अतएव मिथ्यात्व हो गया। पुरुषार्थ

सिद्धिउपायमें कहते हैं कि– अज्ञानीको समझानेके लिये मुनीश्वर अभूतार्थ ऐसे व्यवहारका भी उपदेश देते हैं, परन्तु जो जीव अकेले व्यवहारको ही परमार्थरूप समझ लेता है वह सच्चे उपदेशको नहीं समझता, अतएव उसको देशना फलीभूत नहीं होती। भाई! तुझे परमार्थस्वरूप दिखानेके लिये व्यवहार कहा था, न कि व्यवहारको ही पकड़कर रुकनेके लिये।

जैसा सर्वज्ञदेवने कहा है वैसे स्वतत्त्वको पहचानकर श्रद्धामें व अनुभवमें लेना सो निश्चयमार्ग है; उसके साथमें जो नवतत्त्वका ज्ञान, सच्चे देव–गुरुकी पहचान आदि होते हैं वह व्यवहारमार्ग है। अपने सर्वज्ञस्वभावकी श्रद्धा सो निश्चयसम्यग्दर्शन और अपनेसे भिन्न सर्वज्ञपरमात्माकी श्रद्धा सो व्यवहारसम्यग्दर्शन है; धर्मीको ऐसे निश्चय–व्यवहारकी संधि होती है। निजस्वरूपमें वीतरागी लीनता सो निश्चयचारित्र है, वह स्वद्रव्याश्रित है, और पंचमहाव्रतादि शुभराग सो व्यवहारचारित्र है, वह परद्रव्याश्रित है। स्वद्रव्याश्रित शुद्धता तो मोक्षका कारण है, और परद्रव्याश्रित रागादिभाव बंधका कारण है।

जैसे अरिहंत भगवान हैं वैसा मैं हूं–ऐसा निर्णय करनेवालेको अरिहंत भगवानके संबंधमें जो विकल्प था उससे दूर जाकर जब अपने ज्ञानस्वभावकी अनुभूति की तब वास्तविक सम्यग्दर्शन हुआ; और उसमें निमित्तरूप अरिहन्त की श्रद्धाके भावको भी सम्यग्दर्शन कहा–सो व्यवहार है, अर्थात् वास्तविक सम्यग्दर्शन वह नहीं है परन्तु सच्चे सम्यग्दर्शनका उसमें आरोप करके उसे भी सम्यग्दर्शन

कहा है। जो सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं करता उसको न तो निश्चय होता है न व्यवहार। सम्यक्त्व सन्मुख जीव अरिहंतदेवके प्रति लक्ष करके रागमें उस विकल्पमें अटकना नहीं चाहता था परन्तु अन्तरमें अपने सच्चे स्वरूपका निर्णय करके अंतर्मुख होना चाहता था,—ऐसे [illegible] कारण अरिहन्तकी श्रद्धाको भी सम्यग्दर्शन कह दिया। परन्तु अपने अन्तर्मुख-स्वरूपकी ओर जो नहीं आता उसको तो ऐसा व्यवहार भी लागू नहीं होता।

यह छहढाला तो जैनधर्मका तत्त्वज्ञान करनेवाला पाठ्य पुस्तक है, बड़े या छोटे सभीको पढ़ने योग्य है; यह सुगम एवं सभी को समझमें आ जाय ऐसा है, और प्रयोजनभूत वीतराग-विज्ञानका स्वरूप इसमें समझाया है। अहो, वीतराग-विज्ञानका ऐसा शिक्षण तो प्रत्येक घरमें पढ़ाना चाहिए; इसके अतिरिक्त लौकिक पढ़ाईमें तो कुछ भी हित नहीं है। यह तो भगवान सर्वज्ञदेवका पढ़ाया हुआ वीतरागी शिक्षण है, वही शिक्षण सभी जीवोंके लिये अपूर्व हितकर है।

जिनके ज्ञानादि गुणोंका पूरा विकास हो चुका है और रागादि दोषोंका सर्वथा अभाव हो चुका है ऐसे सर्वज्ञ वीतराग ही सच्चे देव है, भेदज्ञानके द्वारा ऐसी दशाको जो साध रहे हैं ऐसे शुद्धोपयोगी संत सच्चे गुरु हैं, और ऐसे देव-गुरुसे प्रतिपादित तत्त्व सो शास्त्र है—सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें ऐसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा होती है, सो व्यवहार है, इसके विरुद्ध किसी भी देव-गुरु-शास्त्रकी मान्यता व्यवहारमें भी नहीं होती। देव-

गुरु-शास्त्रका स्वरूप जो विपरीत मानते हैं उनके तो निश्चय या व्यवहार एक भी सच्चा नहीं होता। सम्यग्दर्शनके सहचररूपसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्रके आदरका विकल्प होता है, विरुद्ध नहीं होता, अर्थात् कुदेवादिकी मान्यताका विकल्प वहां नहीं होता। मोक्षमार्गमें निश्चय-व्यवहारकी ऐसी ही स्थिति है परन्तु इसमें मोक्षमार्ग तो शुद्धात्माके आश्रित जो सम्यग्दर्शनादि हुआ वह है, उसके साथका विकल्प मोक्षमार्ग नहीं है। भाई, तुम्हारे भावमें मोक्षका सच्चा कारण क्या है, उसको तुम पहचानो।

एक तो, सम्यग्दर्शनकी तैयारीवाले जीवका सम्यग्दर्शन होनेके पूर्व निश्चयके लक्षसहित जो विकल्प था उसको सम्यग्दर्शनका कारण कहा सो व्यवहार है, और दूसरे प्रकारसे, सम्यग्दर्शनके साथमें सहचारीरूपसे विद्यमान देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा आदिके विकल्पको भी सम्यग्दर्शन कहा सो व्यवहार है; इन दोनोंसे विकल्पसे पार शुद्धात्माकी दृष्टि ही सच्चा सम्यग्दर्शन है, वह निश्चय है, वह सत्य है, वह मोक्षका सच्चा कारण है।

वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र तो आत्माका सर्वज्ञस्वभाव सिद्ध करते हैं; सर्वज्ञता और वीतरागता ही उनका तात्पर्य है; और वह तात्पर्य निजस्वरूपके श्रद्धा-ज्ञान-आचरणसे ही सिद्ध होता है, पर-सन्मुखतासे (अर्थात् व्यवहारसे) वह सिद्ध नहीं होता। अतः व्यवहारके आश्रयसे मोक्षमार्ग माननेवाले लोग वीतराग शासनमें नहीं हैं, उन्होंने सच्चा मोक्षमार्गको नहीं जाना। ऐसे कुदेव-कुगुरु-कुमार्गकी श्रद्धाका विकल्प वह सम्यग्दर्शनका कारण तो नहीं है

परन्तु सम्यग्दर्शनके सहकारीरूपसे भी वह नहीं होता; वह तो सम्यग्दर्शनसे विरुद्ध है। सच्चे देव–गुरुकी श्रद्धाका विकल्प–जो कि सम्यग्दर्शनका सहकारी है—वह भी मोक्षका सत्य कारण नहीं है। सत्य कारण तो भूतार्थस्वभावके आश्रयसे होनेवाली शुद्धात्माकी श्रद्धा ही है, उसे ही 'सत्यार्थ' कहते हैं। निश्चय कहो या सत्यार्थ कहो, वह मुख्य है, और दूसरा व्यवहार है वह गौण है, वह सत्यार्थ नहीं है परन्तु आरोप है, उपचार है।

आत्मा जैसा सर्वज्ञस्वभाव है वैसे वह अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव है, आत्मा स्वयं ही आनन्दरूप है, रागमें उसका आनन्द नहीं है, अतः रागके आश्रयसे सुख या आनन्द नहीं होता। इसीप्रकार इस आत्माका आनंदस्वभाव कोई देव–गुरु–शास्त्र आदि दूसरोंके पास नहीं है, अतः दूसरोंके आश्रयसे वह प्रगट नहीं होता। जहाँ अपना आनन्द भरा है उसीमें एकताके द्वारा आनन्दका अनुभव होता है। अपना आनन्द अपनेमें ही भरा है, आनन्दरूप स्वयं आप ही हैं, और अपनेमें दृष्टि करनेसे उसका अनुभव होता है। जैसे ज्ञान-स्वभाव आत्मामें है अतः आत्माके आश्रयसे सर्वज्ञता होती है उसमें अन्य किसीका आश्रय नहीं है; राग या देहके आश्रयसे सर्वज्ञत्व नहीं होता क्योंकि उसमें वह नहीं है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका पिंड है, उसके आनन्दमें अन्य किसीका आश्रय नहीं है; रागके या देहके आश्रयसे आनन्द नहीं होता क्योंकि उसमें आनन्द नहीं है। ज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव है उसके ही आश्रयसे वह प्रगट होता है, परन्तु जिसके स्वभावमें ज्ञान और आनन्द नहीं है उसके आश्रयसे वह प्रगट नहीं होता।

मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनन्द, उसके कारणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वे भी अतीन्द्रिय आनन्दके ही अंश हैं, आत्माके आश्रयसे वे होते हैं। आनन्दकी समान जातिवाले वे अंश ही पूर्ण आनन्दका कारण होते हैं। जो राग है सो आनन्दका तो अंश नहीं है, अतः वह आनन्दका कारण भी नहीं हो सकता, तो उसको मोक्षमार्ग कौन मानेगा? जिनमें अंशमात्र भी आनन्द नहीं है अपितु आकुलता है वैसे रागादिभाव पूर्ण आनन्दरूप मोक्षके देनेवाले कैसे हो सकते हैं? नहीं हो सकते। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीनों आनंदरूप हैं, रागरहित हैं और आत्माके ही आधीन हैं, वही पूर्ण आनन्दरूप मोक्षके देनेवाले हैं। सुखरूप पर्याय पूर्ण सुखको साधती है परन्तु दुःखपर्याय सुखको नहीं साध सकती। शुभरागके द्वारा वीतरागमार्ग नहीं सधता, रागके अभावरूप आंशिक वीतरागताके ही द्वारा वीतरागमार्ग सधता है। पुण्य-पापके रागमें आनंद है ही कहां—कि वह आनन्दको दे? आनन्द कहो या मोक्षका मार्ग कहो, उसका कोई भी अंश रागमें नहीं है, और न आनन्दमें राग है; अतएव वे एक दूसरेका कारण भी नहीं हैं। इस प्रकार राग मोक्षमार्ग नहीं है, व्यवहारके आश्रित मोक्षमार्ग नहीं है, रागरहित जो शुद्धस्वभाव उसके आश्रयसे मोक्षमार्ग है।—यह जैनधर्मका सिद्धान्त है, यह तीर्थंकरोंका मार्ग।

जैनसिद्धान्तका हार्द यह है कि, आत्मा स्वयं ज्ञान आनन्दरूप भगवान है,—उसको अपने अनुभवमें लेना। ऐसे अनुभवको ही जैनशासन कहा है, और वही तीर्थंकरोंका मार्ग है। ज्ञान आनन्द-

स्वरूपमें दृष्टि करके एकाग्र होनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है और उसकी पूर्णता होनेपर मोक्षदशा होती है। अंश और अंशी एक ही जातिके होते हैं, अंशीका अंश उसी जातिका होता है; सच्चे कारण-कार्य एक जातिके होते हैं; अंश अपनी जातिके अंशीके आश्रयसे प्रगट होता है, परंतु विजातिके आश्रयसे नहीं होता। सच्चे ज्ञानका अंश ज्ञानके ही आश्रयसे प्रगट होता है, रागके आश्रयसे प्रगट नहीं होता। रागके सेवनसे तो रागका ही कार्य होगा परन्तु ज्ञान नहीं होगा। अंशीके साथमें एकता करके जो अंश प्रगट हुआ वही सच्चा अंश है। (पूर्णताके लक्षसे प्रारंभ वही सच्चा प्रारंभ है।) पूर्णताका लक्ष कहो या सम्यग्दर्शन कहो, वही मोक्षमार्गका प्रारंभ है। सारा आत्मा आनन्दस्वभाव है उसके अनुभवसे आनन्द ही होता है। रागके आश्रयसे आनंदका अनुभव कभी नहीं होता, क्योंकि जो आनन्द है वह रागका अंश नहीं है। इसीप्रकार ज्ञान और श्रद्धान् भी रागके आश्रयसे नहीं होते, क्योंकि वे ज्ञानादि रागके तो अंश नहीं हैं। रागके आश्रयसे तो राग होगा, मोक्षमार्ग नहीं होगा। मोक्षमार्ग रागरूप नहीं है।

देखो जी, यह सत्यार्थ मोक्षमार्ग! सच्चा मोक्षमार्ग रागसे रहित है। आत्माका ज्ञान व आनन्द रागसे रहित है। ज्ञान और आनन्द आत्माके मुख्य गुण हैं। 'चिदानंदाय नमः' इत्यादि मन्त्र आत्माके स्वभावको ही सूचित करते हैं, उसमें श्रद्धावीर्य आदि अनन्त गुण भी समाविष्ट हो जाते हैं। जिस गुणकी मुख्यतासे देखा जाय उसी गुणस्वरूप पूरा आत्मा दिखता है। आनन्दकी

मुख्यतासे देखने पर सारा आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञानकी मुख्यतासे देखने पर आत्मा ज्ञानस्वरूप है; इसी तरह श्रद्धा आदि अनन्त गुणस्वरूप अखंड आत्मा है; उसके लक्षसे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–आनन्द होता है। आत्माके लक्षसे राग नहीं होता, उसका तो अभाव हो जाता है। राग वह आत्मगुण नहीं है अतः रागके आश्रयसे आत्माको कोई गुण (सम्यग्दर्शनादि) प्रगट नहीं होते। सभी गुणोंकी निर्मलदशा आत्माके ही आश्रयसे परिणमित होती है; अपने ज्ञानादि गुण पर्यायोंको धारण करनेवाली वस्तु आत्मा ही है। जिसमें जो गुण नहीं होता उसके आश्रयसे उस गुणका कार्य भी नहीं होता; गुण जिसमें होता है उसीके आश्रयसे उसका कार्य होता है। जिसमें ज्ञान हो उसीके आश्रयसे केवलज्ञान होता है, जिसमें आनन्द हो उसीके आश्रयसे आनन्द होता है। जिसमें ज्ञान या आनन्द है ही नहीं, उसमेंसे वह कैसे मिलेगा? अतः हे जीव! तुम परका आश्रय छोड़ो और स्वद्रव्यकी सन्मुख होकर उसका ही आश्रय करो...यह कार्य शीघ्र करो, आत्महितके इस कार्यमें विलंब न करो।

आत्माकी अवस्थामें अनादिकालसे जो दुःखका अनुभव है वह कैसे मिटे? और अनाकुलतारूप सच्चे आत्मसुखका अनुभव कैसे हो?—उसकी रीति वीतरागी सन्तोंने दिखायी है; अपने हितके लिये उसको लक्षमें लेकर विचार करना चाहिए। बाहरके दूसरे विचार तो बहुत करते हो, तब यह तो तुम्हारे हितकी बात है, इसका भी थोड़ा विचार तो करो। संसारके विचार करके तुम दुःखी

हो रहे हो, अब एकबार आत्माके सुखका विचार करो। जो दुःख है उतना तो आत्मा नहीं है, उसके पीछे जो आनन्दका सारा समुद्र भरा है उसको देखो, तो तुममें आनन्दकी तरंग उल्लसित होगी, और दुःख मिट जायेगा। आनन्दकी विकृति सो दुःख; लकडीमें दुःख नहीं होता क्योंकि उसमें आनन्दस्वभाव नहीं है। आनन्दस्वभाव जहां न हो वहां उसकी विकृतिरूप दुःख भी नहीं होता। दुःख तो विकृत क्षणिक कृत्रिमभाव है उसी समय आनंद स्वभाव सहज अकृत्रिम शाश्वत है। अपने आनन्दस्वभावको भूलकर अज्ञानसे जीव दुःखी हो रहा है, आनन्दस्वभावका अनुभव करनेसे दुःख मिट जाता है। दुःख संयोगसे नहीं है एवं स्वभावमें भी नहीं है, वह तो क्षणिक विकृति है,—किसकी विकृति? आत्माके अंदर जो आनन्दस्वभाव भरा पडा है उसकी पर्यायमें विकृति वह दुःख है। आनंदस्वभावके अनुभवसे वह विकृतदशा छूटकर आनंददशा प्रगट होती है। अरे, दुःख क्या है उसका भी जीवको भान नहीं है। दुःखका सच्चा स्वरूप पहचाने तो अपना सारा आनन्दस्वभाव सिद्ध हो जाता है, जब आनन्दस्वभावको जाने तभी दुःखका भी स्वरूप पहचाननेमें आवे।

अब दुःखकी तरह कषायकी बात समझाते हैं। कषाय भी दुःख ही है। अन्तरमें आत्मा शांतरससे भरा हुआ अकषायस्वरूप है, उसके आश्रयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अकषायभावकी उत्पत्ति होती है, वह मोक्षमार्ग है। उस अकषायभावका आधार कोई रागादि विकल्प नहीं है। राग-द्वेष स्वयं कषाय है, वह

अकषायभावका कारण नहीं होता; और शांत अकषायस्वभावकी सन्मुखतासे कषायकी उत्पत्ति नहीं होती। कषाय क्षणिक विकृतभाव है, अकषायस्वभाव त्रिकाल है; इन दोनोंको पहचाननेसे अकषाय चैतन्यस्वभावका अनुभव होता है और कषायका अभाव होता है,—यही मोक्षमार्ग है। क्षणिक कषायको त्रिकालीस्वभावका आधार नहीं है. त्रिकालीस्वभावमें तो कषाय है ही नहीं; ऐसे स्वभावको लक्षमें लेनेसे कषायभाव दूर हो जाता है।

इसी प्रकार श्रद्धास्वभावी आत्मा है, उसकी सन्मुखता वह सम्यग्दर्शन है। मिथ्यात्वरूप विकृति तो एक क्षणकी ही है, उसको स्वभावका आधार नहीं है। जो श्रद्धास्वभाव त्रिकाल है उसका स्वीकार करने पर मिथ्यात्व नहीं रहता। सम्यक्त्व प्रगट करनेके लिये ऐसा आत्मस्वभाव ही आधाररूप है, रागादि विकल्पोंके आधारसे सम्यग्दर्शन नहीं होता।

इसी प्रकार सम्यक् पुरुषार्थरूप वीर्य आत्माका स्वभाव है; उसके आश्रयसे रत्नत्रयके पुरुषार्थरूप वीर्यबल प्रगट होता है; विकल्पमें ऐसा सामर्थ्य नहीं है कि रत्नत्रयको प्रगट करे। बलवंत वीर्यवान आत्मा है—जो कि स्वबलसे रत्नत्रय प्रगट करता है। 'बल' नामकी एक औषधि होती है वैसे आत्मामें वीर्यबलरूप ऐसा औषध है—कि जो सर्व कषाय रोगोंको नष्ट करके अविकारी रत्नत्रयका और केवलज्ञानादि चतुष्टयका अनन्त बल देता है। किसी भी रागमें ऐसा बल नहीं है कि वह रत्नत्रय दे। अनन्त गुणरूप जो आत्मस्वभाव है उसीके आश्रयसे मोक्षमार्ग एवं मोक्ष होता है। ऐसे सच्चे मोक्षमार्गका विचार कर उसका आराधन करना चाहिए।

निश्चयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी एकतारूप एक ही मोक्ष-मार्ग है; दो मोक्षमार्ग नहीं है। 'एक होत तीन कालमें परमार्थका पंथ।' एक निश्चयमोक्षमार्ग और एक व्यवहारमोक्षमार्ग—ऐसे दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है,—यह बात पं. टोडरमलजीने मोक्ष-मार्ग प्रकाशकमें बहुत अच्छे ढंगसे समझायी है। निश्चय मोक्ष मार्गके अतिरिक्त अन्य किसीको मोक्षमार्ग कहना सो सच्चा मोक्ष मार्ग नहीं है, परन्तु मात्र उपचार है—ऐसा जानना। शुद्ध आत्म तत्त्वको जानकर, उसकी श्रद्धा कर, उसके अनुभवसे ही मोक्ष होता है, मोक्षका अन्य कोई मार्ग नहीं है—नहीं है। [न खलु न खलु यस्माद् अन्यथा साध्यसिद्धि ।]

प्रवचनसारमे कहते हैं कि जो अतीतकालमे क्रमश: हुए वे सभी तीर्थंकर भगवन्तोंने इस एक ही प्रकारसे कर्मांशोंका क्षय किया, क्योंकि अन्य प्रकारका अभाव होनेसे मोक्षमार्गमें द्वैतका संभव ही नहीं है, एक ही मार्ग है। इस प्रकार शुद्धात्माके अनुभव द्वारा समस्त कर्मोका क्षय करके सभी तीर्थंकर भगवन्तोंने तीनोंकालके मुमुक्षुओंके लिये भी इसी प्रकारका उपदेश दिया और बादमें मोक्षकी प्राप्ति की। अत: निश्चित होता है कि निर्वाणका कोई अन्य मार्ग नहीं है। ऐसे एक ही प्रकारके सम्यक्‌मार्गका निर्णय करके आचार्यदेव कहते हैं कि अहा, ऐसे स्वाश्रित मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाले भगवन्तोंको नमस्कार हो। हमने ऐसे मोक्षमार्गका निर्णय किया है और उसकी साधनाका कार्य चल रहा है।

शुद्धात्मअनुभूतिरूप जो निश्चयरत्नत्रय इसके सिवाय दूसरा

कोई मोक्षका मार्ग नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों स्वरूप एक मोक्षमार्ग है, परन्तु जुदे जुदे तीन मोक्षमार्ग नहीं हैं। जहाँ सम्यग्दर्शन हो वहाँ सम्यग्ज्ञान भी साथमें होता ही है, और वहाँ अनन्तानुबन्धी कषायके अभावरूप चारित्रका अंश भी होता है। इसप्रकार शुद्ध रत्नत्रयरूप एक ही मोक्षमार्ग है; हाँ, उस रत्नत्रयकी शुद्धिमें तारतम्यरूपसे अनेक प्रकार पड़ते हैं, तो भी उनकी जाति एकसी ही है; रत्नत्रयकी जितनी शुद्धता है उतना ही मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं है।

प्रश्नः—अनेक जगह निश्चय और व्यवहार ऐसे दो प्रकारका मोक्षमार्ग कहा है, और आप तो मोक्षमार्ग एक ही कहते हो, तो क्या इसमें विरोध नहीं आता?

उत्तरः—ना; सच्चा मोक्षमार्ग एक ही है और दूसरा कोई सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा निर्णय करके सच्चे मोक्षमार्गको ही मोक्षमार्गरूपसे ग्रहण करना, यही अविरुद्धता है। परन्तु, निश्चयमोक्षमार्ग भी मार्ग है और व्यवहारमोक्षमार्ग भी मार्ग है—ऐसा दोनोंको सच्चा मानकर अंगीकार करनेसे तो विरोध आता है। एक निश्चयमोक्षमार्ग ही सच्चा मार्ग है, और दूसरा मार्ग कहना सो तो मात्र उपचार है, वह सच्चा मार्ग नहीं है.—ऐसी पहचान करनेसे ही सच्चे मोक्षमार्गका ज्ञान होता है, और उसमें ही दोनों नयोंके सच्चे अर्थका स्वीकार होता है।

आत्माके शुद्ध स्वभावकी अनुभूतिस्वरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका जो शुद्ध वीतराग परिणाम है वह तो सच्चा मोक्षमार्ग

है, अर्थात् निश्चयसे वास्तविक मोक्षमार्ग वह है, और वहीं पर, जो सच्चा मोक्षमार्ग तो नहीं है परन्तु मोक्षमार्गकी साथमें निमित्त-रूपसे विद्यमान है उसको भी मोक्षमार्ग कहना सो व्यवहार है। कारण सो ववहारो'—व्यवहारको निश्चयमोक्षमार्गका कारण कहना सो भी उपचार है अर्थात् निमित्तरूप है ऐसा समझना। जैसे बिना उपादानका निमित्त वह वास्तवमें निमित्त नहीं है, वैसे निश्चयकी अपेक्षासे रहित व्यवहार वह वास्तविक व्यवहार नहीं है। निश्चयके बिना अकेला व्यवहार होता ही नहीं, अतः पहले अकेला व्यवहार हो और उसके द्वारा निश्चयकी प्राप्ति हो जाय—वह बात सच्ची नहीं है। इस प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों साथमें रहते हैं, तथापि उनमे सत्य मोक्षमार्ग तो एक ही है, दो नहीं।

मोक्षमार्गका सच्चा निर्णय करनेके लिये यह बात प्रयोजनभूत होनेसे विस्तारसे कही गई है। साधककी एक पर्यायमें निश्चय–व्यवहार दोनों साथमें रहते हैं, उनमें निश्चयरत्नत्रय तो सत्यार्थ मोक्षमार्ग है, और उसके अनुकूल जो श्रद्धा–ज्ञान–चारित्रका शुभ विकल्प है उसमें मोक्षमार्गका व्यवहार करना सो वह उपचार है, वह सत्यार्थ नहीं है। एक ही सत्य मोक्षमार्ग और दूसरा सत्य नहीं परन्तु उपचार,—ऐसे मोक्षमार्गके स्वरूपका निर्धार करना चाहिए। निश्चय और व्यवहार दोनों मिलकर एक मोक्षमार्ग है —ऐसा नहीं है। जो निश्चय है वह एक ही मोक्षमार्ग है।

✠ शुद्ध आत्माका श्रद्धान् वह एक ही सम्यग्दर्शन है,

✠ शुद्ध आत्माका ज्ञान वह एक ही सम्यग्ज्ञान है;

卐 शुद्ध आत्मामें लीनता वह एक ही सम्यक्‌चारित्र है।
卐 ऐसा शुद्ध सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र एक ही मोक्षमार्ग है।
卐 व्यवहारके विकल्पोंका–रागका उसमे अभाव है।

निश्चयकी भूमिकामें उसके योग्य व्यवहार होता है, उसका स्वीकार है, परन्तु उसे सत्य मोक्षमार्गरूपसे ज्ञानी नहीं स्वीकारते।

प्रश्नः–जो व्यवहार रत्नत्रय है वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है, तो फिर उपचारसे उसको मोक्षमार्ग क्यों कहा?

उत्तरः—क्योंकि, निश्चयके साथमे उस भूमिकामें ऐसा ही व्यवहार निमित्तरूपसे होता है, विपरीत नहीं होता,—ऐसा उस भूमिकाका ज्ञान करानेके लिये उसमें मोक्षमार्गका उपचार है। जैसे बिल्लीमे वाघका उपचार यह सूचित करता है कि बिल्ली स्वयं सच्चा वाघ नहीं है, सच्चा वाघ उससे भिन्न है; वैसे व्यवहारमें मोक्ष-मार्गका उपचार यह सूचित करता है कि व्यवहार स्वयं सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है, सच्चा मोक्षमार्ग उससे दूसरा है। ‘ज्ञानस्वरूप आतमा है’ इतने गुणगुणीभेदके विकल्परूप व्यवहार भी मोक्षका साधन नहीं हो सकता तब फिर अन्य स्थूल बाह्यलक्षी रागकी तो क्या बात?

मोक्षमार्ग दो नहीं, एक ही है, इसी प्रकार—

- मोक्षमार्गमे जो सम्यग्दर्शन है वह दो नहीं, एक ही है,
- मोक्षमार्गमे जो सम्यग्ज्ञान है वह दो नहीं, एक ही है;
- मोक्षमार्गमें जो सम्यक्‌चारित्र है वह दो नहीं, एक ही है।

—यद्यपि सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं, सम्यग्ज्ञानके पांच भेद हैं और सम्यक्चारित्रके पांच भेद हैं, तथापि उन सबमें स्वद्रव्यके आश्रयका प्रकार एक ही है, दर्शन–ज्ञान–चारित्रका कोई भी अंश परद्रव्यके आश्रित नहीं है, और उसमें कहीं भी राग नहीं है।

भगवान आत्मा महान पदार्थ है उसमें अन्तर्मुख श्रद्धा–ज्ञान –चारित्र ही मोक्षमार्ग है; उससे भिन्न और कोई मोक्षमार्ग कहना यह तो वचनका विलास है,—उसका वाच्य तो निमित्त या राग है, परन्तु मोक्षमार्गका सत्य स्वरूप वह नहीं है। सत्य मोक्षमार्ग शुद्ध आत्माकी अनुभूतिमें ही समाता है, वह निर्विकल्प है, उसमें कोई विकल्प नहीं–राग नहीं। ऐसे मोक्षमार्गका प्रारम्भ चौथे गुणस्थानसे होता है। श्री समन्तभद्रस्वामीने 'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थ निर्मोहो'.... ऐसा कहकर सम्यग्दृष्टि–गृहस्थको भी मोक्षमार्गमें स्वीकार किया है। अतः यदि कोई ऐसा कहे कि चौथे–पांचवें–छठवें गुणस्थानमें एकान्त व्यवहार मोक्षमार्ग ही होता है और बादमें सातवें गुणस्थानसे अकेला निश्चयमोक्षमार्ग होता है,—तो यह बात सत्य नहीं है। चौथे गुणस्थानसे ही दोनों एक साथ हैं। उनमें शुद्धताका जितने अंश है वह सच्चा मोक्षमार्ग है, और जो रागादि हैं वह मोक्ष-मार्ग नहीं है। ऐसे सभी प्रकारसे पहचानकर सत्य मोक्षमार्गको अंगीकार करना चाहिए।

अहो! ऐसा सरस–सुन्दर स्वाधीन मोक्षमार्ग, वही महान सुखका कारण है—ऐसा जानकर बहुमान पूर्वक उसका सेवन करो।

* * *

निश्चयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका व्याख्यान

निराकुल सुखरूप जो मोक्ष वह आत्माका हित है, और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका मार्ग है; जीवको अपने हितके लिये उसमें मोक्षमार्गमें लगना चाहिए—ऐसा पहली गाथामें कहा. अब दूसरी गाथामें इस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका व्याख्यान करते हैं—

[गाथा]

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भला है;
आपरूपको जानपनो सो सम्यक्ज्ञान कला है।
आपरूपमें लीन रहे थिर सम्यक्चारित सोई;
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियतको होई ॥ २ ॥

आत्माके हितके लिये सच्चे मोक्षमार्गका यह वर्णन है; उसमें प्रथम जो निश्चय सम्यग्दर्शन है वह परसे भिन्न अपने शुद्धात्माकी रुचिरूप है. आत्माकी रुचिरूप यह सम्यग्दर्शन भला है, श्रेष्ठ है। और आत्माके यथार्थ स्वरूपका जानपना सो सम्यग्ज्ञानरूप वीतरागी कला है, आत्मस्वरूपको जाननेवाला यह ज्ञान मोक्षका कारण होता है और वह स्वयं निराकुल आनन्दरूप है। इसप्रकार अपने आत्माकी रुचि व ज्ञान करके उसमें लीन होकर स्थिर रहना सो सम्यक्-चारित्र है। देखो! इसमें कहीं राग नहीं आया। मोक्षमार्गके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों रागसे रहित हैं। ऐसे मोक्षमार्गको

पहचानकर उसके उद्यममें निरंतर लगे रहना चाहिए। यह निश्चय मोक्षमार्ग कहा। अब व्यवहारमोक्षमार्ग जोकि निश्चयमोक्षमार्गका निमित्तरूप हेतु है—उसका कथन आगेके श्लोकमें करेंगे।

परद्रव्योंसे भिन्न, परसन्मुख रागादिभावोंसे भिन्न और अपने स्वभावोंसे अभिन्न ऐसे अपने आत्माकी श्रद्धा-रुचि सो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थदशामे हो, व्यापार-धंधा, राजपाटमे हो, शुभाशुभभाव होते हों, तो भी अन्तरकी दृष्टिमे वह अपने आत्माको उन सबसे भिन्न शुद्ध चैतन्यभावरूप ही देखता है। वह परद्रव्यमें नहीं रहा, उसका सम्बन्ध होते हुए भी उससे भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा मैं हूं—इसप्रकार वह स्वद्रव्यकी श्रद्धा करता है, यह सम्यक्त्व भला है-हितरूप है-कल्याणरूप है। निश्चय सम्यग्दर्शनको भला कहा है, वही सत्यार्थ है, वही सच्चा मोक्ष-मार्ग है।

आत्माकी रुचिको सम्यक्त्व कहा, अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शनका विषय अकेला स्वतत्त्व है। परसे भिन्न अपने स्वतत्त्वको लक्षमे लेनेसे, रागसे भी भिन्न अनुभव होता है। ऐसे अनुभवपूर्वक आत्माकी श्रद्धा सो निश्चय सम्यग्दर्शन है, इसमे अकेले स्वतत्त्वमे दृष्टि (एकत्वबुद्धि, तन्मयता) है। स्वमें लक्ष करते ही परद्रव्य और परभावोंके साथ एकत्वबुद्धि छूट जाती है। इस प्रकार स्वमे स्व-बुद्धिरूप आत्मरुचि वही सम्यग्दर्शन है।

'आपमें रुचि'—आप अर्थात् अपना आत्मा, उसका स्वरूप पहचानकर, निर्विकल्प स्वसंवेदन सहित उसकी श्रद्धा करना चाहिए।

बाह्यदृष्टिसे संयोग और रागमें 'यह मैं' ऐसी मिथ्याबुद्धि थी, उसको छोड़कर अंतरमें 'यह मैं' ऐसी निजस्वभावकी प्रतीत करने पर सम्यक्त्व हुआ. अपना आत्मा जैसा है वैसा पहचानमें आ गया। अकेले शुद्ध स्वभावमें ही रुचिका-प्रवेश हुआ तब कोई विकल्पमें रुचि न रही, या उसके अवलम्बनसे धर्मका कुछ लाभ होगा—ऐसी बुद्धि न रही। परसे भिन्न और विकल्पसे भिन्न शुद्धात्मरूप होकर परिणमा; ऐसा सम्यक् परिणमन भला है, शुद्ध है, निश्चय मोक्षमार्गका अंग है, और मोक्षके साधनेकी यह कला है। 'रुचि सम्यक्त्व भला है और सम्यग्ज्ञान कला है।' आत्माकी रुचि व आत्माका ज्ञान वह मोक्षके साधनेकी उत्तम कला है। परका जानपना या शास्त्रका जानपना—वह नहीं, परन्तु आपरूप अर्थात् आत्माका स्वरूप उसको परसे भिन्न जानना ही सच्ची ज्ञानकला है। बाहरकी अनेक कला जीवने शीख ली परन्तु आत्मज्ञानकी कला उसने पूर्वमे कभी नहीं जानी। जब ज्ञान आत्मस्वभावकी सन्मुख हुआ तब सम्यग्ज्ञानकी कला खिली, आत्मज्ञान हुआ और मोक्षमार्ग खुल गया। आत्माका ज्ञान होनेपर नव तत्त्व आदिका व्यवहार जानपना गौण हो गया। 'जिसने आत्माको जाना उसने सब कुछ जान लिया,'–उसको ज्ञानकी कला खिल गई, अब वृद्धिगत होकर केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा होगी। केवलज्ञान प्रगट करनेके लिये यह सम्यग्ज्ञान–कला है वह केवलज्ञानकी साथ आनन्दकी केलि करती है, आनन्दकी क्रीड़ा करती हुई वह केवलज्ञानको साधती है। अहा, चौथे गुणस्थानवाले गृहस्थका सम्यग्ज्ञान भी केवलज्ञानकी जातिका ही है। पूर्ण चन्द्रका अंश भी चन्द्रमाकी जातिका

ही होता है, वैसे सम्यक्‌मति-श्रुतज्ञान भी केवलज्ञानकी जातिका ही है, वह रागकी जातिका नहीं है। अहा, शुद्ध चैतन्यस्वरूपका ज्ञान होते ही केवलज्ञानकी एक कला खिली। ऐसी भेदज्ञानकला मोक्षको साधनेवाली है।

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूपको जानपनो सो सम्यग्ज्ञान कला है।

हे जीव! मोक्षसुखके लिये तू ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-रूप मोक्षमार्गमें उद्यमी हो। अपने आत्माकी सन्मुख होकर आत्माकी रुचि सो सम्यग्दर्शन है, आत्माका ज्ञान सो सम्यग्ज्ञान है; और सम्यक्‌चारित्र कैसा है? कि—

आप रूपमें लीन रहे थिर सम्यक्‌चारित सोई।

परसे भिन्न अपना जो स्वरूप रुचिमें और ज्ञानमें लिया उसी निजस्वरूपमें स्थिरता-लीनतारूप वीतरागभाव सो सम्यक्‌चारित्र है। देखो, भगवानने निजस्वरूपमें लीनताको चारित्र व मोक्षमार्ग कहा है, शुभरागको चारित्र या मोक्षमार्ग नहीं कहा। शुभाशुभ क्रियाएँ कर्मके आस्रवका हेतु हैं; उनसे निवृत्ति और शुद्ध ज्ञानस्वरूपमें प्रवृत्ति, वह मोक्षमार्गका चारित्र है, ऐसे सम्यक्‌चारित्रमें सदा लगनेको कहा है। अरे, बहुत जीवोंको तो यह भी मालूम नहीं है कि सच्चा चारित्र क्या है? सच्चे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका स्वरूप यहाँ संक्षेपमें दिखाया है। मोक्षमार्गरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीनों भाव आत्मामें समाते हैं, कोई रागमें या शरीरकी क्रियामें वे नहीं रहते।

सहज एक ज्ञायकभावरूप शुद्ध आत्मा—जो शुभाशुभ रागादि परभावरूप कभी नहीं हुआ,—उसकी अंतरंग अनुभूतिमें 'यही मैं' ऐसी जो निर्विकल्प प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है। आत्मा जैसा है वैसा अच्छी तरह जानकर उसकी श्रद्धा होती है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् अनुभूति तीनों एक साथ होते हैं। जिस वस्तुका ज्ञान ही न हो उसकी श्रद्धा कैसे करेगा? वस्तुके ज्ञानसे रहित श्रद्धा सच्ची नहीं होती, वह तो गधेके सींगकी श्रद्धा करने जैसी मिथ्याश्रद्धा है। श्रद्धा किसकी?—जो वस्तु सत् हो उसकी। सत् ऐसा जो ज्ञायकस्वभाव उसको दृष्टिमें व ज्ञानमें लिया तब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ, उसकी साथ आनन्दका अनुभव भी है। ऐसे आनन्दस्वरूप आत्माका ज्ञान वही सच्चा ज्ञान है, वही शुद्ध ज्ञानकी कला है, वही मोक्षको साधनेवाली वीतरागी विद्या है। मोक्षकी प्राप्तिके लिये यह 'बीज–ज्ञान' है। जो ज्ञानकी बीज (दूज) ऊगी वह बढ़कर पूनम होगी। बाहरके अप्रयोजनभूत तत्त्वका जानपना हो उसमें आत्माका कोई हित नहीं है; उस बाह्य-ज्ञानके द्वारा मोक्ष नहीं साधा जाता; परलक्षी शास्त्रज्ञान भी मोक्षको नहीं साध सकता। जो ज्ञान आत्माके मोक्षका साधन न हो, जो आनन्दका अनुभव न दे, उसको ज्ञान कौन कहे? शुद्धात्माकी ओर झुका हुआ ज्ञान वही सच्चा ज्ञान है, वही मोक्षको साधनेवाला है और वही आनन्दका दाता है। अंतरमें शुद्धात्माके ऐसे ज्ञानसहित शास्त्रज्ञान आदि हो उसको व्यवहारसे मोक्षका कारण कहा जाता है। शुद्धात्माकी सम्यक्श्रद्धा सहित नव तत्त्वकी प्रतीतिको व्यवहार

सम्यग्दर्शन कहा जाता है। निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमें तो शुद्धात्माकी स्वसत्ताका ही अवलंबन है, उसमे परका अवलंबन किंचित् मात्र नहीं है। ऐसा स्वाधीन आत्माश्रित निश्चय मोक्षमार्ग है।

परसे भिन्न आत्माका वास्तविक स्वरूप क्या है उसके श्रद्धा-ज्ञानके बाद ही उसमें लीनता हो सकती है, निजस्वरूपमें लीनताके द्वारा जितनी वीतरागी शुद्धता हुई इतना सम्यक्चारित्र है। व्रत संबंधी जो शुभ विकल्प है वह चारित्र नहीं है, वह तो चारित्र-दशाके साथमे निमित्तरूप है। वीतरागता ही चारित्र है, राग चारित्र नहीं है। राग रहित रत्नत्रय ही मोक्षका कारण है, राग तो आस्रवका ही कारण है, वह मोक्षका कारण नहीं है।

अहा, ऐसा स्पष्ट वीतरागी मार्ग! उसको भूलकर अज्ञानी लोगोंने रागमे मोक्षमार्ग मान लिया है। रागमें मोक्षमार्ग मानना यह तो, काचके टुकड़ेमे अति मूल्यवान चैतन्यहीरा मांगने जैसी बात है। जो रागसे मोक्षकी प्राप्ति होना मानता है उसने तो राग जितना ही मोक्षका मूल्य समझा है, वीतरागी आनन्दरूप मोक्षकी उसे पहचान नहीं है। भाई, पूर्ण आनन्दमय मोक्षपद ऐसा नहीं है कि वह तुझे रागमें मिल जाय। वीतरागी आनन्दरूप मोक्षको प्राप्त करनेका मूल्य भी कोई अलौकिक है। अखंड चैतन्यस्वभावका स्वीकार करके उसके श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभावसे ही मोक्ष सधता है, इससे जुदा दूसरा कोई साधन नहीं है।

अहा, ज्ञान आनन्दके अनन्त किरणोंसे चमचमाता हुआ चैतन्य-

हीरा...वह तो वीतरागताका ही पुंज है; उसमें लीनतारूप वीतरागता ही सच्चा चारित्र है। ऐसे चारित्रको भगवानने परम धर्म कहा है। उसको छोड़कर जो परमें और रागादि व्यवहार भावोंमे लीन होकर उसको चारित्रधर्म मान लेता है वह मिथ्यादृष्टि है, उसको तो व्यवहारचारित्र भी नहीं होता। (लीन भयो व्यवहारमें, मुक्ति कहां सो होय?) पहले चारित्र ले लो बादमे सम्यग्दर्शन होगा—ऐसा जो मानता है वह न तो सम्यग्दर्शनको जानता है और न चारित्रको। अरे भाई! श्रद्धाके विना चारित्र कैसा? आत्माको जाने विना तू लीन किसमें होगा? चारित्रका मूल कारण तो सम्यग्दर्शन और ज्ञान है, उसको अंगीकार न करके तूने शुभरागरूप चारित्रको फिर सम्यग्दर्शनका कारण माना, अतः तेरे अभिप्रायसे तो सारा मोक्षमार्ग रागरूप ही हुआ, उसमें कहीं वीतरागता या शुद्धात्माका आश्रय करनेका तो आया ही नहीं। स्वद्रव्यके आश्रयरूप वीतरागताके विना मोक्षमार्ग कैसा? शुद्धात्माके आश्रित ही सच्चा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, और वही मोक्षमार्ग है।

समयसार गाथा २७६-२७७ मे कहते हैं कि—शुद्धात्मा ही ज्ञान है क्योंकि वह ज्ञानका आश्रय है, शुद्धात्मा ही दर्शन है क्योंकि वह दर्शनका आश्रय है, और शुद्धात्मा ही चारित्र है क्योंकि वह चारित्रका आश्रय है;—इस प्रकार निश्चय है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शुद्ध आत्माके ही आश्रित है अतः अभेदरूपसे इन तीनोंको शुद्ध आत्मा ही कह दिया।

शास्त्रोंका ज्ञान, नवपदार्थोंकी श्रद्धा और पंचमहाव्रतके शुभभाव-

रूप चारित्र सो व्यवहार है, क्योंकि उनके होनेपर भी—यदि शुद्धात्माका आश्रय न हो तो सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्र नहीं होते।

—अतः पराश्रित ऐसा व्यवहार मोक्षमार्गमें निषेध्य है, और स्वाश्रित ऐसा निश्चय वही मोक्षमार्गमें उपादेय है. यह सिद्धांत है।

पंडितजीने समयसारादि शास्त्रोंके अनुसार इस छहढालकी रचना की है; संस्कृत-व्याकरणके पढ़े विना भी समझमें आ सके ऐसी सरल यह पुस्तक है, और छोटे-बड़े सभीके लिये यह उपयोगी है। इसकी दूसरी गाथामें निश्चयरत्नत्रयका कथन किया, अब तीसरी गाथासे लेकर व्यवहार सम्यग्दर्शनका और उसके विषयरूप जीव-अजीवादि तत्त्वोंका कथन करेंगे।

देखो, पहले निश्चयमोक्षमार्ग दिखाकर बादमें कहा कि अब व्यवहार सुनो। जहां निश्चय हो वहां व्यवहार कैसा होता है इसका ज्ञान कराते हैं। जिसको निश्चयका लक्ष नहीं उसको व्यवहार कैसा? व्यवहारको नियतका हेतु कहा,—परन्तु वह व्यवहार कौनसा?—वही कि जो निश्चयके साथमें हो। जहां निश्चय हो वहां ऐसा व्यवहार हो, उसे ही व्यवहारसे हेतु कहते हैं। निश्चय न हो और अकेला व्यवहार हो उसको हेतु नहीं कहा जाता। इस प्रकार व्यवहारको हेतु कहा वह 'धर्मास्तिकायवत्' जानना। जैसे धर्मास्तिकाय गमनमें हेतु है,—परन्तु किसको?—कि जो स्वयं गति करते हैं उनको; वैसे व्यवहार है वो निश्चयका हेतु है,—परन्तु किसको?—कि जो स्वाश्रयसे निश्चयधर्म प्रगट करते हैं उनको। किसीने पंचमहाव्रतादि व्यवहारका तो पालन किया, परन्तु स्वाश्रयसे निश्चयसम्यग्-

दर्शनादि प्रगट न किया, तो उसके लिये तो वह व्यवहार हेतु भी न हुआ (-जैसे स्वयं गति नहीं करनेवालेको धर्मास्तिकाय हेतु भी नहीं होता वैसे)।

यदि अकेला व्यवहार भी निश्चयका हेतु होता हो तो—

'मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो'

—पंचमहाव्रतादि व्यवहार अनन्तबार किया तो भी जीवको वह निश्चय श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका हेतु क्यों न हुआ ? उपादानके बिना निमित्त क्या करे ? उपादान-निमित्तके दोहेमें पं. भगवती-दासजी भी कहते हैं कि—

उपादान निज बल जहां तहां निमित्त पर होय।
भेदज्ञान-परवान-विधि विरला बूझे कोई ॥

आत्मा परद्रव्योंसे सदा भिन्न है; ऐसे अपने आत्माका अटल विश्वास सो सम्यग्दर्शन है। अटल अर्थात् जो कभी नहीं मिटता, आत्मासे कभी भिन्न नहीं होता, सिद्धदशामें भी आत्माके साथ सदैव रहता है, सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन तो विकल्परूप है, परके आश्रित है, सिद्धदशामें वह नहीं रहता, वह आत्मारूप नहीं परन्तु विकल्परूप है, अतः वीतरागदशा होने-पर यह विकल्प छूट जाता है। निश्चय सम्यग्दर्शन तो आत्मारूप है, वह सिद्धदशामें भी सदा काल रहता है। इसीप्रकार निश्चय सम्यग्ज्ञानको तथा निश्चय सम्यक्‌चारित्रको भी आत्मारूप जानना;

विकल्पसे वे भिन्न हैं। विकल्परूप व्यवहारभावोंसे आत्मा भिन्न होने पर भी उनके साथ आत्माको एकमेक मानना वह अज्ञानी जीवोंका मिथ्या प्रतिभास है, और उसका फल संसार है। समस्त परभावोंसे भिन्न आत्माको देखना–जानना–अनुभव करना यह मोक्षका मार्ग है। भव्य जीवोंको ऐसे मोक्षमार्गका सदा सेवन करना चाहिए। शुभरागके कालमें भी धर्मी उस रागको मोक्षमार्ग नहीं समझते परन्तु उस समय भी स्वभावके आश्रयसे रत्नत्रयकी जितनी शुद्धता हुई उसीको वे मोक्षमार्ग समझते हैं।

इस प्रकार सच्चा सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र ही मोक्षमार्ग है, सच्चा अर्थात् निश्चय, 'जो सत्यारथरूप सो निश्चय' और उस निश्चयके साथ भूमिकाके योग्य व्यवहार होता है—उसका कथन आगेकी गाथामें कहते हैं।

व्यवहार सम्यग्दर्शनका वर्णन

जहां अपने शुद्धात्माकी श्रद्धारूप निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ हो वहां व्यवहार सम्यग्दर्शन कैसा होता है ? यह कहते हैं—

[गाथा—३]

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव बंध रु संवर जानों।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको ज्योंका त्यों सरधानो ॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य–विशेषैं दिढ़ प्रतीत उर आनों ॥ ३ ॥

जिनवर भगवानने जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष ये सात तत्त्व जैसे कहे हैं उसीप्रकार श्रद्धा करना सो वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सामान्यसे और विशेषसे उन सात तत्त्वोंका स्वरूप कहेंगे, उसको सुनकर अंतरमें उसकी दृढ़ प्रतीति करना चाहिए।

दूसरी ढालमें यह दिखाया था कि–मिथ्यादृष्टि जीव सात-तत्त्वकी श्रद्धाके विषयमें कैसी भूल करता है, और उसको छोड़नेका उपदेश दिया था; अब इस तीसरी ढालमें यह दिखाते हैं कि सम्यग्दर्शन होने पर सात तत्त्वकी कैसी श्रद्धा हुई। सात तत्त्वका यथार्थस्वरूप अरिहंत परमात्माके बिना अन्य किसीके मतमें नहीं होता, अतः सम्यग्दृष्टि जीव अरिहंत परमात्माके वीतरागमार्गसे भिन्न

किसी भी कुमार्गकी श्रद्धा स्वप्नमें भी नहीं करता। यह बात तो कुदेवका सेवन छोड़नेके उपदेशमें आ गई। यहां तो आत्माकी पहिचान करके जो जीव सम्यग्दृष्टि हुआ उसके व्यवहारमें भी तत्त्वश्रद्धा कैसी होती है–इसका वर्णन है।

नव तत्त्वकी श्रद्धा तभी सच्ची हुई जब कि पर द्रव्यसे भिन्न और रागादि आस्रवोंसे भिन्न अपने शुद्धात्माकी रुचि करके निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट किया, और तभी भूतार्थसे नवतत्त्वोंको जाना। धर्मका प्रारंभ ऐसे सम्यग्दर्शनसे होता है। निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र तो शुद्ध परिणति है, वह संवर–निर्जरा है, और व्यवहार सम्यग्दर्शनादिमें शुभराग है, वह आस्रव है। अंतर-अनुभव सहित ज्ञायक आत्माकी प्रतीतिरूप जो शुद्ध परिणति हुई वह तो सिद्धदशामें भी रहती है; चतुर्थ गुणस्थानसे उसका प्रारंभ हो जाता है। ऐसे सम्यग्दर्शनके साथमें नवतत्त्वकी विपरीतता नहीं रह सकती। वह पुण्य–आस्रवको संवर–निर्जरा या मोक्षका कारण नहीं मानता; वह अजीवतत्त्वके भावको जीवका नहीं मानता। सभी तत्त्वोंको जैसे हैं वैसे ही जानता है।

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—ये सात तत्त्व सर्वज्ञ भगवानने देखे हैं और जिनवाणीमें उनका उपदेश है।

* जीव तत्त्व *

जगतमें अनन्त जीव हैं। स्वभावसे सभी जीव भिन्न भिन्न एकसमान हैं। परन्तु अवस्थाकी अपेक्षासे जीवोंके तीन प्रकार

होते हैं—बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। बाहरमें शरीरको ही आत्मा माननेवाला बहिरात्मा हैं, ऐसे जीव अनन्त हैं। अंतरमें देहसे भिन्न आत्माको देखनेवाला अंतरात्मा है, उसके अनेक प्रकार हैं; ऐसे अंतरात्मा जीव असंख्यात हैं-। परम सर्वज्ञपद जिसने प्राप्त कर लिया है वे परमात्मा हैं: उनके दो प्रकार हैं—अरिहन्त व सिद्ध; सिद्ध परमात्मा अनन्त हैं, अरिहन्त परमात्मा लाखों हैं। ऐसे भेदवाला जीवतत्त्व व्यवहार सम्यग्दर्शनका विषय है। निश्चय-सम्यग्दर्शनमें अपने शुद्ध जीवकी निर्विकल्प प्रतीति है, उसमें कोई भेद नहीं है। भेदको जानते समय भी समकिती जीव अकेले भेदमें ही नहीं रुकते, अभेद शुद्धात्माको लक्ष्में रखकर भेदको जानते हैं। केवलज्ञानादि पर्याय होनेका सामर्थ्य शुद्धात्मामें भरा है, अतः शुद्धात्माकी प्रतीतिमें वे सब समाजाते हैं। शुद्धात्माकी प्रतीतिमें परमात्माकी प्रतीति भी आ गई। जब आत्माका शुद्ध स्वभाव अनुभवमें लिया तब अरिहन्त भगवान और सिद्ध भगवानको भी पहचान लिया।

* अजीव तत्त्व *

अजीवके मुख्य पांच प्रकार हैं—पुद्गल, धर्मास्तिकाय. अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल। उनमें पुद्गलपरमाणु अनंत हैं; यह शरीरादि जितने भी पदार्थ इन्द्रियगम्य हैं वे सब अजीव-पुद्गलकी रचना हैं, जीवकी रचना वे नहीं हैं। अन्य चार अजीवतत्त्व सूक्ष्म-अरूपी हैं। यह जीवतत्त्व और अजीवतत्त्वको भिन्न भिन्न जानना चाहिए; अजीवके किसी प्रकारको जीवमें न मिलाना, और

जीवके किसी प्रकारको अजीवमें न मिलाना। ज्ञान है सो जीवका गुण है, वह इन्द्रियका गुण नहीं है; जड़ इन्द्रियोंसे ज्ञान नहीं होता। इतना तो व्यवहारश्रद्धामें आ जाता है। इसमें भी जिसको विपरीतता हो उसे तो व्यवहार तत्त्वश्रद्धा भी सच्ची नहीं होती। जीव–अजीव आदि तत्त्व जैसे हैं वैसे जाने विना वीतराग विज्ञान नहीं होता और मोक्षमार्ग नहीं मिलता। अरे, अकेले व्यवहार तत्त्वके प्रकारोंको जाननेसे भी मोक्षमार्ग नहीं मिलता। शुद्धनयसे अपने अन्तरमें अखंड चेतनारूप शुद्ध आत्माको स्व-विषय बनाये विना पर-विषयोंका सच्चा ज्ञान नहीं होता, अर्थात् सच्चा व्यवहार नहीं होता। स्वके ज्ञानसे रहित परके ज्ञानको व्यवहार भी नहीं कहते। मोक्षमार्गमें निश्चय सहित है व्यवहारकी यह बात है, अतः स्वका सच्चा ज्ञान साथमें रखकर परके ज्ञानकी बात है। स्वको जाने विना अकेले परको जानना चाहे तो परमें एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्व हो जायगा, क्योंकि परसे भिन्न जो अपना अस्तित्व है वह तो उसके ज्ञानमें या प्रतीतिमें आया ही नहीं।

* आस्रव तथा बंधतत्त्व *

मिथ्यात्वादि भावोंसे कर्मका आस्रव तथा बंध होता है; पाप और पुण्यका भी आस्रव तथा बंधमें समावेश होता है। पुण्य–पाप आदि आस्रव हैं उनको आस्रवरूप जानना, परन्तु उनको संवरमें न मिलाना, यह आस्रवतत्त्वकी श्रद्धा है। आस्रवका कोई भी प्रकार जीवके लिये हितरूप नहीं है, या मोक्षका कारण नहीं है–ऐसा जानना चाहिए। जो किसी प्रकारके भी आस्रवको हितरूप माने

उस जीवको आस्रवतत्त्वकी सच्ची श्रद्धा नहीं है। शुभ या अशुभ दोनों प्रकारके बन्धन छोड़ने योग्य हैं, उनमेंसे एक भला नहीं है। शुभभाव भी जीवको बन्धका ही साधन है, वह मोक्षका साधन नहीं है। जो नवतत्त्वकी सच्ची पहचान करे उसे पुण्यमें हितबुद्धि नहीं रहती; पुण्यको भी वह त्याज्य समझता है, चैतन्यसे भिन्न समझता है।

* संवर तत्त्व *

कर्मोका संवर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभावसे होता है; आत्माकी शुद्धता होनेपर अशुद्धता तथा कर्मका आना बंद हो जाता है। किस भूमिकामें कितना संवर होता है और वहां कैसा निमित्त होता है तथा कैसा निमित्त छूट जाता है, यह भी पहचानना चाहिए, उसमें विपरीतता नहीं होना चाहिए। जैसे कि मुनिदशामें वीतरागभावसे इतना अधिक संवर हो गया है कि वहां वस्त्रके परिग्रहकी वृत्ति जितना आस्रवभाव नहीं रहता और निमित्त-रूपसे वस्त्र ग्रहणादि भी नहीं होता। जो इससे विपरीत माने उसे मुनिके संवरकी पहचान नहीं है, संवर दशावाले मुनिको उसने नहीं पहचाना। उसीप्रकार जहां सम्यग्दर्शन हो वहां मांसाहारादि जैसी पाप प्रवृत्ति होती ही नहीं। अतः ऐसा पापास्रव भी वहां नहीं होता; ऐसी संवरदशा होती है।

* निर्जरा तत्त्व *

धर्मीका उपयोग जैसे जैसे स्वरूपमें एकाग्र होता जाता है वैसे वैसे शुद्धता बढ़ती जाती है, और उतनी अशुद्धता तथा कर्म

खिर जाते हैं, उसका नाम निर्जरा है। जीवकी शुद्धतासे निर्जरा होती है, देहकी क्रियासे निर्जरा नहीं होती। शरीरका कृश होना या उसमें कष्ट लगना यह निर्जराका कारण नहीं है अतएव वह धर्म नहीं है। चैतन्यकी विशुद्धतारूप जो तप उससे सच्ची निर्जरा होती है और वह धर्म है। कर्मकी स्थिति पककर जो सविपाक निर्जरा होती है वह तो सभी जीवोंके होती है, उसके साथ धर्मका सम्बन्ध नहीं है, और वह निर्जरा मोक्षका कारण नहीं है।

* मोक्ष तत्त्व *

जहाँ संपूर्ण निराकुल सुख व ज्ञान है, और जिसमे कर्मका, रागका या दुःखका सर्वथा अभाव है ऐसी मोक्षदशा है। मोक्ष क्या है, और उसका उपाय क्या है यह पहचानना चाहिए। रागके सर्वथा अभावरूप जो मोक्ष उसका उपाय भी राग रहित ही है। मोक्षके उपायरूप सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीनों ही रागरहित हैं। राग मोक्षका उपाय नहीं है। रागको जो मोक्षका साधन मानता है उसको मोक्षतत्त्वकी पहचान नहीं है। मोक्षका कारण और बन्धका कारण भिन्न भिन्न है, उनको भिन्नरूप जानना चाहिए। जो बन्धका कारण हो वह मोक्षका भी कारण नहीं होता, और जो मोक्षका कारण हो वह बन्धका भी कारण नहीं होता। ऐसे सात तत्त्वोंकी पहचानमें तो सबका स्पष्टीकरण हो जाता है। सर्वज्ञ भगवानके श्रीमुखसे सात तत्त्वका जो स्वरूप निकला, उसको जाननेसे सारे विश्वके तत्त्वोंका ज्ञान हो जाता है। जीव क्या है? अजीव क्या है? कैसे भावसे जीवको सुख होगा? कैसे भावसे जीवको

दु:ख होता है?–उनके ज्ञानके विना जीवको धर्म या सुखका उपाय नहीं हो सकता। जो आत्मा मोक्षदशारूप हुए हैं वे देव हैं, जो आत्मा संवर–निर्जरारूप हुए हैं वे गुरु हैं,—ऐसे सच्चे देव–गुरुकी पहचान भी नव तत्त्वके ज्ञानमें आ जाती है। और नव-तत्त्वोंके विकल्पोंसे पार होकर ज्ञान अनुभूति सहित शुद्ध आत्माकी प्रतीति करना सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। अहो, यह तो वीतराग-जैनधर्मकी प्रथम भूमिकाकी बात है; धर्मका यह मूल है।

वीतराग जैनमार्गके सिवा अन्य मतमें तो सच्चे तत्त्व होते ही नहीं, क्योंकि उनमें सर्वज्ञता ही नहीं है। जिनमतमें सर्वज्ञ-भगवानने अतीन्द्रियज्ञानसे जानकर नवतत्त्व जिस प्रकार कहे हैं; उसी प्रकार अच्छी तरह पहचानकर श्रद्धा करना सो सम्यग्दर्शन व्यवहारसे है, उसमे भेद और विकल्प हैं अत. उसे व्यवहार कहा; और उसी समय साथमें अपने शुद्ध आत्माकी जो रागरहित निर्विकल्प प्रतीति है सो सम्यग्दर्शन निश्चयसे है; यह निश्चय सम्यग्दर्शन मोक्षका सच्चा कारण है।

देखो भाई! अपने आत्माके सच्चे स्वरूपकी पहचान करनेके लिये, सर्वज्ञ कथित तत्त्वोंका श्रवण करके अंतरमें उसका विचार–विवेक और अनुभव करके दृढ़ निर्णय करना चाहिए; तत्त्वमें कहीं भी थोड़ीसी भी विपरीतता न रहे इस तरह सर्व प्रकारसे स्पष्ट निर्णय करना चाहिए। सर्वज्ञ वीतरागदेव अरिहन्त परमात्माने जो धर्म कहा और जीवका जैसा स्वरूप कहा उसकी पहचानके बिना अन्य प्रकारसे धर्म मान लेनेसे तो जीवको कुछ धर्म नहीं होगा;

वह तो शुभ-अशुभमें घूमकर वहीं का वहीं रहेगा;—कहाँ? कि संसारमें ही। सम्यग्दर्शनके विना रागमें या देहकी क्रियामें जो सामायिकादि धर्म मान लेते हैं उनको तो जीव-अजीवकी भिन्नताका भी भान नहीं है। रागसे भिन्न आत्माका भान ही जिसको नहीं है उसको रागके अभावरूप सामायिक कैसे होगी?

प्रश्नः—शक्कर तो जब भी खावे तब मीठी ही लगे, अंधेरेमें भी वह मीठी लगे, वैसे सामायिकसे तो धर्म ही होता है, सामायिक करनेवाला अज्ञानी भी हो?

उत्तरः—अच्छी बात है भाई, शक्कर मीठी ही लगे, परंतु होनी तो शक्कर चाहिए न! शक्करके बदलेमें पथ्थरके टुकड़ेको शक्कर मानकर खायेगा तो क्या होगा? वैसे सामायिकसे धर्म होता है यह बात सच्ची है, परन्तु होनी तो वह सामायिक चाहिए न? सामायिकके बदलेमें यदि राग-द्वेष-अज्ञानभावोंको सामायिक मान लेगा तो उसको धर्म तो कुछ नहीं होगा, परन्तु अज्ञानकी पुष्टि होगी। सामायिकके नाम पर रागका सेवन करनेसे तो कुछ धर्म नहीं होता। राग रहित समभावी-ज्ञानस्वरूपी आत्मा कैसा है, जिसे उसकी पहचान हो और ऐसे आत्माके ध्यानमें एकाग्रताके उद्यमसे राग-द्वेषके विषमभाव उत्पन्न ही न हों और वीतरागी समभाव रहे उसीका नाम है सामायिक धर्म, और वही मोक्षका कारण है। ऐसी सामायिकको जो पहचाने भी नहीं, रागसे भिन्न आत्माको जाने भी नहीं ऐसे अज्ञानीको कभी सामायिक नहीं होती। जैसे कोई खाता हो फिटकरी और माने कि मैं शक्कर खा रहा हूँ—तो

वह मूर्ख ही गिना जायगा, वैसा अज्ञानी करता है शुभराग और मानता है कि मैं सामायिकधर्म कर रहा हूं;–ऐसे अज्ञानके कारण जीव संसारकी चार गतिमें दुःख भोग रहा है. उनमेंसे छूटकारा पानेकी यह बात है। सम्यग्दर्शन पूर्वक वीतरागस्वरूपमें स्थिरताको भगवानने सामायिक कहा है, और वही मोक्षमार्ग है। दो घड़ीकी सामायिक मोक्ष देती है–ऐसी उसकी महिमा है।–परन्तु सम्यग्दर्शन-के विना सामायिक या मोक्षमार्ग कभी होता ही नहीं।

प्रश्न:—जीव अनन्तबार नवमी ग्रैवेयक तक गया तब उसने नवतत्त्वकी श्रद्धा तो की थी, फिर भी वह संसारमें क्यों रुला?

उत्तर:—क्योंकि उसने अंतर्मुख होकर शुद्धात्माकी अनुभूति या श्रद्धा न की, अकेले नवतत्त्वके भेदके विकल्पमें ही वह रुक गया, अतः निश्चयके लक्षसे रहित अकेले व्यवहारके पक्षसे नव-तत्त्वको शास्त्रानुसार माना और उसके विकल्पको ही सम्यग्दर्शन समझकर उसमे रुक गया, इस कारण वह संसारमें ही रुला। यहां उसकी बात नहीं है; यहा तो मोक्षमार्गमे सम्यग्दर्शनसहित तत्त्वश्रद्धा कैसी होती है उसकी बात है; निश्चयसहित व्यवहारकी बात है। अज्ञानी अकेली व्यवहार श्रद्धा तो करता है परन्तु निश्चय सहितका व्यवहार उसको नहीं होता।

यद्यपि जो व्यवहार तत्त्वश्रद्धा है वह स्वयं सम्यग्दर्शन नहीं है, परन्तु उसकी साथमें शुद्ध आत्माकी जो निश्चयश्रद्धा है वह सच्चा सम्यग्दर्शन है, और साथके व्यवहारमें उसका उपचार आता है। यदि सच्ची वस्तु हो तब दूसरेमें उसका उपचार हो सकता है.

परन्तु सत्यके विना उपचार किसका? उसके तो उपचार ही सत्य हो गया! जो व्यवहारसम्यग्दर्शन है वह श्रद्धागुणकी पर्याय नहीं है, वह तो विकल्प सहित ज्ञानकी दशा है। जो निश्चय सम्यग्दर्शन है वह श्रद्धागुणकी सम्यक् पर्याय है, वह विकल्पसे रहित है। श्रद्धामें विकल्प नहीं होता वह तो निर्विकल्प ही होती है।

मोक्षशास्त्रके पहले ही सूत्रमे मोक्षमार्गरूपसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका कथन किया है, ये तीनों निश्चय है। जिस तत्त्वार्थ-श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहा उसकी साथमें भूतार्थदृष्टिरूप अपने शुद्धात्माकी श्रद्धा भी है, अत वह निश्चयसम्यग्दर्शन है और वह मोक्षमार्गका अवयव है। व्यवहार तत्त्वके भेदोंका लक्ष या विकल्प वह मोक्षमार्ग नहीं है; परन्तु निश्चयके साथवाले व्यवहार सम्यग्-दर्शनमे भेदरूप तत्त्वोंका जानपना होता है उसका यहा वर्णन है। उनमेसे जीवतत्त्व और उसके भेदोका वर्णन आगेकी तीन गाथाओंमें करते हैं।
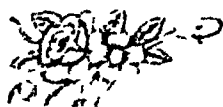
जीवतत्त्व और उसके भेद

व्यवहार सम्यग्दर्शनमें जीवादि सात तत्त्वोंका श्रद्धान् करनेको कहा; अब उन तत्त्वोंका वर्णन करते हैं। उनमे प्रथम जीवतत्त्वका वर्णन तीन श्लोकके द्वारा करते हैं—

[श्लोक ४–५–६]

वहिरातम, अंतरआतम परमातम, जीव त्रिधा है,
देह जीवको एक गिनें वहिरातम तत्त्वमुधा है।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविधके अन्तर-आतम ज्ञानी,
द्विविध संगविन शुध उपयोगी मुनि उत्तम निजध्यानी ॥४॥

मध्यम अंतर–आतम हैं जे देशव्रती अनगारी,
जघन कहे अविरत–समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी।
सकल निकल परमातम द्वैविध तिनमें घाति निवारी,
श्री अरिहन्त सकल परमातम. लोकालोक निहारी ॥५॥

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल वर्जित सिद्ध महन्ता,
ते हैं निकल अमल परमातम भोगैं शर्म अनंता।
वहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर आतम हूजै;
परमातमको ध्याय निरंतर जो नित आनंद पूजै ॥६॥

निश्चय सम्यग्दर्शनमे तो, ऐसे शुद्ध जीवकी अभेद श्रद्धा है कि जो एक अखंड ज्ञायकभावरूप है और जो शुभाशुभभावरूप भी

नहीं होता, उसमे भेद नहीं पडते। यहां व्यवहार सम्यग्दर्शनके विषयरूप साततत्त्वोंका कथन होनेसे इसमें जीवकी अवस्थाके प्रकार भी दिखाये हैं। निश्चयसे सभी जीव एकसे ज्ञानस्वभावी हैं; अवस्थाकी अपेक्षासे जीवोंके तीन प्रकार हैं—(१) बहिरात्मा; (२) अंतरात्मा, (३) परमात्मा। ये तीनों जीवकी पर्यायें हैं और द्रव्यस्वभावसे सभी जीव परमात्मस्वरूप परिपूर्ण हैं, ऐसे स्वभावका भान करके उसमे एकाग्र होनेसे पर्यायमेसे बहिरात्मपना छूटकर जीव स्वयं अंतरात्मा तथा परमात्मा होता है। परमात्मा होनेके बाद वह जीव फिर कभी बहिरात्मा नहीं होता, परन्तु बहिरात्मा जीव सम्यक्त्वादिके द्वारा परमात्मा हो सकता है। अहा, प्रत्येक जीवमें परमात्मा होनेकी स्वाधीन ताकत है—यह बात जैनशासन ही दिखाता है।

विश्वमे भिन्न-भिन्न अनंत जीव है, प्रत्येक जीवका लक्षण ज्ञानचेतना है। अवस्थामें वे जीव तीन प्रकाररूपसे परिणमन करते हैं, उनका स्वरूप यहां दिखाया है—

* बहिरात्माका स्वरूप *

जो अपने अंतरंगचेतनस्वरूपको भूलकर बाह्यमे शरीर और जीवको एक मान रहा है वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है, वह तत्त्वोंमें मूढ है। ऐसे बहिरात्म जीव अनन्त हैं, जगतके जीवोंमेसे बहुत भाग मिथ्यादृष्टि–बहिरात्मा है। परन्तु यह बहिरात्मपना जीवका सच्चा स्वरूप नहीं है, अत. उसे छोड़कर जीव स्वयं अतरात्मा तथा परमात्मा हो सकता हैं।

❀ अंतरात्माका स्वरूप ❀

अंतरमें देहसे भिन्न आत्मस्वरूपको जो जानता है वह अंतरात्मा है। नरकमें भी जो जीव सम्यग्दृष्टि हैं वे अंतरात्मा हैं। मेंढ़क, सिंह, बन्दर, हाथी इत्यादि तिर्यंचमें भी जो जीव देहसे भिन्न आत्माका अंतरमें अनुभव करते हैं वे अंतरात्मा हैं। ऐसे अंतरात्मा असंख्यात हैं। चौथेसे बारहवें गुणस्थान तकके जीव अंतरात्मा हैं उनमें जो द्विविध परिग्रहसे रहित हैं—अंतरमें मिथ्यात्वादि मोहसे रहित हैं, बाहरमें वस्त्रादिसे रहित हैं, और शुद्धोपयोगसे निजस्वरूपके ध्यानमें एकाग्र हैं ऐसे मुनिवर तो उत्तम अंतरात्मा हैं, अर्थात् सातवें गुणस्थानसे लेकर बारहवें गुणस्थान तकके जीव उत्तम अंतरात्मा हैं, अंतरमे आत्माके अनुभव सहित जो देशव्रती-श्रावक हैं या महाव्रती-मुनि हैं वे मध्यम अंतरात्मा हैं अर्थात् पांचवें व छठवें गुणस्थानवाले जीव मध्यम-अंतरात्मा हैं; और जो अविरत-सम्यग्दृष्टि हैं, जिनके व्रतादिक न होनेपर भी अंतरमें देहसे भिन्न शुद्ध आत्माके अनुभवरूप सम्यग्दर्शन हुआ है वे जीव जघन्य-अन्तरात्मा हैं। इस प्रकार उत्तम-मध्यम और जघन्य ऐसे तीन प्रकारके अंतरात्मा जानो। चौथेसे बारहवें गुणस्थान तकके ये सभी अन्तरात्मा जीव आत्माके जाननेवाले हैं और मोक्षमार्गमे चलनेवाले हैं। बारह अंगके जाननेवाले गणधर भगवान, और छोटासा एक सम्यग्दृष्टि मेढ़क,—ये दोनों अन्तरात्मा हैं, दोनों 'शिवमगचारी' हैं—मोक्षमार्गी हैं। देखो, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत-सम्यग्दृष्टि गृहस्थको भी मोक्षमार्गी कहा है। समन्तभद्र महाराजने भी कहा है कि गृहस्थो मोक्षमार्गस्थ निर्मोहो...' (रत्नकरंडश्रावकाचार)

* परमात्माका स्वरूप *

जिन्होंने शुद्धात्माके ध्यानरूप शुद्धोपयोगके द्वारा घातिकर्मोंको दूर करके, केवलज्ञानरूप परमपद प्रगट किया है वे परमात्मा हैं, वे लोकालोकको प्रत्यक्ष जाननेवाले हैं। ऐसे परमात्माके दो प्रकार- अरिहंतपरमात्मा और सिद्धपरमात्मा। अरिहंतपरमात्मा शरीरसहित होनेसे 'सकल' परमात्मा कहलाते हैं; ऐसे लाखों अरिहंतभगवंत विदेहक्षेत्रमें इस समय विद्यमान हैं और सदैव होते रहते हैं। सिद्ध परमात्माको शरीर नहीं होता अतः वे निकलपरमात्मा कहलाते हैं, वे ज्ञानशरीरी हैं, अष्टकर्मोंसे रहित हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें विराजमान परमात्मा अरिहंतदेव हैं; और गुणस्थानोंसे पार देहातीत सिद्ध परमात्मा हैं। चारों गतिसे मुक्तजीव ऐसे सिद्ध-परमात्मा अनंत हैं अरिहंत और सिद्ध परमात्मा आत्माके अनंतसुखका अनुभव करते हैं।

—ऐसे तीन प्रकारमेसे वहिरात्मरूपको हेय जानकर छोड़ना, अंतरमे देहसे भिन्न शुद्ध परम स्वरूपको पहचानकर अंतरात्मा होना, और निरंतर उसीके ध्यानसे परमात्मा होकर नित्य अनंत आनन्दका अनुभव करना। प्रत्येक जीवमे ऐसे परमात्मा होनेकी ताकत है।

कोई कहता है-हम तो छोटे कस्बेमे रहनेवाला, व्यापार-धंधा या नोकरीमे जीवन बितानेवाला, और ऐसा परमात्मा होनेकी इतनी बड़ी वात हमारी समझमें कैसे आवे?

तो कहते हैं कि-सुन भाई! तू कस्बेमें नहीं रहा, तू तो तेरे अनन्तगुणके बड़े वैभवमें रहा हो। दुःखसे छूटनेके लिये आत्माकी

दरकार करके जो समझना चाहे उन सभीको समझमें आ जाय ऐसी यह बात है। तेरे स्वरूपमे जो है वही तेरेको दिखाता है, इससे अधिक कुछ नहीं कहते! भाई! जीवनमें यह चीज लक्षमें लेने योग्य है, इसके विना दूसरी सब बातें थोथी हैं—निष्फल हैं, उनमे आत्माका कुछ भी हित नहीं है। धन कमानेके लिये दिन रात परिश्रम करके जीवन खो देते हो, परन्तु उस धनमें या महल–मोटरमें कहीं सुखकी एक बून्द भी नहीं है, अरे! स्वर्गमें भी सुख नहीं है तब मनुष्य लोकके वैभवकी क्या बात? सुख तो आत्माके सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रमें ही है, उसके अतिरिक्त किसी भी बाह्य-पदार्थके लक्षसे तो आकुलता और दुःख ही है। अतः आत्माका सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र करना चाहिए।

भाई! विचार तो कर कि रुपया, महल, मोटर, रेडियो आदि पदार्थ क्या जीवतत्त्व हैं? कि अजीव हैं? वे तो अजीव हैं।–तो क्या अजीवमें कभी सुख होता है? ना, अजीवमें सुख कभी नहीं होता,–तब वे तुझे सुख कहांसे देगा? अत. अजीवमें परमें सुखकी कल्पनाको छोड़।

अब उस अजीवके सन्मुख झुका हुआ जो तेरा बाह्य भाव (चाहे वह अशुभ हो या शुभ) उसमें भी आकुलता और दुःख ही है, उसमे चैतन्यके आनन्दका वेदन कुछ भी नहीं है; अतः, उस परलक्षी शुभाशुभभावमे भी सुख कल्पनाको छोड़ दे। सुखसे भरपूर जो तेरा आत्मस्वभाव है, उसमें उपयोग लगाते ही स्वलक्षमें परम आनन्दकी अनुभूति होती है।

देखो, सात तत्त्वके जाननेमें यह बात आ जाती है।—

ज्ञान और आनन्द जिसमें है वह जीवतत्त्व;

उसकी संमुखतासे आनन्दका जो अनुभव हुआ उसमें संवर-
निर्जरा-मोक्ष आ गये।

ज्ञान और सुख जिसमे नहीं है वह अजीवतत्त्व है;

उसकी संमुखतासे आकुलताका जो अनुभव होता है वह
पुण्य-पाप-आस्रव-बंधमें आता है।

—इस प्रकार तत्त्वका पृथक्करण करके समझे तो मोक्षमार्गका सच्चा निर्णय अवश्य होता है। गागरमें सागरकी तरह इस छहढाला जैसी छोटी पुस्तकमें अनेक शास्त्रका सार भर दिया है। इसमे पंडितजीने पूर्वाचार्योंके उपदेश अनुसार कथन किया है।

साततत्त्वमें जीवतत्त्व कैसा है—उसका कथन चल रहा है। विदेह क्षेत्रोंमे देह सहित अरिहंत भगवंतो सदैव विराजते हैं, यहां भरतक्षेत्रमें भी ढाईहजार वर्ष पहले अरिहंत भगवान महावीर साक्षात् विचरते थे उन भगवंतोंने जीवादि तत्त्वोंका जैसा स्वरूप कहा वैसा ज्ञानी सन्तोंने झेलकर स्वयं अनुभव किया और शास्त्रमे कहा; वही यहा कहा जाता है। सस्कृत भाषामें सिद्धान्तसूत्रोंकी सबसे प्रथम रचना करनेवाले श्री उमास्वामी आचार्य वीतरागतामें झूकनेवाले परम दिगंबर सन्त थे और कुंदकुंदाचार्यदेवके वे शिष्य थे, उनके द्वार रचित तत्त्वार्थसूत्र जैनसिद्धान्तकी गीता जैसा है, उसके ऊपर 'सर्वार्थसिद्धि' 'राजवार्तिक' 'श्लोकवार्तिक' जैसी बड़ी बड़ी टीकायें श्री पूज्यपादस्वामी, अकलंकस्वामी और विद्यानंदीस्वामी जैसे

बड़े बड़े आचार्योंने की है; उस तत्त्वार्थसूत्रमें मोक्षमार्ग, सात तत्त्व आदि अनेक विषयोंका वर्णन किया है। पहले ही सूत्रमें सम्यग्-दर्शन–ज्ञान–चारित्रको मोक्षमार्ग कहा उसमें निश्चय सम्यग्दर्शनादिकी बात है। यद्यपि उसमें सात तत्त्वकी बात की है, परन्तु उन सात तत्त्वोंको जानकर, उनमेंसे शुद्धनयके विषयरूप शुद्धात्माको लक्षमे लेकर, उसकी सन्मुख होकर निर्विकल्प प्रतीत करे ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शन सहितकी यह बात है। जैसे समयसारकी १३ वीं गाथामें आचार्यदेवने कहा कि 'जीवादि नव तत्त्वोंको भूतार्थसे जानना सो सम्यग्दर्शन है'—वहाँ भूतार्थदृष्टि करते ही उसमे शुद्ध आत्माकी प्रतीत आ गई, और नवतत्त्वके विकल्प छूट गये। शुद्ध दृष्टिमें नव भेद नहीं हैं, उसमें तो अकेला शुद्ध आत्मभग-वान ही आनन्द सहित प्रकाशमान है; और ऐसे आत्माकी दृष्टिपूर्वक नव तत्त्वकी प्रतीतिका यह वर्णन है। कोई जीव मात्र नवतत्त्वका रटन किया करे और उसके विकल्पका ही अनुभव किया करे परन्तु जब तक विकल्पोंसे पार होकर शुद्ध आत्माको दृष्टिमें न ले तबतक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता, वह तो बहिरात्मा ही बना रहता है। यहां तो जो जीव अन्तरात्मा हुआ है वह विकल्पोंसे भिन्न रहकर नवतत्त्वको जैसे हैं वैसे जानता है उसकी बात है उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है; अन्तरमें शुद्धात्मामें ही स्वामीत्वबुद्धि रहती है सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। जहाँ जो विवक्षा हो वह समझना चाहिए। निश्चयश्रद्धाके विषयमें नव भेद नहीं आते, उसमें अकेले निजरूपकी श्रद्धा है। जैसे राजाके साथमें अन्य लोगोंको देखकर

उन्हें भी 'यह राजा आया' ऐसा उपचारसे कहा जाता है; सच्चा राजा तो वे नहीं, दूसरा है। वैसे शुद्ध आत्माकी दृष्टिरूप निश्चय-सम्यक्त्व वह तो मोक्षमार्गमें राजाके समान है, परन्तु उसके साथमें नवतत्त्वकी प्रतीतको देखकर उसको भी 'यह सम्यग्दर्शन है' ऐसा उपचारसे कहा जाता है, सच्चा सम्यग्दर्शन तो वह नहीं, दूसरा है। परन्तु उसके साथमें नवतत्त्वके जो विकल्प होते हैं वे जैसे व्यवहारमें दिखाये वैसे ही होते हैं, उनसे विरुद्ध नहीं होते। व्यवहारमें भी जो तत्त्व सर्वज्ञदेवने दिखाये हैं उनसे विपरीत मान्यता धर्मीको नहीं होती। अहो, यह तो निश्चय–व्यवहारकी संधि सहित अलौकिक जिनमार्ग है,—वीतराग भगवंतों जिस मार्ग पर चले उसी मार्गमें चलनेकी यह बात है। वीतरागी दृष्टिसे ही उसका प्रारंभ होता है, रागसे उसका प्रारंभ नहीं होता। जिसने अपने श्रद्धा ज्ञानमें पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माको झेला है, अनुभूतिके द्वारा अन्तरमें अपने परमात्मस्वरूपका अनुभव किया है वह अन्तरात्मा मोक्षमार्गमें चलनेवाला है, वह अपनी पर्यायको भी जानता है। पहले अज्ञानदशामें बहिरात्मपना था, तब मैं एकान्त दुःखी था; उस दशाको छोड़कर अब अन्तरात्मपना हुआ है और आत्मिक-सुखका अंश अनुभवमें आया है; अब शुद्धात्माके ही ध्यानसे पूर्ण सुखस्वरूप परमात्मदशा अल्पकालमें होगी। इस प्रकार बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेदसे जीवको पहचानना सो व्यवहारश्रद्धा है। यहाँ संक्षेपसे प्रयोजनरूप ये तीन प्रकार कहे, वैसे तो चौदह गुणस्थानके अनेक प्रकार हैं, एकेन्द्रियादि मार्गणाकी अपेक्षासे अनेक प्रकार हैं, ऐसे अनेक प्रकारके पर्यायभेदसे जीवको

पहचाननेका व्यवहार है, परमार्थमें तो अपने द्रव्य-गुण-पर्यायसे अभेद एकाकार शुद्ध जीव है, उसमें कोई भेद विकल्प नहीं होते।

यहां जीवके अंतरात्मा आदि मुख्य तीन भेद कहे, असंख्य प्रकार हैं वह कैसे कहे जाय? और इन तीन भेदका स्वरूप अच्छी तरह पहचाननेसे अन्तरमें हेय-उपादेयका विवेक होकर भेदज्ञान-प्रयोजन सिद्ध हो जाता है; इन तीन भेदको जाननेवाला जीव बहिरात्मपना छोड़कर अंतरात्मा होकर परमात्माको ध्याता है।

देहसे भिन्न चेतनारूप अपना अस्तित्व है उसे न देखकर, 'देह ही मैं हूं' ऐसा मानकर, अथवा देहाश्रित रागादिभावरूप ही आत्माको समझकर बन बाह्यभावोंमें ही जो वर्तता है वह बहिरात्मा है; आप कौन? और पर कौन? उसका भी जिसको विवेक नहीं वह तत्त्वमें विमूढ है। रागादि परभाव कहीं अंतरस्वभावके आश्रयसे उत्पन्न नहीं होते, अतः वे जीवके अंतरंग भाव नहीं हैं, वे बाह्यवस्तुके आश्रयसे होनेवाले बहिर्भाव हैं। जीवका अंतरस्वभाव जो ज्ञान आनंदमय शुद्ध है, उसके आश्रयसे होनेवाले सम्यग्दर्शनादि भाव वे अन्तरंग भाव हैं; उनका अनुभव करनेवाला अन्तरात्मा है। और जो बहिर्भावोंका ही अनुभव करता है वह बहिरात्मा है। परमें-बाह्यमें आत्मत्व माननेवाला बहिरात्मा, अन्तरमें परसे भिन्न आत्माको देखनेवाला अंतरात्मा; परम-उत्कृष्ट चैतन्यपद जिसने प्राप्त किया वह परमात्मा है।

जो बहिरात्मा है वह भी ज्ञानस्वरूपी आत्मा ही है परन्तु अज्ञानसे वह बहिरात्मभावरूप हुआ है; सम्यग्दृष्टिने आत्माको जैसा

है वैसा जानकर बहिरात्मभाव छोड़ा है और परमात्मभावको वह साध रहा है।

देहादिकी क्रियाको आत्माकी माननेवाला बहिरात्मा है, जिसको देहसे भिन्न आत्माका भान नहीं है, ऐसे बहिरात्मा जीवोंको सम्यग्दर्शन नहीं होता, एवं श्रावकधर्म या साधुधर्म भी उनको नहीं होता। शरीरकी दशाओंसे आत्माको धर्म–अधर्म होनेका जो मानते हैं उनको स्पष्ट बहिरात्मा समझना। देखो, दूसरे जीवोंकी भी ऐसी पहचान हो सकती है। परमात्मा कैसा होता है? अंतरात्मा कैसा होता है? और बहिरात्मा कैसा होता है? उनका स्वरूप पहचाना जा सकता है। उनको पहचानकर क्या करना? कि बहिरात्मपना छोड़ना; अंतरात्मा होकर परमात्मस्वरूप आत्माको ध्याना।

शरीर तो जड़ अजीव है, जीवका कोई धर्म उसमें घुस नहीं गया। जीवकी पर्याय अजीवमें नहीं जाती। बहिरात्मदशा भी जीवकी पर्यायमें है, वह शरीरमें नहीं है। अज्ञानसे वह मानता है कि मैं शरीरमे हूं, परन्तु वह मान्यता भी जीवने अपनी पर्यायमें की है। अरे, शरीरसे आत्माकी भिन्नताको जो न जाने उसको तो शास्त्रकारोंने तत्त्वमूढ कहा है; चाहे वह B. A. M. A. इत्यादि बहुत लौकिक पढाई पढ़ा हो तो भी जीव–अजीवके भेदज्ञानरूप आत्मविद्यामें तो वह मूढ है; उसकी लौकिक पढ़ाई आत्महितके लिये कुछ भी कामकी नहीं है। आत्महितके लिये तो जीव–अजीवका भेदज्ञान करानेवाली यह वीतरागीविद्या ही पढ़ने योग्य है।

अब, प्रश्न होगा कि वीतरागविद्याको जाननेवाला अंतरात्मा

कैसा है? तो समयसारमें कहते हैं कि वे ज्ञानी अंतरात्मा अपनी ज्ञानचेतनाके अतिरिक्त अन्य किसी भावको किंचित् भी अपना नहीं मानते, सदैव अपनेको ज्ञानचेतनारूप ही देखते हैं—अनुभव करते हैं। जीव स्वयं भेदज्ञान करके जब अंतरात्मा हो तभी वह ऐसे अंतरात्माकी सच्ची पहचान कर सकता है। अपनेमें आत्माका स्वसंवेदन किये बिना अकेले अनुमानके द्वारा दूसरे ज्ञानी धर्मात्माको भी नहीं पहचाना जाता। अतः आत्मा-अनात्माका भेदज्ञान करके स्वयं अंतरात्मा होनेकी यह बात है। आत्माके स्वरूपको जो यथार्थ जानता है वही अंतरात्मा है। आत्माका स्वरूप रागसे व देहसे भिन्न है। रागका और देहका नाश होने पर भी आत्मा तो अपने चेतनस्वभावसे सदैव जीवंत है, उसके किसी भी स्वभाव-धर्मका कभी नाश नहीं होता। ऐसे अपने शुद्ध आत्माका अनुभव करनेवाला अन्तरात्मा, वह तो परमात्माका पड़ोशी है; उसने बहिरात्मपन छोड़कर परमात्माके साथ संधान किया है। बहिरात्मपन छोड़के अंतरात्मा होकर परमात्मस्वरूपके ध्यानसे जीव परमात्मा बन जाता है। अतः पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं कि

त्रिविध आत्मको जानकर तज बहिरातम भाव;
होकर अन्तर आतमा, ध्या परमात्मस्वभाव।

अन्तरात्माको किसीको राग भी होता है; (सभीको नहीं होता, क्योंकि बारहवें गुणस्थानमें भी अन्तरात्मा है, वह तो वीतराग है:) नीचेकी भूमिकामें राग होनेपर भी अन्तरात्मा उससे भिन्न अपने

चेतनस्वरूपको जाननेवाला है, वह रागको मोक्षमार्ग नहीं मानते। उनमें सातवेंसे बारहवें गुणस्थान तकके उत्तम अन्तरात्मा तो शुद्धोपयोगी होकर अपने निर्विकल्प आनन्दका ही अनुभव कर रहे हैं, परमात्मदशा उन्हें अतीव निकट है। शुद्धोपयोगी होकर अन्तरमें चैतन्यपिंडका साक्षात् अनुभव कर रहे हैं। शेष अन्तरात्माओंको भी ऐसे आत्माका भान तो है, निर्विकल्प ध्यान कभी कभी होता है।

अरे, अन्तरात्माकी पहचान भी बहुत सूक्ष्म है; उसको पहचाननेसे अपनेको भी जीव अजीवका भेदज्ञान हो जाता है।

* देहादि बाह्यको आत्मा माने सो बहिरात्मा।
* परसे भिन्न अन्तरमें आत्मस्वरूपको जाने सो अन्तरात्मा।
* उत्कृष्ट—परम ज्ञान—आनन्ददशाको प्राप्त सो परमात्मा।

आत्माकी ऐसी तीन दशाको पहचानकर, बहिरात्मपनेको छोड़ना और अन्तरात्मा होकर परमात्मपदको साधना। परमात्माकी पहचान अन्तरात्माको ही होती है, बहिरात्मा उसे नहीं पहचान सकता; बहिरात्मा तो शरीरको ही देखता है।

शरीर और मैं भिन्न हूं—ऐसी शरीरसे भिन्नता भी जिसको नहीं दिखती वह रागसे भिन्न होनेरूप मोक्षमार्गमें कैसे आयेगा? अन्तरमें चेतनभाव रागसे भी भिन्न है—ऐसा भान किये बिना मोक्षमार्ग नहीं होता।

मोक्षमार्गमें वर्तनेवाले मुनिओंमें भी शुद्धोपयोगी मुनिओंको उत्तम अन्तरात्मा कहा और शुभोपयोगी मुनिओंको मध्यम अन्तरात्मा

कहा; अन्तरमें आत्माका ज्ञान तो दोनोंको है; तदुपरांत जो निर्विकल्प-अनुभूतिमें लीन हैं उनको उत्तम कहा; शुभोपयोगवालोंका उत्तम न कहा; यद्यपि वे भी तो पंचपरमेष्ठीमें हैं अतः उत्तम हैं, 'साहू लोगुत्तमा'में वे भी आ जाते हैं; परन्तु शुद्धोपयोगीकी अपेक्षासे उनको मध्यम कहा; तब फिर शुद्धात्माका जिनको भान ही नहीं ऐसे अज्ञानीके शुभकी तो क्या बात ? वह तो शुभरागके समय भी बहिरात्मा है। और भेदज्ञानी जीव अशुभभावके समय भी अन्तरात्मा है। परमात्माको तो शुभ-अशुभभाव होते ही नहीं।

अज्ञानी चाहे शुभभाव करे, अकेले व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका पालन करे तो भी उसका स्थान जघन्य अन्तरात्मासे भी नीचा है अर्थात् वह बहिरात्मा ही है। जघन्य अन्तरात्माका स्थान तो मोक्षमार्गमें है परन्तु बहिरात्माका स्थान मोक्षमार्गमें नहीं है। निर्विकल्प अनुभूतिपूर्वक शुद्ध आत्माकी अन्तर्दृष्टिके बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता, और सम्यग्दर्शनके बिना अन्तरात्मपना नहीं होता। जघन्य अर्थात् सबसे छोटा अन्तरात्मा भी अन्तरमें निश्चय श्रद्धा-ज्ञान सहित ही होता है। श्रद्धाकी अपेक्षा उसका जघन्यपना नहीं है, चारित्रकी अपेक्षासे जघन्यपना है।

देखो, अन्तरात्मा चाहे उत्तम हो, मध्यम हो या जघन्य हो, वे तीनों प्रकारके अन्तरात्मा मोक्षमार्गी है—'तीनों शिवमगचारी।' चौथे गुणस्थानवाला जघन्य अन्तरात्मा भी मोक्षमार्गी है, शिवमगचारी है। चौथेसे बारहवें तकके सभी अंतरात्मा मोक्षमार्गमें चलनेवाले हैं। निश्चयसम्यग्दर्शन हुआ उसके प्रतापसे मोक्षमार्गका प्रारम्भ हो

गया। जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं ऐसा जीव व्रतादि करे या द्रव्यलिंग धारे तो भी अन्तरात्माकी कक्षामें वह नहीं आता, वह तो बहिरात्मा ही है। व्रतरहित किन्तु सम्यक्त्व सहित ऐसा जीव तो मोक्षमार्गी है, परन्तु सम्यक्त्वरहित और व्रतसहित ऐसा जीव मोक्षमार्गमें नहीं है। कोई जीव भले द्रव्यलिंगी होकर पंचमहाव्रतका पालन भी करता हो, तो भी जो मिथ्यादृष्टि है उसको चारित्रके लेशका भी सद्भाव नहीं कहा; जब कि अव्रती होते हुए भी सम्यग्दृष्टि–धर्मात्माके चारित्रमोहकी चार प्रकृतिका (अनंतानुबंधी क्रोधादिका) तो अभाव हुआ है, और उतने अंशमें चारित्रगुण व्यक्त हुआ है। अहा, सम्यग्दृष्टि जीवोंकी अन्तरदशा कोई अनोखी है। इस छहढालाके कर्ता पं. दौलतरामजी ही एक भजनमें सम्यग्दृष्टिकी अद्भुत दशाका वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

चिन्मूरत दृगधारीकी मोहि, रीति लगत है अटापटी। टेक।

बाहिर नारकिकृत दुख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी।
रमत अनेक सुरनिसँग पै तिस, परनतितैं नित हटाहटी॥ चिन्मू०॥

ज्ञान विराग शक्तितैं विधिफल, भोगतपैं विधि छटापटी।
सदन निवासी तदपि उदासी तातैं आस्रव छटाछटी॥ चिन्मू०॥

जे भव हेतु अबुधके ते तस, करत बंधकी झटाझटी।
नारक पशु तिय षंढ विकलत्रय, प्रकृतिनकी ह्वै कटाकटी॥ चिन्मू०॥

संयम धर न सकै पै संयम, धारनकी उर चटाचटी।
तासु सुयश गुनकी दौलतके लगी रहै नित रटारटी॥ चिन्मू०॥

अहो, चैतन्यमूर्ति आत्माकी दृष्टिके धारक सम्यग्दृष्टि जीवोंकी दशा कोई अटपटी आश्चर्यकारक लगती है। कोई जीव नरकमें सम्यग्दृष्टि हो, बाहरमें तो उसे नारकीओंके द्वारा घोर दुःख हो रहा हो, परन्तु अंतरमें उसी समय भिन्न चेतनामें उसे आत्माके सुखरसकी गटागटी चलती है, जैसे गन्नेका रस गटक-गटक पीवे वैसे अन्तरकी चेतनामें उसे सुखरसकी गटागटी चलती है— ऐसी सम्यग्दृष्टिकी परिणति अटपटी है।

कोई जीव स्वर्गमें सम्यग्दृष्टि हो वहां बाहरमें तो अनेक देवियों के साथ वह क्रीड़ा करता हो, उस प्रकारका राग भी होता हो, किन्तु उस परिणतिसे उसको सदा हटाहटी है अर्थात् धर्मीकी चेतना उससे अलग ही अलग रहती है। —ऐसी धर्मीकी विचित्र परिणति है।

अनेक प्रकारके कर्मफल भोगते हुए भी ज्ञान वैराग्यशक्तिके कारण उसे धर्म सदैव बढ़ता ही रहता है, सदन-निवासी अर्थात् गृहवासी होते हुए भी अंतरंगमें उसके उदासीनता है इस कारण आस्रवकी उसको हटाहटी है—आस्रव छूटते ही जाते हैं। जो क्रिया अज्ञानीके बंधकी हेतु होती है वही क्रिया चैतन्यकी अंतर्दृष्टिके कारण सम्यग्दृष्टिको बंधकी हटाहटी करती है अर्थात् उसे निर्जरा ही होती है।

नरकगति, तिर्यंचगति, स्त्रीपर्याय, नपुंसकपर्याय, विकलत्रय आदि ४१ प्रकृतियोंकी तो सम्यग्दृष्टिको निरंतर कटाकटी हो गई है अर्थात् वह ४१ प्रकृतियाँ उसे बंधती नहीं हैं।

यह अविरत सम्यग्दृष्टि यद्यपि संयमको धारण नहीं कर सकता तथापि इसके अंतरमें संयम धारण करनेकी चटापटी रहती है; निरंतर संयमभावना रहती है।

अहो, सम्यग्दृष्टिके ऐसे प्रशंसनीय गुणोंका खजाना, उसका दौलतरामजीको सदैव रटन रहता है।

अहा, चैतन्यमूर्ति आत्माकी दृष्टिके धारक अंतरात्मा—सम्यग्दृष्टि जीवोंकी दशा कोई अद्भुत अचिंत्य है। उसकी पहचान करनेसे भी अपने आत्मस्वरूपकी अचिंत्य महिमा लक्षमें आ जाती है।

यह अंतरात्मा उत्कृष्ट हो, मध्यम हो या सबसे छोटा जघन्य हो परन्तु शुद्धात्माकी प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन सभीके समान है; प्रतीतमें फर्क नहीं है, सभी अंतरात्मा भूतार्थदृष्टिवंत हैं, शुद्ध चैतन्यकी दृष्टिके धारक हैं। राग होने पर भी रागसे पार उनकी ज्ञान चेतना है, जिसे कोई विरले ही पहचानते हैं।

भावलिंगी मुनिओंमे भी जो निर्विकल्प ध्यानमें लीन हैं ऐसे शुद्धोपयोगीको तो उत्तम अंतरात्मामे गिने और शुभोपयोगी मुनिको मध्यम अंतरात्मामें गिने। अरे, महाव्रतादिकी कोई शुभवृत्ति आवे वह भी उत्तम अंतरात्मामे नहीं टिकती तब दूसरे रागकी क्या बात? प्रवचनसारमें भी कहा है कि मोक्षमार्गमें शुद्धोपयोगी मुनि मुख्य हैं—अग्रसर है और शुभोपयोगी मुनिको तो उनके पीछे पीछे लिया है। यह दोनों मोक्षमार्गी—परमेष्ठी; उनमे शुभवाले मुनि भी भावलिंगी हैं उनकी बात है। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं है उसको तो मोक्षमार्गी गिना ही नहीं, वह तो बंधमार्गमे चलनेवाला बहिरात्मा है।

बहिरात्मा अंतरात्मा परमात्मा—इन तीन प्रकारमें जगतके सभी जीव आ जाते हैं। जीवतत्त्वकी श्रद्धामें उनकी पहचान समा जाती है। जो स्वयं शुद्धोपयोगमें लीन है उसको तो दूसरे जीवका विचार ही उस समय नहीं है, एवं तीन भेदका लक्ष भी नहीं है; किन्तु जो सविकल्प दशामें है वह व्यवहार जीवकी श्रद्धामें ऐसे त्रिविध आत्माका स्वरूप विचारता है। ऐसा यथार्थ विचार करनेवाला अंतरात्मा है। बहिरात्माके या परमात्माके ऐसा विचार नहीं होता, क्योंकि बहिरात्मा तो उसका सच्चा स्वरूप नहीं जानता और परमात्माको कोई विकल्प नहीं है। यह तो साधकके निश्चय सहित व्यवहार कैसा होता है उसकी बात है।

अंतरात्माकी परमार्थदृष्टिमें अर्थात् शुद्धनयमें तो एक अखंड ज्ञायकभावरूप ही आत्माका अनुभव है, तीन प्रकारकी पर्यायके भेद उसमें नहीं आते हैं। जो शुद्धदृष्टिसे अंतरात्मा हुआ वह व्यवहार में जीवकी पर्यायके प्रकारोंको भी जैसे हैं वैसे जानता है। जीव स्वयं अंतरात्मा होकर तीन भेदोंको जानता है; परन्तु स्वयं बहिरात्मा रहकर तीन प्रकारके आत्माका सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।

छट्ठें-सातवें गुणस्थानवाले भावलिंगी मोक्षमार्गी मुनि ऐसा जानते हैं कि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव भी मोक्षमार्गी है; जैसे मैं मोक्षमार्गी हूं वैसे यह भी मोक्षमार्गी है, भले अल्प हो (जघन्य हो) तो भी यह है तो मोक्षके ही मार्गमें। श्री कुन्दकुन्दस्वामीने मोक्षप्राभृतमें उसको धन्य कहा है। अहा! छट्ठे गुणस्थानवर्ती परमेष्ठी मुनि चौथे गुणस्थानवाले गृहस्थको मोक्षमार्गमें स्वीकार करते

हैं 'ये तीनों शिवमगचारी।' तीनों प्रकारके अंतरात्मा मोक्षमार्गमें केलि करनेवाले हैं—'केलि करे शिवमारगमें, जगमांहि जिनेश्वरके लघुनंदन।'

इस प्रकार अंतरात्माकी बात की, अब परमात्मा कैसा है। सो कहते हैं: परमात्माके दो प्रकार—एक सिद्ध परमात्मा; दूसरा अरिहंत परमात्मा। सिद्ध भगवान तो अशरीरी, चैतन्यबिंब सिद्धालयमें अनन्त विराज रहे हैं, उन्हें शरीर न होनेसे 'निकल परमात्मा' कहते हैं। और अरहंत भगवान ढाईद्वीप सम्बंधी मनुष्यलोकमें तेरहवें–चौदहवें गुणस्थानमें शरीरसहित विचरते हैं, उनको सकल परमात्मा कहा जाता है। [कल = शरीर, उससे सहित सो सकल; उससे रहित सो निकल] केवलज्ञानादि गुण तो दोनों परमात्माके समान हैं। अहा, जिनकी पहिचानसे आत्माके सच्चे स्वरूपकी पहिचान हो जाय ऐसे परमात्माके महिमाकी क्या बात!

परमात्मपदके साधनेवाले मुनिओंकी दशा भी अद्भुत होती है... मानों छोटासा सिद्ध ही है। मुनिकी सौम्यमुद्रामें वीतरागताकी झलक दिखती है, उपशमरसमें उनका आत्मा झूल रहा है। छट्ठे गुणस्थानके समय उनको मध्यम–अन्तरात्मा कहा, परंतु जब वे मुनि हुए तब प्रथम उनको शुद्धोपयोगमें सप्तम गुणस्थान हुआ था अतएव उत्तम–अन्तरात्मदशा हुई थी; बादमें शुभोपयोग होनेपर उनको मध्यम कहा। परन्तु शुभरागको जो मोक्षमार्ग समझता है अर्थात् रागादि विभावोंको ही निजस्वभाव मानता है, ऐसा सम्यग्दर्शनरहित जीव तो बंधमार्गमें ही है, मोक्षके मार्गको वह नहीं जानता। वह बहिरात्मा

मोक्षके मार्गसे बाहर है।

सम्यग्दृष्टिने सर्वज्ञपरमात्माको श्रद्धामें लिया है। सर्वज्ञतावाले जीव जगतमें हैं और मेरा आत्मा भी ऐसी ताकतवाला है-ऐसा धर्मी जानते हैं। परम- उत्कृष्ट पर्यायरूप परिणत आत्मा ही परमात्मा है। ऐसे परमात्मा इस समय इस भरतक्षेत्रमें नहीं होते, परन्तु विदेहक्षेत्रमें सीमंधरभगवान आदि लाखों जीव एसे परमात्मपदमें इस समय भी साक्षात् विद्यमान हैं। ऐसे सर्वज्ञपदकी पहचान यहाँ रहकर भी हो सकती है। सर्वज्ञपदकी जिसको श्रद्धा नहीं है वह तो बहिरात्मा है।

'जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे' ऐसा निर्णय करनेमें भी सर्वज्ञपदका स्वीकार आ जाता है। कोई सर्वज्ञकी पहचानके विना बात करे तो वह सत्य नहीं है।

अहा, जिनको आत्माका संपूर्ण ज्ञान है, संपूर्ण सुख है, और रागका संपूर्ण अभाव है-ऐसी उत्कृष्टदशावाले सर्वज्ञभगवान है- उनका स्वीकार सम्यग्दृष्टि ही करते हैं। बाह्यदृष्टिवाले जीवको (-रागदृष्टिवाले जीवको) परमात्माकी पहचान नहीं होती। सर्वज्ञका स्वीकार वह तो अपूर्व तत्त्वज्ञान है, वह धर्मका मूल है। सर्वज्ञता कहो या आत्माका ज्ञानस्वभाव कहो, उसकी पहचानके विना धर्मका प्रारंभ नहीं होता।

सात तत्त्वमेंसे एक जीवतत्त्वकी अच्छी तरह पहचान करनेसे उसकी पर्यायके सभी प्रकार भी समझमें आ जाते हैं। 'सर्वज्ञ'

अर्थात् एक साथ सभीको अतीन्द्रियज्ञानसे प्रत्यक्ष जाननेवाले,—तो भी जिनको राग-द्वेष नहीं, कोई संकल्प-विकल्प नहीं, जाननेमें थकान नहीं, निराकुल आनंद ही है। अहा! ऐसा परमात्मपद...वह आत्माकी ही एक दशा है।

—शरीर रहते हुए भी सर्वज्ञपद हो सकता है क्या?

हाँ; शरीर शरीरमें है, भगवानको उसका कुछ भी ममत्व नहीं है। जैसे शरीरका संयोग होते हुए भी शरीरसे भिन्न आत्माका अनुभव होता है, वैसे सर्वज्ञता भी हो सकती है। जगतमें ऐसे सर्वज्ञपरमात्मा हैं और मेरे आत्मामें भी ऐसा सामर्थ्य है—ऐसा सम्यग्दृष्टि अच्छी तरह (स्वानुभवपूर्वक) जानते हैं। सर्वज्ञके अस्तित्वका जिसको विश्वास नहीं उसको आत्माके ज्ञानस्वभावका ही विश्वास नहीं है।

निश्चय सम्यग्दर्शनमें धर्मी जीव निर्विकल्परूपसे शुद्ध आत्मतत्त्वमें ही 'अहं' (मैं) ऐसी प्रतीत करता है, और उस सम्यग्दर्शनके साथकी ज्ञानपर्यायमें इतनी ताक़त है कि सर्वज्ञपरमात्माको भी वह अपने निर्णयमें ले लेती है। अंतरमें अपना शुद्धात्मा तो निर्णयमें लिया है, और उसकी उत्कृष्ट पर्यायरूपसे परिणत परमात्मा कैसा है-यह भी निर्णयमें आ गया है। शुद्ध द्रव्यकी जो श्रद्धा करे उसके सामर्थ्यकी तो क्या बात?—परन्तु उसके साथका ज्ञान—जो कि रागसे भिन्न हुआ है—उस ज्ञानके व्यवहारमें भी इतनी ताक़त है कि परमात्माको भी वह जान लेता है; बहिरात्मा, अंतरात्मा व परमात्मा तीनोंको जान लेता है। स्वद्रव्य, शुद्ध ज्ञानमय आत्मा, और

आत्माके तीन प्रकारको जानकर बहिरात्मपनेका त्याग करना। सम्यग्दृष्टिने तो बहिरात्मपनेको छोड़ ही दिया है, परन्तु अन्य जो जिज्ञासु जीव हैं वे भी इस उपदेशके द्वारा आत्माका स्वरूप पहचानकर बहिरात्मपनेको छोड़ो और अंतरात्मा होकर परमात्म-स्वरूपका ध्यान करो—जो सदा आनन्दकारी है।

जो देहको आत्मा माने, इन्द्रियविषयोंमें सुख माने, पुण्य-रागको धर्म माने, या बाह्य वस्तुसे अपना कुछ हित-अहित होनेका माने वे सब बहिरात्मा हैं,—ऐसा पहचानकर उस प्रकारकी विपरीत मान्यताको छोड़ना, एवं ऐसी विपरीत मान्यताके पोषक जीवोंका संग छोड़ना। देहसे और परभावोंसे भिन्न, शुद्ध ज्ञानमय स्वतत्त्वको पहचानकर स्वयं अंतरात्मा होना, एवं ऐसे अन्य साधर्मी-अंतरात्माको आदरणीय जानना। अंतरात्मा क्या करते हैं?—कि परमात्माको ध्याते हैं। सम्यग्दृष्टिने अंतरमें अपने शुद्धात्माको निश्चय ध्येय बनाया है, और व्यवहारमें अरिहन्त तथा सिद्धपरमात्माको ध्याते हैं, आदर करते है। विकल्पको या रागको वे नहीं ध्याते परन्तु सर्वज्ञतारूप व पूर्ण आनन्दरूप ऐसे परमात्माको ही ध्याते हैं। निश्चयमें अपना परम स्वभाव ध्येय है और व्यवहारमें अरिहन्त सिद्धपरमात्मा ध्येय हैं। वे अनन्त आनन्दको प्राप्त परमात्माके ध्यानके द्वारा अपने स्वभावमें एकाग्रताका उग्र प्रयत्न करते हैं और विकल्प तोड़कर अनन्त आनन्दका अनुभव करते हैं। इसप्रकार शुद्ध आत्माके ध्यानसे अनन्त आनन्द (कालसे भी अनन्त, और भावसे भी अनन्त) प्राप्त होता है। शुद्ध आत्माके ध्यानके बिना

अन्यत्र जगतमें कहीं भी आनन्द नहीं है। परमात्माका सच्चा ध्यान अपने ज्ञानस्वभावमें एकाग्रतासे ही होता है, यह बात समय-सारकी ३१ वीं गाथामें दिखायी है। इसप्रकार शुद्ध जीवतत्त्वको पहिचान करके उसकी श्रद्धासे अन्तरात्मा होना और पीछे उसीके ध्यानसे परमात्मा होना—यह जीवतत्त्वकी पहचानका फल है।

इस प्रकार सात तत्त्वमेंसे जीवतत्त्वकी बात की; अब अजीवके प्रकार कहते हैं। ४-५-६।

आनंदके धाम चैतन्यका जिसको अनुभव नहीं है और रागका जिसे अनुभव है-उसे सच्चे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र कौन कहेगा? भले ही शास्त्र पढ़े, समयसारादिका श्रवण करे, भगवानके कहे हुए तत्त्वोंके भेदकी श्रद्धा करे और अहिंसादि शुभभावरूप व्रतोंका पालन करे, परन्तु चैतन्यकी निर्विकल्प शांतिके स्वसंवेदन रहित वह जीव श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रसे शून्य ही है, मोक्षका कारण उसे किंचित् नहीं है, वह मात्र बन्धभावका ही सेवन करता है।

अजीवतत्त्वका वर्णन

मोक्षसुखका उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है; उसमें सम्यग्दर्शनकी साथमें सात तत्त्वकी पहचान कैसी होती है यह बात चल रही है; प्रथम जीवतत्त्वका तीन प्रकार दिखाकर यह कहा कि बहिरात्मपना दुःखदायक होनेसे उसको छोड़ना; और शुद्धात्माके ज्ञानसे अंतरात्मा होकर पूर्ण आनन्दरूप परमात्मदशाकी प्राप्तिका उद्यम करना। इस तरह जीवतत्त्वके प्रकार दिखाकर अब अजीवतत्त्वके प्रकारोंका कथन करते हैं—

[गाथा ७ और ८ का पूर्वार्द्ध]

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं;
पुद्‌गल पंच वरन-रस, गंध-दो फरस वसु जाके हैं;
जिय पुद्‌गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनुरूपी;
तिष्ठत होय अधर्म सहाई जिन बिन-मूर्ति निरूपी ॥ ७ ॥
सकल द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो;
नियत वर्तना निशि-दिन सो, व्यवहारकाल परिमानो ।

चेतनवंत तत्त्व तो जीव है; और चेतनतासे रहित तत्त्व सो अजीव है। अजीवके भेद पांच हैं—

पुद्‌गल.—यह रूपीद्रव्य है अतएव वर्ण-गंध-रस-स्पर्शवाला है। छह द्रव्योंमें एक पुद्‌गल ही रूपी है-मूर्त है। हरा-पीला-लाल-

सफेद व काला यह पांच रंग, सुगंध और दुर्गंध, खट्टा-मीठा-चरपरा-कडुआ व कषायला ये पाच रस. तथा हलका, भारी लूखा-चीकना, मुलायम-कर्कश शीत-उष्ण ये आठ स्पर्श यह, सब पुद्गलकी रचना है, पुद्गलकी पर्याय है। शब्द भी अजीव पुद्गलोंकी अवस्था है, वह कुछ जीवका कार्य नहीं है। ये सब अजीव-पुद्गलके प्रकार होनेसे अचेतन हैं, जीवसे वे भिन्न हैं-ऐसा जानना।

धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य—ऐसे दो अजीवद्रव्य सर्वज्ञदेवने देखे हैं, वे अति सूक्ष्म हैं और सारे लोकमें व्यापक हैं; एक जीवके प्रदेश जितने असंख्यप्रदेश उनके प्रत्येकके हैं। जीव और पुद्गल जब गति करते हैं तब उनका सहायक-निमित्त धर्मद्रव्य है. और वे गतिमान जीव-पुद्गल जब स्थिर होते हैं तब उनके सहायक-निमित्त अधर्मद्रव्य हैं, ये दोनों द्रव्य अरूपी और अचेतन हैं।

आकाशद्रव्य - ऊपर जो बादल दिखता है वह तो पुद्गलकी रचना है, वह आकाशद्रव्य नहीं है। आकाशद्रव्य तो अरूपी है, वह सर्वव्यापी है, ऊपर-नीचे चारों तरफ सर्वत्र आकाश है। आकाश अर्थात् क्षेत्र-जगह। जीव-अजीव सभी द्रव्योंका आकाशमे वास है। आकाश इतना बडा (अनंत) है कि उसके एक छोटेसे (अनंतवे) भागमें शेष सब जीव-अजीव तत्त्व रहे हुए हैं। अनंत आकाशका कहीं पार नहीं, तो भी ज्ञान तो उसको भी पूर्णतया

जान लेता है...ज्ञानका तो कोई अचिंत्य महान सामर्थ्य है। धर्मी-जीव ऐसे आकाशद्रव्यको और उसको जाननेवाले ज्ञानकी श्रद्धा करते हैं।

कालद्रव्य—वह भी अजीव है; उसमें समय समयकी वर्तना-रूप जो अरूपी कालअणु है सो निश्चयकाल है, वे असंख्यात हैं; और घटिका–मुहूर्त–दिन–मास–वर्ष–सागरोपम आदि जो प्रमाण हैं सो व्यवहारकाल है। पदार्थके परिणमन स्वभावमें यह निमित्त है। यह कालद्रव्य भी अरूपी एवं अजीव है।

ऐसे अजीवतत्त्वके पांच प्रकार कहे. धर्मी जीव ऐसे तत्त्वकी श्रद्धा करते हैं।

एक जीव और पांच अजीव, ऐसे छह जातिके द्रव्य हैं।
इनमे एक चेतन, और पांच अचेतन,
एक मूर्त–रूपी, और पांच अमूर्त–अरूपी,
एक सर्वव्यापी, और पांच असर्व व्यापी,

चेतनावाला जीव और चेतनारहित अजीव–ऐसी संक्षिप्त व्याख्या करके जीव–अजीवकी भिन्नता समझायी है।

प्रश्न.—अजीवतत्त्व चेतनासे रहित है, अतः उसमें ज्ञान नहीं है यह ठीक है, किन्तु वह जाननेमें जीवका सहायक तो है न?

उत्तर—ना, जीवका ज्ञानस्वभाव दूसरोंकी (इन्द्रियादिकी) सहायसे रहित है। इन्द्रियादिका निमित्त तो पराधीन ऐसे इन्द्रिय-ज्ञानमें है, और उसमे भी ज्ञान तो स्वयं जीवसे अपनेसे होता

है, कहीं इन्द्रियोंसे नहीं होता। केवलज्ञान वगैरहमें तो इन्द्रियादिका निमित्त भी नहीं है। ज्ञानका आधार आत्मा है, ज्ञानका आधार जड़ इन्द्रियां नहीं हैं।

केवलज्ञानमें ज्ञेयरूपसे सारा विश्व निमित्त है, परन्तु उसमेंसे कुछ ज्ञान नहीं आता। आत्माका ज्ञान कोई अचेतन वस्तुमें नहीं है, एवं कोई अचेतन वस्तु ज्ञानमें नहीं है, इसप्रकार ज्ञानको परसे अत्यन्त भिन्न जानना। सात तत्त्वोंका ज्ञान करनेसे जड़-चेतनकी ऐसी भिन्नताका ज्ञान भी हो जाता है।

अहा, मेरा ज्ञान मेरेमे ही है, कहीं अजीवमें मेरा ज्ञान नहीं। मेरा ज्ञान अजीवके पासमेंसे नहीं आता। ऐसा समझकर ज्ञानको अपने आत्माकी सन्मुख करनेसे अपूर्व आनन्दका अनुभव होता है।

यहां धर्म-अधर्म आदि सूक्ष्म द्रव्योंकी पहचान गति-स्थिति आदिमें उनका निमित्तपना दिखा करके कराई। धर्मास्तिकाय स्वयं स्थिर द्रव्य है, वह तो किसी पदार्थको गति नहीं कराता, परन्तु स्वयं गतिमान द्रव्योंको वह निमित्त है। वैसे जगतके कार्योंमें जो कोई निमित्त कहा जाय वे सब निमित्त भी धर्मास्तिकायवत् अकर्ता ही है। एक पदार्थ अपने ही स्वभावसे स्वकार्यरूप परिणमन करे और उस समय अन्य पदार्थ निमित्तरूप हो, उससे कहीं किसीकी पराधीनता नहीं हो जाती। जैसे केवलज्ञानके सामने ज्ञेयरूपसे जगत निमित्त है, तो क्या इससे केवलज्ञान ज्ञेयोंके आधीन हो गया?—ना, वह तो स्वाधीन है, वैसे सभी पदार्थोंका परिणमन

स्वाधीन है। चल करके थकित हुए मनुष्यको कहीं वृक्ष ऐसा नहीं कहता कि तू यहां ठहर ! पानी कहीं मछलीको ऐसा नहीं कहती कि तू चल ! पदार्थ कहीं ज्ञानको ऐसा नहीं कहता कि तू मेरेको जान ! पदार्थ स्वाधीनतासे ही अपनी अपनी गति–स्थिति या ज्ञानादि परिणतिरूप हो रहे हैं। अज्ञानमेंसे ज्ञानरूप परिणमन करनेवाले शिष्यके लिये ज्ञानी गुरु निमित्त हैं, परन्तु वे गुरु कुछ उसकी ज्ञानपरिणतिका कर्ता नहीं हैं। अहा ! सर्वज्ञ मार्गका वीतरागविज्ञान अलौकिक है, पदार्थका स्वाधीन स्वरूप वह दिखाता है ऐसे स्वाधीन तत्त्वका उपदेश वही इष्ट उपदेश है; ऐसे ही उपदेशसे भेदज्ञान व वीतरागता होकर जीवका हित होता है।

किसी वस्तुका स्वयंका स्वरूप क्या है—उसको लक्षमें लेकर समझनेका प्रारम्भ करना चाहिए, क्योंकि स्वके ज्ञानपूर्वक परका सच्चा ज्ञान होता है। जैसे कि—जगतमें धर्मास्ति–अधर्मास्ति दोनों एकसाथ सर्वत्र विद्यमान हैं, उनमेंसे किसको निमित्त कहना उसका निर्णय तो पदार्थके ही कार्यके अनुसार होगा। पदार्थ गमनक्रिया करे तब धर्मास्तिको निमित्त कहा, अधर्मास्तिको न कहा। इसप्रकार जिस पदार्थमें कार्य हो रहा है उस पदार्थके धर्मको देखना चाहिए, सयोगकी ओरसे नहीं देखना चाहिए। वस्तुस्वभावके ज्ञानसहित संयोगका ज्ञान करना सो सत्य है। भगवानने सभी द्रव्योंके धर्म स्वाधीन अपने–अपनेसे ही देखे हैं; उसीप्रकार उनका स्वरूप पहचानकर सच्ची तत्त्वश्रद्धा करना चाहिए।

तत्त्वश्रद्धाके लिये जीव–अजीवकी अत्यंत भिन्नताका ज्ञान

करना जरूरी है। जाननेकी शक्ति जीवमें ही है। यह शरीर, लकडी, जीभ, मोटरगाड़ी, घड़ी, रुपये, शास्त्र आदि पदार्थ दिखते हैं वे सब अजीव हैं, उनमें जाननेकी शक्ति नहीं है, वे चलते-फिरते-बोलते हुए भी अजीव हैं। चले-फिरे-बोले सो जीव-ऐसी तो जीवकी व्याख्या नहीं है। चेतना जिसमें हो वह जीव, और चेतना जिसमें न हो वह अजीव,-यह जीव-अजीवकी सच्ची पहचान है।

घडी चलती है तो क्या वह जीव है?-नहीं, वह अजीव है। रेडियो बोलता है तो क्या वह जीव है?-नहीं, वह अजीव है। उसे कुछ मालूम नहीं है कि मैं घडी हूँ या मैं रेडियो हूँ। उसको जाननेवाला तो जीव है। करीब सो वर्ष पहले जब आगगाडी (ट्रेइन) दौड़ना प्रारम्भ हुई तब उसे दौड़ती देखकर कितने ही ग्राम्य लोग उसे जीव अथवा राक्षस मानते थे, कोई उसे नारियल चढ़ाकर पूजते थे, देखो, कैसी भ्रमणा? धर्मके नामपर अज्ञानी लोग भी ऐसी ही भ्रमणा करते हैं कि शरीरका चलना-फिरना-बोलना ये सब कार्य जीवके हैं, जीव ही शरीरको चलाता है।-परन्तु यदि जीव-अजीवके भिन्न भिन्न लक्षणको अच्छी तरह पहचाने तो ये सब भ्रमणायें दूर हो जाय और सच्चा तत्त्वज्ञान प्रगट हो।

आत्मा-सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञदेवके कहे हुए अतीन्द्रिय तत्त्वोंकी श्रद्धा करता है, उनसे विपरीत श्रद्धा उसके नहीं होती। जगतमें एक अद्वैत ब्रह्म ही है और उससे भिन्न अजीवादि अन्य कुछ भी सत् नहीं है, अथवा कोई ईश्वर इस जगतका कर्ता-हर्ता है,-इस

प्रकारकी विपरीत मान्यता सम्यग्दृष्टिके व्यवहारमें भी नहीं होती; व्यवहारमें भी सर्वज्ञमार्गके तत्त्वोंकी ही श्रद्धा होती है। उसका यह वर्णन चल रहा है, उसमें जीवके तीन प्रकार और अजीवके पांच प्रकारका वर्णन किया। जीव और अजीवके बाद तीसरा आस्रवतत्त्व है तथा चौथा बन्धतत्त्व है-उसका कथन अब आगेके श्लोकमें करेंगे।

※ उत्तम शील ※

रागसे भिन्न ज्ञानका स्वाद जिसे अनुभवमें नहीं आता, उसे मोक्षके हेतुरूप धर्मकी खबर नहीं है; रागका वेदन तो दुःखरूप है, और उसका फल तो बाह्य सामग्री है, इसलिये जो शुभरागकी इच्छा करते हैं,—उसे अच्छा मानते हैं, वे जीव संसार-भोगकी ही इच्छा करते हैं। मोक्ष तो ज्ञानमय है, उसकी आराधना ज्ञान द्वारा होती है; ऐसे ज्ञानका वेदन करना उसीका नाम उत्तम शील है, और वह शील मोक्षका कारण है। ऐसा शील आत्माको महान आनन्ददायक है; उसमें परसंग नहीं है, आत्मा अपने एकत्वमें सुशोभित होता है।

आस्रव तथा बंध तत्त्वका वर्णन

परद्रव्यसे भिन्न अपने शुद्ध आत्माकी रुचि-अनुभूतिके द्वारा जिसने सम्यग्दर्शन किया है वह जीव सर्वज्ञभगवानके कहे हुए जीवादि सात तत्त्वोंकी भी कैसी श्रद्धा करता है उसका यह वर्णन है। श्लोक ४-५-६ में जीव तत्त्वके तीन प्रकार (बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा) का कथन किया; श्लोक ७ में तथा ८ के पूर्वार्धमें अजीव तत्त्वके पांच भेद (पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश तथा काल) का कथन किया। अब आठवें श्लोकके उत्तरार्धमें तथा नववे श्लोकके पूर्वार्धमे आस्रव और बंध तत्त्वका स्वरूप दिखाकर उनका त्याग करनेका कहते हैं—

श्लोक ८ (उत्तरार्ध) तथा ९ (पूर्वार्ध)

यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा,
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥ ८ ॥
ये ही आतमको दुःख-कारण, तातैं इनको तजिये;
जीवप्रदेश बंधै विधि सौं सो, बंधन कबहुं न सजिये ।

जीव और अजीव तत्त्वका वर्णन किया; अब आस्रव तथा बन्ध तत्त्वका वर्णन करते हैं इसे सुनो। मन-वचन-कायके योग तथा मिथ्यात्व-अव्रत-प्रमाद और कषाय सहित मलिन उपयोग ये कर्मके आस्रवके कारण हैं, ये अस्रवभाव आत्माको दुःखके

कारण हैं अतः वे त्याग करने योग्य हैं। पाप हो या पुण्य, उन दोनोंको आस्रवमें ही गिनकर छोड़ने योग्य कहे हैं। पाप आस्रव छोड़ने योग्य और पुण्य आस्रव आदरने योग्य—ऐसा नहीं कहा। उसीप्रकार बंध तत्त्वमें भी पापबंध और पुण्यबंध दोनोंको समझ लेना। मिथ्यात्वादि भावोंके कारण आत्मप्रदेशोंमे कर्मोंका बन्धन होता है यह बन्धतत्त्व है, वह जीवको दुःखका कारण है, अतः वे मिथ्यात्वादि बन्धभाव कभी करने योग्य नहीं हैं।

भाई, तुम्हें दुःखका कारण तुम्हारा मिथ्यात्व तथा क्रोधादि भाव ही है, अतः आस्रव-बन्धके कारणरूप उन भावोंको छोड़ना चाहिए। जिस किसी भावसे जीवका किंचित् भी आस्रव या बन्ध हो वह भाव अच्छा नहीं, हितरूप नहीं, करने जैसा नहीं किन्तु छोड़ने जैसा है—ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव जानते हैं। जो इससे विपरीत माने उसको आस्रव-बन्धतत्त्वकी श्रद्धामें भूल है।

हे भाई! तुम्हारे हितके लिये प्रयोजनभूत तत्त्वोंको तो तुम पहचानो। जीव और अजीव दोनों तत्त्व भिन्न, उनमें जिसके जो गुण-पर्याय हो उसीके वे समझने चाहिए, एकका दूसरेमें मिलान नहीं करना चाहिए। एवं जीवके ज्ञानादि स्वभावभाव तथा रागादि विभावभाव उनको भी भिन्न भिन्न पहचानकर तत्त्वोंकी सच्ची श्रद्धा करना चाहिए।

प्रश्नः—क्या सम्यग्दृष्टि मेंढ़क आदि तिर्यंचको भी यह सब ज्ञान होता है?

उत्तरः—हाँ, शब्द भले उन्हें न आते हो, किन्तु उनके

ज्ञानमें सातों तत्त्वोंका भावभासन आ जाता है। सम्यग्दृष्टि मेंढ़क-सर्प-सिंह-हाथी वगैरह भी ऐसी ही तत्त्वश्रद्धा करते हैं, विपरीत मान्यता उन्हें नहीं होती, सम्यग्दृष्टि मेंढ़क आदिकी भी शुद्धात्माकी प्रतीत गणधरदेव जैसी ही है। अंतरके भावमे उन्हें आत्माका आनन्द अच्छा लगता है और रागादि आस्रव अच्छे नहीं लगते। शुभरागका वेदन हो तब वे ऐसा नहीं मानते कि यह मुझे आनन्दका वेदन है। शुभरागके वेदनमे भी उन्हें दु:ख लगता है, अतः आस्रव दु:खदायक है—हेय है ऐसी श्रद्धा उनके भावमे आ गई। और आनन्द अर्थात् सवर-निर्जराका भाव उपादेय है ऐसी श्रद्धा भी आ गई। अंतरमें आत्मा आनन्दस्वरूप है—ऐसा जो वेदन होता है उसे ही वे 'आत्मा' समझते हैं; और इससे विरुद्धभाव सो आत्मा नहीं है-यह बात भी उसमें आ ही जाती है। जो शुभ या अशुभ-राग वृत्तियाँ उठे वे उन्हें दु:खरूप लगती हैं अतः वे उन्हें छोड़नेका अभिप्राय रखते हैं, अर्थात् आस्रव तथा बन्धको हेय समझते हैं, और आनन्दके वेदनरूप संवर-निर्जराकी वृद्धि चाहते हैं, अर्थात् संवर-निर्जरा मोक्षको उपादेय समझते हैं। इस तरह उनके वेदनके भावमें सातों तत्त्वकी अविपरीत श्रद्धा समा जाती है। वे सम्यग्दृष्टि-मेढ़क भी ऐसा नहीं मानते कि शरीर है सो मैं हूं, अथवा ईश्वरने मेरेको बनाया, अथवा रागादिभाव सुखरूप है। वे तो शरीरसे भिन्न, रागसे भिन्न, शाश्वत ज्ञानस्वरूप ही अपनेको अनुभवमें लेते हैं और ऐसी ही श्रद्धा करते हैं।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव अपने हितके लिये प्रयोजनभूत

तत्त्वको अच्छी तरह पहचानते हैं। जीव और अजीव स्वयंसिद्ध मूलवस्तु, उनकी भिन्नता तथा जीवके सुख-दुःखके कारणरूप पर्याय, उनका जानना प्रयोजनरूप है, और सात तत्त्वमें ये सब आ जाते हैं। घट है सो अजीवकी पर्याय है और वह मेरा कार्य नहीं है—ऐसा धर्मी जानते हैं, किन्तु वह घट कहां बना? कब बना? उसके लिये मिट्टी कहांसे आई? उसके बननेमें कौन कुम्हार निमित्त था?—ये सब जानना अप्रयोजनरूप है, उनके साथ जीवके हित-अहितका सम्बंध नहीं है। उनको जाननेसे जीवका हित नहीं हो जाता, और उनको न जाननेसे जीवका हित अटक नहीं जाता। परन्तु चेतन लक्षणरूप जीव क्या है? उसकी अंतरात्मा आदि दशायें कैसी हैं? उनका ज्ञान (शब्दज्ञान नहीं किंतु भावभासनरूप ज्ञान) धर्मीके अवश्य होता है। मैं चेतन हूं; मेरे चेतनका कोई अंश अजीवमें नहीं है, और अजीवका कोई अंश चेतनमें नहीं है। चेतनके सभी गुण चेतनमें हैं, जड़के सभी गुण जड़में हैं, दोनोंकी अत्यन्त भिन्नता है। जीव-अजीवके गुण भिन्न, जीव-अजीवकी पर्याय भिन्न; ऐसे प्रत्येक द्रव्य अपने अपने गुण-पर्यायके धारक हैं, किसीका अंश दूसरेमें मिलता नहीं। उन्हें सर्वज्ञके मार्ग अनुसार अच्छी तरह पहचानना चाहिए।

चेतना लक्षणरूप जीव; उसकी पर्यायके तीन प्रकार : बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा; उनमेंसे—

बहिरात्मामें आस्रव तथा बन्ध तत्त्व आ गये।
अंतरात्मा संवर तथा निर्जरा तत्त्व आये।

परमात्मामें मोक्षतत्त्व आया।

आस्रव तथा बन्धमें मिथ्यात्व प्रधान है, तदुपरांत अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग ये भी आस्रव तथा बन्ध हैं। बाहरमें शरीरकी जो क्रिया होती है वह तो अजीवतत्त्वकी दशा है, उसमें कहीं जीवके आस्रव-बन्ध या संवर-निर्जरा नहीं रहते। जीवके योग तथा उपयोगकी अशुद्ध प्रवृत्ति वह आस्रव और बन्ध है, और शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति वह संवर-निर्जरा है, पूर्ण शुद्धता वह मोक्ष है। भाई, तुम्हारी अवस्थारूप ऐसे तत्त्वको तुम जानो, और उनके निमित्तरूप पुद्गल कर्मकी अवस्थाको तुमसे भिन्न अजीवरूप समझो, उन तत्त्वोंको जानकर उनमेंसे अपने हितरूप तत्त्वको ग्रहण करो, और दुःखरूप तत्त्वको छोड़ो।

देखो, अभी ऐसा तत्त्वनिर्णय हो सके इतनी ज्ञानशक्ति महा भाग्यसे मिली है, अतः तत्त्वनिर्णय करनेका उपदेश है। अपने हितका अभिलाषी जीव ऐसा निर्णय अवश्य करता है। अरे, ऐसा उत्तम सुयोग पाकरके भी जो तत्त्वनिर्णयमें अपनी बुद्धिको नहीं लगाते और कुमार्गके सेवनमें अवसर खो देते हैं—उनके दुर्भाग्यका क्या कहना? वे तत्त्वनिर्णयके बिना ऐसा मनुष्य अवतार व्यर्थ गँवा देंगे।

यहां ऐसा कहा कि—अनन्त द्रव्य जिसमें अवकाश ले रहे हैं ऐसे आकाशको भी तुम पहचानो। अहा, ज्ञानकी कितनी विशालता! अनन्तानंत जीव, उनसे अनन्तानंत गुने पुद्गल, धर्मास्ति आदि सूक्ष्म अरूपी द्रव्य यह सब द्रव्य भी जिसके अनन्तवें भागमें समा जाय—

इतना बड़ा अनन्त सर्वव्यापी आकाश, उस आकाशको भी जो अपने अनन्तवे भागकी शक्तिसे जान ले ऐसा महान ज्ञानसामर्थ्य, उसका धारक यह जीव स्वयं है। अनन्त आकाशका ख्याल करने पर अपने ऐसे महान ज्ञानसामर्थ्यका भी निर्णय हो जाता है। ऐसे बड़े आकाशकी, और उससे भी महान ज्ञानसामर्थ्यकी बात सर्वज्ञ-देवके जैनशासनके बिना अन्यत्र कहीं भी नहीं हो सकती। और सर्वज्ञके भक्त सम्यग्दृष्टिके बिना ऐसे तत्त्वका सच्चा निर्णय दूसरा कोई नहीं कर सकता।

अहो, आत्माके हितके लिये जैनधर्मके ऐसे तत्त्वका अभ्यास करना चाहिए। विद्यार्थी लोग भी छुट्टियोंमें खेलकूदके बदलेमें ऐसे वीतरागीतत्त्वका अभ्यास करें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए, कि जिससे उनका जीवन सुखी हो। हमारे भगवानके देखे हुए तथा कहे हुए छह द्रव्य कैसे हैं तथा उनके प्रत्येकके मुख्य लक्षण (विशेष गुण) क्या हैं? किस भावसे जीव सुखी है और किस भावसे वह दुःखी होता है? यह पहचानना चाहिए।

आप आपको जाने और सभी पदार्थोंको भी जाने-ऐसी शक्ति जीवमें ही है, अन्य किसीमें नहीं।

आप आपमें रहे और सभी पदार्थोंके भी रहनेमें निमित्त हो-ऐसी ताकत (ऐसा स्वभाव) आकाशद्रव्यमें ही है, अन्य किसीमें नहीं। (पदार्थ रहते तो है स्वक्षेत्रमें, आकाश उन्हें निमित्त है।)

आप स्वयं परिणमे और सभी पदार्थोंके भी परिणमनमें निमित्त हो ऐसा स्वभाव कालद्रव्यमें ही है, अन्य किसीमें नहीं।

(पदार्थका परिणमन तो स्वपर्यायसे होता है, काल उन्हें निमित्त है।

—इसप्रकार सर्वज्ञदेवके उपदेश अनुसार जगतसे पदार्थोंका ज्ञान करनेकी छद्मस्थजीवमें ताक़त है। सर्वज्ञमार्गसे विपरीत कोई बातको सम्यग्दृष्टि नहीं मानते। जो आत्मा सर्वज्ञ–वीतराग है वही परमेश्वर है। वे परमेश्वर जगतका कर्ता नहीं हैं। स्वयंसिद्ध ऐसे इस जगतके कर्ता कोई ईश्वर नहीं हैं। जैसे ईश्वर जगतकर्ता नहीं हैं वैसे निमित्तरूप वस्तु अन्य वस्तुकी कर्ता नहीं है। जीव और अजीव ये सब जगतकी स्वतंत्र वस्तु है और वे अपनी–अपनी पर्यायको करती हैं; ईश्वर उनके साक्षीमात्र ज्ञाता हैं, और सभी जीव ऐसे ही साक्षीस्वभावी हैं,—ऐसा धर्मी जानते हैं।

जगतके पदार्थ स्वयं सत् हैं, सर्वज्ञने उन्हें सत् जाना है और वाणीसे भी ऐसा कहा है, इसप्रकार सत् वस्तु, उसका ज्ञान और उसका कथन इन तीनोंका मेल है, उसकी पहचानसे सच्ची श्रद्धा होती है। जीवको सर्वज्ञका सच्चा स्वरूप तब ही समझमें आता है जब कि वह उनके जैसे अपने आत्माकी स्वसन्मुख होकर निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट करे। ज्ञानस्वभावी आत्माके अनुभवके बिना कोई ऐसा कहे कि मैंने सर्वज्ञको पहचान लिया, तो वह यथार्थ नहीं है, क्योंकि आत्माकी पहचानपूर्वक ही सर्वज्ञकी पहचान होती है। ज्ञानकी शक्ति इतनी महान है कि तीन कालकी पर्यायों सहित समस्त पदार्थोंको एकसाथ ज्ञानका निमित्त बनाती है, कोई ज्ञेय बाकी नहीं रहता। यदि ज्ञेय बाकी रह जाय तो ज्ञान अपूर्ण रह जाय, तब उसे सर्वज्ञ कौन कहे?

जिससे जीवको दुःख होता है ऐसे आस्रव तथा बन्धको कभी भला मत जानो, उसे छोड़कर सम्यग्दर्शनादिमें लगो-ऐसा उपदेश है। जीवका असंख्यप्रदेश जब चंचल बने अर्थात् योगका कंपन हो, तब मन-वचन या काया जो उसमें निमित्त हो उस प्रकारका वह योग कहलाता है, और उससे कर्म आते हैं; तथा मिथ्यात्व-कषायादि मलिनभावोंके अनुसार उस कर्ममें स्थिति-अनुभागरूप बन्धन होता है। सम्यग्दृष्टि जीवको मिथ्यात्वजनित आस्रव-बन्ध नहीं है परन्तु अभी अव्रतादि है उतना आस्रव-बन्ध भी है, किन्तु वह उसे दुःखरूप जानकर, स्वभावसे विपरीत जानकर हेयरूप समझता है। आत्माका ज्ञानस्वभाव आस्रव तथा बन्धरहित है, उसे ही वह उपादेय समझता है।

इसप्रकार सात तत्त्वमें आस्रव तथा बन्ध दुःखदायक होनेसे उनको छोड़नेका कहा; अब उनके विपरीत संवर तथा निर्जरातत्त्व सुखदायक होनेसे आदरने योग्य हैं-ऐसा कहते हैं।

संवर तथा निर्जरातत्त्वका वर्णन

शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये ।
तप-बल तैं विधिझरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये ॥ ९ ॥

शुद्ध उपयोग तथा वीतरागतारूपी आत्माका जो जहाज, उसमें मिथ्यात्व-रागादि छिद्रोंके द्वारा कर्मरूपी जलका आना सो आस्रव है; सम्यग्दर्शनपूर्वक शुद्धता तथा वीतरागता होने पर वे छिद्र बन्द हो जाते हैं और कर्मका आना रुक जाता है सो संवर है, और जैसे नौकामें एकत्र हुए पहलेके पानीको बाहर निकाल देते हैं वैसे तप द्वारा विशेष शुद्धि होने पर आत्मामेंसे कर्मोंका झड़ जाना सो निर्जरा है । ऐसी संवर-निर्जरा जीवको सुखका कारण है अतः उनका सदा आचरण करना चाहिए ।

प्रथम तो संवर क्या है और निर्जरा क्या है उनको पहचानना चाहिए । संवर-निर्जरा कहीं शरीरकी अवस्थासे नहीं होते, जीवके उपयोगकी शुद्धि तथा वृद्धिके द्वारा ही संवर-निर्जरा होते हैं । तपके बलसे निर्जरा होनेका कहा सो वह भी चैतन्यकी उग्र शुद्धतारूप तप है, और वह सदैव आचरने योग्य है । देहसे भिन्न चैतन्यको जो नहीं जानता, और देहसे कष्ट सहन कर निर्जरा करना चाहता है, उसे सच्ची निर्जरा नहीं होती, निर्जरातत्त्वकी

उसे पहचान भी नहीं है। निर्जरामें कष्ट नहीं, निर्जरामें तो महा आनंद है।

प्रश्नः—अकेला शुद्ध आत्मतत्त्व ही माने और ये सब न मानें तो?

उत्तरः—भाई, शुद्ध आत्माको जो सच्चे रूपसे जाने उसके ज्ञानमें ये सभी तत्त्वोंका भी स्वीकार आ ही जाता है। शुद्ध आत्मा मैं हूँ—ऐसा जब जाना तब, उसके विपरीत ऐसे रागादि अशुद्धभाव मैं नहीं—ऐसा भी जाना, अतः उन रागादिको (आस्रव-बंधको) हेय जाना; ('आस्रव' इत्यादि शब्द भले न आते हो किन्तु उसके निषेधका भाव तो ज्ञानमें वर्तता ही है।) और शुद्ध आत्माको पहचानकर, उसके अनुभवमें तो आनन्द आया उसे वह अच्छा–उपादेय समझता है, और वह तो संवर–निर्जरा है, अतः संवर–निर्जरा–मोक्षका ज्ञान भी उसमें आ गया, नाम भले न आते हो।

जीवको सुख-दुःखका कारण अपना भाव है; जो सम्यक्त्वादि वीतरागभाव है वह सुख है; और मिथ्यात्वादि भाव दुःख है। हरी वनस्पति पवनके झकोरेसे जब लहराती हो उस समय भी वे एकेन्द्रिय जीव अनन्त दुःखका वेदन कर रहे हैं। शिरपर हजार मनकी शिला पड़ी हो, शरीर पीस गया हो तो भी, शरीरकी इतनी प्रतिकूलताके कालमें भी जीव समाधान करके अंतरमें शांत अनाकुल परिणाम रख सकता है, क्योंकि जीव शरीरसे भिन्न है। लोग तो बाहरसे देखनेवाले हैं कि शरीरमें छेदन–भेदन हुआ अतः वह जीव दुःखी होगा। परन्तु वही के वही संयोग होते हुए

भी शांत परिणामवाला जीव दुःखी नहीं होता। जीवके अपने अंदर जितना मिथ्यात्वादि कषायभाव हैं उतना ही उसको दुःख है, और सम्यक्त्वादि निराकुलभाव ही सुख है। आत्माका आनंद स्वभाव है उसे पहचानकर अनुभव करे तभी जीवको सच्चा सुख व आनंद होता है, उसे ही आस्रव–बंध टलते हैं और संवर–निर्जरा होते हैं। कर्मके आनेके कारणरूप मिथ्यात्वादि भावोंको जब तक जीव नहीं छोड़ता, उनके किसी भी अंशको (शुभरागको भी) भला जानता है, तबतक जीवको सच्चा संवर–निर्जरा नहीं होता, धर्म नहीं होता, मोक्षमार्ग नहीं होता

धन आवे या जावे, उसके कारण जीवको सुख–दुःख नहीं है।

पुत्र जन्मे या मरे, उसके कारण जीवको सुख–दुःख नहीं है।

देह निरोग हो या रोगी, उसके कारण जीवको सुख–दुःख नहीं है।

अरे जीव! तेरा आनन्दस्वभाव है उसका भान करनेसे तू सुखी हो, और उसको भूलनेसे तू दुःखी हो। अरे भाई, तू दुःखी तेरी भूलसे, और दोष निकालेगा दूसरेका, तो तेरा दुःख और तेरी भूल कहांसे मिटेगी? तेरी भूल, और भूलरहित ज्ञानस्वभाव, इन दोनोंका स्वीकार करनेपर ही स्वभावके आश्रयसे भूल मिटकर निर्दोषता होगी, अतः सुख होगा।

अज्ञानीको अनादिसे देहबुद्धिका एवं पराश्रयका ऐसा रंग चढ़ गया है कि अपने सम्यक्त्वादि गुणके लिये भी वह परका आश्रय मानता है, और अपने दोष भी दूसरेके ऊपर डालनेकी उसे आदत

है। हे भाई! कोई परवस्तु तेरे गुण-दोषका या सुख-दुःखका कारण नहीं है। तेरे परिणाममें तेरे स्वभावकी अनुकूलता ही सुख, और ज्ञानस्वभावसे प्रतिकूलता ही दुःख; देहकी अनुकूलता या प्रतिकूलतामें तेरा कोई सुख-दुःख नहीं है। पुत्रहीन होना, विधवा होना, क्षयरोग होना, छेदन-भेदन होना, बम गिरना, इनमें कहीं जीवका दुःख नहीं है, वे तो भिन्नवस्तु हैं। भिन्नवस्तुका तेरेमें अस्तित्व ही नहीं है तब वे तुझे दुःख-सुख कैसे देगी? आप अपने स्वभावको भूलकर, संयोगके सामने देखकर जो मोह-राग-द्वेष करता है उसीका जीवको दुःख है। और अपना आनन्दस्वभाव है उसकी सन्मुख देखनेसे सुख होता है। इसप्रकार जीवके सुख-दुःखके कारन जीवमें ही हैं, दूसरेमें नहीं। उनको पहचानकर, उनमेंसे दुःखके कारणरूप आस्रव-बन्धको छोड़ना, और सुखके कारणरूप संवर-निर्जराको प्रगट करना।

आनन्दस्वभावका अस्तित्व तेरेमें त्रिकाल है; तेरे इस अस्तित्वको भूलकर स्वयं तूने ही पर्यायमें क्षणिक दुःख उत्पन्न किया है। तेरे असंख्यप्रदेशी चैतन्यधाममें अनन्तगुण और उनकी पर्यायें—इतना तेरा अस्तित्व है। तेरेमें आनन्दके अस्तित्वको देख तो तेरी पर्यायमें भी आनन्द होगा। अन्तर्मुख होकर अपने आनन्दके अस्तित्वको ही कारण बनानेसे आनन्दके अनुभवरूप कार्य होता है। किसी बाह्य-कारनसे आनन्द नहीं हो सकता। आत्माका ज्ञानस्वभाव आनन्दका ही कारन है, वह दुःखका कारन नहीं है; रागादि आस्रवभाव दुःखरूप ही हैं, वह कभी सुखका कारन नहीं हो सकते; इस प्रकार

ज्ञानको व रागको अत्यंत भिन्नता है। श्री कुंदकुंदस्वामी कहते हैं कि–

ये सर्व जीवनिबद्ध अध्रुव शरणहीन अनित्य हैं,
ये दुःख, दुःखफल जानके, इनसे निवर्तन जीव करे।
(–समयसार गाथा ७४)

जीव–अजीवका भेदज्ञान करके, अर्थात् सात तत्त्वका यथार्थ ज्ञान करके जीव आस्रवोंसे भिन्न हो जाता है और ज्ञानस्वभावमें एकाग्रतारूप संवरदशाको धारण करता है। अतः वीतराग भेदज्ञानका बारबार अभ्यास करना चाहिए।

* आत्माके लिये सुखरूप या दुःखरूप कौन होता है?
  कि आत्मामें जिसका अस्तित्व हो वह;
* आत्माके अस्तित्वमें जो है ही नहीं वह सुख–दुःखका कारण नहीं होता;
* जैसे, खरगोशके सींग हैं ही नहीं तो वह किसीको लगता नहीं; वैसे आत्मामें कर्म हैं ही नहीं तो वह आत्मामें कुछ करता नहीं।
* आत्मामें आनन्दस्वभावका अस्तित्व है, उसके अवलंबनसे सुखकी अनुभूति होती है।
* स्वभावको भूलकर आत्मा रागादिरूप परिणमे उसमें आकुलता-रूप दुःख है।
* जीवके सुखमें या दुःखमें बाह्यपदार्थ कारनरूप नहीं है।
* किसी एक ही बाह्यपदार्थमें एक जीव सुखकी कल्पना करता

है, दूसरा दुःखकी; अतः सुख-दुःखकी कल्पनाका भी कारण परद्रव्य नहीं ठहरा।

* जो जीव ऐसा जाने वह परद्रव्यमें सुख-दुःखकी बुद्धिको तथा राग-द्वेषको छोड़कर, अपने भावमें जैसे सुख हो और दुःख मिटे-ऐसा उपाय करता है, अर्थात् संवर-निर्जराका उपाय करता है और आस्रव-बंधको छोड़ता है।

नव तत्त्वकी पहचानमें यह सब आ जाता है। कई लोग नव तत्त्वके नाम याद करते हैं (यद्यपि बहुत लोग तो नाम भी नहीं जानते) किन्तु उनके स्वरूपकी पहचान करनी चाहिए।

जिससे पापका या पुण्यका आस्रव हो वह स्वयं दुःख है और दुःखका ही कारण है। अज्ञानी पुण्यास्रवको धर्मका कारण मानता है, परन्तु शास्त्र तो कहते हैं कि वह दुःखका ही कारन है। कोई ऐसा माने कि आस्रवमें अभी दुःख भले हो परन्तु भविष्यमें तो वह सुखका कारन होगा,-तो कहते हैं कि ना; आस्रव (अर्थात् मिथ्यात्व और पुण्य-पापके सभी भाव) अभी भी दुःख हैं और भविष्यमें भी उसकी साथका संबंध दुःखका ही कारन होता है। जो स्वयं दुःखस्वरूप ही है वह सुखका कारन कहांसे होगा? सुखका कारन तो सुखसे भरपूर ऐसा अपना स्वभाव ही है, उसीके सेवनसे वर्तमानमें सुख है, और उसका फल भी सुख ही है, वह कभी दुःखका कारन नहीं होता। ऐसा तत्त्वज्ञान करना वही सुखी होनेका उपाय है।

हे जीव ! तू परपदार्थको तो तेरेसे भिन्न जानकर उसकी ममता छोड़ दे। परकी ओरके तेरे भावोंको भी दुःखरूप जानकर उसका भी सेवन छोड़। इसप्रकार परसे भिन्न और परभावोंसे भी भिन्न ऐसे तेरे निजस्वरूपको देख। उसे देखते ही तुझे परम सुख होगा। सातों तत्त्वोंका सार इसमें आ गया।

परद्रव्य जीवको दुःख नहीं देते, यदि परद्रव्य जीवको दुःखी करते हो तब तो उस दुःखसे छूटनेका भी जीवके आधीन नहीं रहा; परद्रव्य जब छोडे तब जीव दुःखसे छूटें !—परन्तु ऐसा नहीं है। दुःखके कारन मिथ्यात्वादि भाव जीवमे हैं, और जीव उन्हें छोड़े तब दुःख छूट जाते हैं, अतः दुःखसे छूटनेकी बात अपने आधीन है ! अपना सुख अपनेमें है उसे जीव स्वाधीनतासे भोग सकता है।

जीवको जैसे सुखका कारन परवस्तु नहीं है वैसे दुःखका कारन भी परवस्तु नहीं है। अरे, संसारके कल्पित सुखका कारन भी परवस्तु नहीं है. वहां भी जीवकी अपनी कल्पना ही सुख-दुःखका कारन है। जैसे किसी अज्ञानीने धनमें या स्त्री आदिमें सुख माना, तो वहां उस मान्यताका कारन ये धन वगैरह नहीं हैं, वे धन वगैरह विद्यमान रहते हुए भी उसमें सुखकी कल्पनाको जीव छेद सकता है, उसी प्रकार शरीरमें रोगादि होते हुए भी उसमें दुःखकी कल्पनाको जीव छेद सकता है।

बाहरी पदार्थ उनके अस्तित्वमे हैं, वे जीवमें नहीं हैं।
सुखका या दुःखका अस्तित्व जीवमें है, परमें नहीं है।

प्रतिकूल-संयोग हो और दुःख हो तो भी उस दुःखका अस्तित्व जीवमें है, संयोगमें नहीं है। जीव अपने आनंदस्वभावको भूलकर और परवस्तुमें सुखकी कल्पना कर उसके गाढ़ प्रेममें रुक गया है। जीव जब तक परमें सुख माने तब तक उसका उपयोग परमेंसे छूटता नहीं और स्वमें आता नहीं, अतः उसे संवर-निर्जरा नहीं होता, आस्रव-बंध ही होता है।

यहाँ कहते हैं कि जीवको किसी प्रकारका भी आस्रव और बंध हो उसे भला नहीं मानना; बंधके कारनरूप मिथ्यात्वका या शुभ-अशुभ भावोंका सेवन न करना; परन्तु मोक्षके कारनरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभावका निरंतर सेवन करना; उसका सेवन ही भावसंवर और भावनिर्जरा है। अशुभको छोड़ना और शुभरागको आदरना—ऐसा अज्ञानी मानते हैं; ज्ञानी तो अशुभ और शुभ दोनोंसे भिन्न ऐसा शुद्धभावको ही आदरते हैं; शुभ-अशुभ दोनोंको ज्ञानसे भिन्न जानकर छोड़ देते हैं।

देखो, सात तत्त्वके निर्णयमें यह सब समा जाता है।

सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्रके द्वारा कषायोंका अभाव होनेसे वीतरागी शांत परिणाम प्रगटे वह 'शम' है। और आत्माके अतीन्द्रिय-स्वभावकी अनुभूतिके बलसे इन्द्रियकी ओरका भाव छूट जाना उसीका नाम 'इन्द्रियदमन' है। अकेले उपवासादिसे इन्द्रियोंको सुखा देनेकी यह बात नहीं है। वे इन्द्रियां तो जड़ हैं, उन इन्द्रियोंकी ओरका भाव छोड़कर अतीन्द्रियज्ञानसे आत्माके आनंदका

अनुभव करना वही 'इन्द्रियजय' (जितेन्द्रियपना) है। ऐसे शम और इन्द्रियदमन भेदज्ञानसहितके शुभभावसे होते हैं, और उनसे ही संवर-निर्जरा होता है। इन्द्रियोंको जो अपनी माने, इन्द्रियोंको जो ज्ञानका साधन माने वह उसका अवलंबन क्यों छोड़े? वह तो अपना ज्ञान इन्द्रियोंमें ही लगावे, अतः उसे इन्द्रियदमन नहीं हो सकता। शम-दम-तप या संवर-निर्जरा तो स्वद्रव्यके ही अवलंबनसे होते हैं, परके अवलंबनसे नहीं होते। अरे, स्वद्रव्यको छोड़कर धर्म कैसे हो सकता है? परसन्मुख रहकर निमित्तको बदला इससे क्या? अथवा रागका प्रकार ((तीव्र-मंद) बदला इससे क्या? जब स्वसन्मुख होकर रागरहित शुद्ध परिणति करेगा तभी जीवको धर्म और संवर-निर्जरा होगा।

भगवान आदिनाथने या भगवान महावीरने मुनिदशामें जो तप किया उसमें तो चैतन्यकी उग्र शुद्धताका प्रतपन था, बाह्य दृष्टिवाले जीवोंने उस शुद्धताको तो न देखी, और बाह्यमें अन्न-पानीका संयोग न हुआ उसे ही तप मान लिया,—परन्तु तपका स्वरूप ऐसा नहीं है। तप तो चैतन्यकी दशा है, वह शरीरमें नहीं रहता। यदि संवर-निर्जराका सच्चा स्वरूप पहिचाने तो ऐसे तपके सच्चे स्वरूपकी पहचान हो। इसलिये सम्यग्दृष्टिको सात-तत्त्वकी पहचान कैसी होती है उसका यह वर्णन चल रहा है। उसमें छह तत्त्वोंका कथन हुआ, अब आगे सातवाँ मोक्षतत्त्व कहते हैं।

मोक्षतत्त्वका वर्णन; तथा सम्यक्त्वके निमित्तरूप देव-गुरु-धर्मका वर्णन

जीवादि सात तत्त्वोंको पहचानकर अपनी श्रद्धा निर्दोष करनेके लिये यह कथन चलता है। उसमे छह तत्त्वकी बात की, अब सातवां मोक्षतत्त्व कैसा है यह कहते हैं; तथा सम्यग्दर्शनमें निमित्तकारनरूप देव-गुरु-धर्म कैसे होते हैं यह भी दिखाते हैं—

सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी;
इहि विध जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्यवहारी।
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो;
ये हु मान समकितको कारण, अष्ट-अंग-जुत धारो ॥ १० ॥

स्थिर सुखमय अर्थात् ध्रुव शाश्वत सुखसे भरपूर, और सकल कर्मसे रहित ऐसी जीवकी अवस्था सो मोक्ष है, वही शिवपद है; शिव अर्थात् कल्याण, सुख। इसप्रकार जीव-अजीव, आस्रव-बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सात तत्त्वकी श्रद्धा सम्यग्दृष्टिके होती है, उसे व्यवहारसम्यक्त्व कहते हैं। और सात तत्त्वोंमेंसे अभूतार्थभावोंको छोड़कर, जीवके एक भूतार्थ शुद्ध स्वभावकी श्रद्धा करना सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शनको हे भव्यजीवो! तुम धारण करो।

अब प्रश्न होता है कि—इस सम्यग्दर्शनमें निमित्त कौन है? तो कहते हैं कि वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव, शुद्धोपयोगसे स्वरूपको

साधनेवाले निष्परिग्रही गुरु, और सारभूत दयामय धर्म,—ऐसे देव-गुरु-धर्मको ही सम्यग्दर्शनका निमित्तकारन समझना। इनसे विपरीतको सम्यग्दृष्टि कभी नहीं मानता।

—ऐसे सात तत्त्वोंको तथा सच्चे देव-गुरु-धर्मको पहचानकर हे जीवों! तुम निःशंकतादि अष्ट अंग सहित उसे धारण करो। उन निःशंकतादि आठ गुणोंका कथन गाथा १२ तथा १३ में करेंगे।

जीव त्रिकाल है, और मोक्ष उसकी एक पूर्ण शुद्ध पर्याय है।

जो टिके सो गुण।
पलटे वह पर्याय।
अनंत गुण-पर्यायसहित द्रव्य।

द्रव्य-गुण सदैव होते हैं, मोक्षपर्याय नई होती है।

—सम्यग्दृष्टिके अभिप्रायमे इन सबका स्वीकार आ जाता है।

अरिहंत व सिद्ध परमात्मा सो देव हैं; आचार्य-उपाध्याय-साधु सो निर्ग्रन्थ गुरु हैं; और दयामय ऐसा सारभूत धर्म है। यहां व्यवहार सम्यक्त्वका वर्णन है अतः दयामय धर्मकी बात की है; सारभूत दया अर्थात् सच्ची दया जैनधर्ममें ही होती है, अन्यमें नहीं होती, क्योंकि, आलू वगैरहमे अनंत जीव हैं, अण्डे वगैरहमें पंचेन्द्रिय जीव हैं,—ऐसे जीवका अस्तित्व ही जो न जाने उसको सच्ची दया कहासे हो? जो दयाकी बात तो करे परन्तु फिर कंदमूल आदिका भक्षण करनेका कहे, रात्रिको भी खानेका कहे, उसके मतमें जीवदया कहां रही? अतः जीवदयाका सच्चास्वरूप

जैनधर्ममें ही है। तदुपरांत, निश्चयसे जितनी रागकी उत्पत्ति है इतनी जीवके चैतन्यभावकी हिंसा है, और राग न होना वह अहिंसा है,—हिंसा-अहिंसाका ऐसा सूक्ष्मस्वरूप भगवान अरिहंतदेवके शासनके विना अन्यत्र कहीं भी नहीं है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि देव–गुरु–धर्मका स्वरूप पहचानते हैं और विपरीतको नहीं मानते।

ऐसे वीतरागी देव–गुरु–धर्म ही सम्यक्त्वमें निमित्त होते हैं; जैनगुरु अर्थात् जैनसाधु सदा निर्ग्रंथ ही होते हैं; उन्हें बाह्यमें वस्त्रादि परिग्रहकी बुद्धि नहीं होती और अंतरमे मिथ्यात्वादि भाव नहीं होते। जो इससे विपरीत स्वरूप माने उसे तो व्यवहारमे भी भूल है, सम्यग्दर्शनके सच्चे निमित्तका भी उसे ज्ञान नहीं है।

आत्मामे अतीन्द्रिय ज्ञान–आनन्द भरा है, देह तो जड़–धूलि है, और रागादिक तो दुःख है,–ऐसी भिन्नताके भानसे सम्यग्दर्शन–ज्ञान प्रगट करके शुद्धता प्रगट करना–यही मोक्षमार्ग है, और पूर्ण शुद्धता–पूर्ण ज्ञान–पूर्ण आनंद प्रगट सो मोक्ष है। मोक्ष ही आत्माका परम हित है, और उसका उपाय वीतराग–विज्ञान है, –वही सच्ची विद्या है। सच्ची विद्या मोक्षकी देनेवाली है–'सा विद्या या विमुक्तये।' ऐसी मोक्षकी विद्या अनंतकालमें पूर्व कभी जीवने नहीं पढी; बाहरकी अनेक विद्या पढा और फिर भूला, परन्तु चैतन्यविद्या कभी न पढी। संसारकी विद्यासे भिन्न तरहकी यह

है; जीव–अजीवके भिन्न

विद्या है,

संसारके लोग देहको ही आत्मा समझकर जितनी भी विद्या पढ़ते हैं वह सब कुज्ञान है, उसमें आत्माका हित कुछ भी नहीं है। यह देह तो जड़ है, वह आत्मा नहीं है। आत्मा नित्य रहता है और शरीर तो भिन्न होकर राख हो जाता है; यदि वह आत्माका होता तो आत्मासे कभी अलग नहीं होता, जैसे ज्ञान आत्माका है तो वह आत्मासे कभी भिन्न नहीं होता; शरीर अलग होता है अतः वह आत्मासे सदैव भिन्न ही है। एवं कर्म भी शरीरकी ही जातिका है, वे आत्माकी जात नहीं हैं, आत्मासे भिन्न हैं।

अहो, जिनभगवानके दर्शाये हुए वीतरागविज्ञानसे ही जड़-चेतनका ऐसा पृथक्करण होता है।

जड़से भिन्न आत्माको जाननेके बाद, अंदरमें जो पुण्य-पापके भाव होते हैं उनसे भी आत्माको भिन्न जानना। पुण्य-पाप राग-द्वेष यह विकृति है, दुःख है, सच्चा आत्मा वह नहीं है। सच्चा आत्मा चेतनारूप व आनन्दरूप है। ऐसे आत्माकी पहचानसे जो अंशरूप शुद्धता प्रगटी वह संवर-निर्जरारूप मोक्षमार्ग है, और पूर्ण शुद्धताका प्रगट होना सो मोक्ष है। अतीन्द्रिय पूर्णसुखके अनुभवरूप ऐसी मोक्षदशा आदरणीय है, वही साध्य है। मुमुक्षु जीवको ऐसे मोक्षपदके विना दूसरा कोई साध्य नहीं है, मोक्षसे अतिरिक्त अन्य किसी संयोगमे या रागमें उसे चैन नहीं पड़ता, उसमे किंचित् सुख नहीं लगता।

* जीवका स्वभाव अजीवसे भिन्न है और स्वयं सुखरूप है।

* बाह्यसंयोग जीवको सुखरूप नहीं, दुःखरूप भी नहीं।
* रागादि आस्रव दुःखरूप ही हैं, उनमें जरा भी सुख नहीं।
* आत्माका सम्यग्दर्शनादि सुखरूप है, उसमें दुःख नहीं है।
* आस्रवों दुःखके कारण हैं—तातैं इनको तजिये।
* संवर-निर्जरा सुखके कारण हैं—तातैं इनको भजिये।

अरे, अपने सुख-दुःखका कारन कौन है उसका भी अज्ञानी जीवको पत्ता नहीं है। सच्चिदानंदस्वरूप आत्माकी पहचान करके (श्रद्धा-ज्ञान करके), उनसे विपरीत ऐसे पुण्य-पाप-आस्रव-बंधरूप अशुद्ध भावोंको दुःखके कारण जानकर छोड़ देना चाहिए, और शुद्ध आत्माके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप संवरको सुखरूप समझकर अंगीकार करना चाहिए।

भगवान आत्मा आनंदस्वरूप है; आनंद बाहरमें नहीं है; सच्चे आनंदके वेदनमें बाह्यवस्तु निमित्त भी नहीं है, वह तो विषयातीत है, आत्मामेंसे ही उसकी उत्पत्ति है। मोक्षरूप ऐसा महा आनन्द जीवका ही स्वभाव है। ऐसे आनन्दरूप जो मोक्षदशा है वह सम्यक्त्वादि आठ महा गुणोंसे युक्त है, और मोहादि आठ कर्मोंका उसमें अभाव है। ऐसी मोक्षदशा-सिद्धदशा-परमपद सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसे ही होती है, अन्य कोई साधनसे नहीं होती। यह मोक्षदशा अविनाशी स्थिर सुखमय है, प्रगट होनेके बाद वह जैसीकी तैसी ही रहती है। साधकभावरूप मोक्षमार्गका काल तो मर्यादित है (असंख्य समय ही है) किन्तु उसके साध्यरूप मोक्षदशा

तो अमर्यादित (सादि अनंत) है, इसे कालकी कोई मर्यादा नहीं है; अनन्तकालमें कभी भी उसके बीचमें दुःख नहीं आवेगा, आत्मा सदाकाल सुखमें ही विराजमान रहेगा। अहो, ऐसे मोक्षपदको पहचानकर उसकी भावना करना योग्य है।

पहले तो ऐसे तत्त्वोंकी सच्ची श्रद्धा करनी चाहिए, और उनमेंसे कौन कौन तत्त्व आदरणीय हैं यह पहचानना चाहिए। जो बन्धको भी आदरणीय मानेगा वह मोक्षका उपाय कैसे करेगा? परभावोंसे भिन्न चैतन्यको अनुभवमें लेकर उसकी श्रद्धा करना सो सम्यग्दर्शन है। आत्मा आनन्दका सागर, वह स्वयं अपनी सन्मुख होनेसे आनन्दके वेदनसहित वीतरागीश्रद्धा होती है। चौथे गुणस्थानमें भी जो सम्यग्दर्शन है वह तो रागरहित ही है, उस भूमिकामें राग भले हो, परन्तु सम्यग्दर्शन स्वयं तो रागरहित ही है, और वह मोक्षका कारण है। उसकी साथका राग तो बन्धका कारण है।

प्रथम अच्छी तरहसे तत्त्वका दृढ निर्णय करना चाहिए। निश्चय–व्यवहारको एक दूसरेमें मिलाये बिना दोनोंका स्वरूप जैसा है वैसा जानना चाहिए। सच्चे देव–गुरु–शास्त्र व्यवहार सम्यग्दर्शनका विषय है, निश्चयसम्यग्दर्शनके विषयमें परवस्तु नहीं आती, वह तो अचिंत्यशक्तिसे परिपूर्ण अपने आत्माकी ही श्रद्धा करता है। परसे भिन्न और अपने गुण–पर्यायोंसे अभिन्न ऐसा मेरा शुद्धआत्मा ही मेरे आदरणीय है ऐसा धर्मी जानते हैं। देव–गुरु वगैरहकी श्रद्धाको व्यवहारसम्यग्दर्शन कहा, परन्तु इससे ऐसा नहीं समझना कि उन परके आश्रयसे आत्माको धर्मका लाभ होता है।

शुद्ध आत्माके सम्यग्दर्शनकी साथमें योग्य भूमिकामें ऐसा ही व्यवहार होता है, विरुद्ध नहीं होता—ऐसा जानना। जो व्यवहार सम्यग्दर्शन है सो श्रद्धागुणकी पर्याय नहीं है; निर्विकल्प प्रतीतरूप जो निश्चयसम्यग्दर्शन है वही श्रद्धागुणकी पर्याय है अतः वही सच्चा सम्यग्दर्शन है। भगवान आत्मा चैतन्यपिंड आनंदरस है वही सम्यग्दर्शन है; अभेदरूपसे शुद्ध आत्मा ही सम्यग्दर्शन है ऐसा समयसारमें कहा है। ऐसे सम्यग्दर्शनको अपनें हितके लिये आठ अंग सहित धारण करना। निश्चय सम्यग्दर्शनकी साथ व्यवहार सम्यग्दर्शनमें आठ अंगके विकल्प होते हैं। (सम्यग्दृष्टिके निश्चय आठ अंगका स्वरूप समयसारके निर्जरा अधिकारमें कहा है।) व्यवहार सम्यग्दर्शन अकेला (निश्चयसे रहित) नहीं होता; हाँ, निश्चयसम्यग्दर्शन अकेला हो सकता है। जैसे सिद्ध व केवली भगवंतोंको अकेला निश्चय सम्यग्दर्शन है; परन्तु उनकी तरह पहले गुणस्थानमें अकेला व्यवहार सम्यग्दर्शन होनेकी बात लागू नहीं होती; क्योंकि सच्चे सम्यग्दर्शनके विना मिथ्यादृष्टिके अकेले शुभरागको व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं कहा जाता। व्यवहार तो वही सच्चा है जो निश्चयसापेक्ष हो।

अहा, चैतन्यमें अनन्त स्वभाव भरे हैं, उसकी महिमा अद्‌भुत है। उसकी सन्मुख होकर रागरहित निर्विकल्प प्रतीत करनेसे अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनसहित सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उसमें अनन्त गुणोंके निर्मल भाव समाते हैं; वह मोक्षमार्ग है; उसकी साथका राग—जो कि सचमुचमें मोक्षमार्ग नहीं है उसको

मोक्षमार्ग कहना सो व्यवहार है। वह बिल्लीको सिंह कहने जैसा है; अर्थात यह सच्चा सिंह नहीं है, इससे भिन्न दूसरा सच्चा सिंह है—यह लक्षमें रखकर बिल्लीमे सिंहका उपचार है। परन्तु जो सच्चे सिंहको लक्षमे नहीं लेते और बिल्लीको ही सच्चा सिंह मान लेते हैं उनके लिये तो वह उपचार भी सच्चा नहीं है; व्यवहारका या निश्चयका किसीका उन्हें ज्ञान नहीं है, वे देशनाको समझे ही नहीं हैं। मुख्यके विना उपचार किसका? निश्चयके विना व्यवहार किसका? जहां सच्चा मोक्षमार्ग लक्षमें हो वहीं पर रागादि अन्यमें मोक्षमार्गका उपचार आता है, उसमें भी सच्चा मोक्षमार्ग तो एक ही है, उसको अच्छी तरह पहचानकर उसका सेवन करना।

---

* विभूति *

साधक जगतकी विभूतियोंके आश्रयसे नहीं जीता, परन्तु जगतकी विभूतियां साधकका आश्रय करने आती हैं। साधक महान है, जगतकी विभूतियां महान नहीं हैं। अहा, चैतन्यकी अद्भुत विभूतिके समक्ष जगतकी विभूति तो बिलकुल तुच्छ भासित होती है।

निश्चय सम्यग्दर्शनकी साथमें सात तत्त्वकी श्रद्धा, सच्चे देव–गुरु–धर्मकी श्रद्धा, और आठ अंगका पालन इत्यादि व्यवहार कैसा होता है वह दिखलाया, और उसे धारण करनेको कहा, अब पच्चीस दोष दिखाकर उनका त्याग करनेको कहते हैं—

[गाथा ११]

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो;
शंकादिक वसु दोष विना, संवेगादिक चित्त पागो।
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपै कहिये;
विन जाने तैं दोष गुननकों, कैसे तजिये गहिये ॥

यह व्यवहार सम्यग्दर्शनमें भी दोषरहित होनेकी बात है। जातिमद आदि ८ मद, देवमूढ़ता आदि ३ मूढ़ता, कुदेवादि ६ अनायतन और शंकादिक ८ दोष—ऐसे पच्चीस दोष हैं उन्हें पहचानकर छोड़ देना चाहिए, और संवेग आदिमें चित्तको जोड़ना चाहिए। इस प्रकार निःशंकतादि आठ अंगका पालन और शंकादिक पच्चीस दोषोंका त्याग करनेका कहा। परन्तु गुण और दोषोंका स्वरूप पहचाने विना गुणका ग्रहण व दोषका त्याग कैसे होगा? अतः आगेकी गाथामें गुण और दोष दोनोंके स्वरूपकी पहचान कराते हैं, उसे जानकर गुणोंका ग्रहण करना और दोषोंका त्याग

करना। सम्यग्दर्शनके लिये कौनसे भाव दोषरूप हैं उन्हें पहचाने तो उनका त्याग करे, और सम्यग्दर्शनके लिये कौनसे भाव गुणरूप हैं उन्हें पहचाने तो उनका ग्रहण करे। जब दोषको पहचाने ही नहीं तब उन्हें कैसे छोड़े? और गुणको पहचाने ही नहीं तब उनका ग्रहण कैसे करे? अतः गुणका ग्रहण व दोषका त्याग करनेके लिये उन दोनोंका स्वरूप पहचानना चाहिए। दोषको दोषरूपसे जानना वह तो दोषका कारण नहीं है, यदि दोषको जानते हुए उसीमे रुक जाय और गुणस्वभावका ग्रहण न करे तो उसे गुण प्रगट नहीं होते और दोष नहीं टलते। परन्तु दोष और गुण दोनोंको जानकर जहाँ गुणस्वभावकी ओर झुका वहाँ दोष नहीं रहते। जो गुण और दोष दोनोंका सच्चा स्वरूप पहचाने वह अवश्य गुणकी ओर उन्मुख होगा और दोषोंसे विमुख होगा। इस प्रकार गुण–दोषको जानकर गुणका ग्रहण करनेके लिये व दोषका त्याग करनेके लिये अब संक्षेपसे उनका स्वरूप कहते हैं।

तदुपरात प्रशम–संवेग–आस्तिक्य और अनुकम्पामे भी सम्यग्दृष्टि अपने चित्तको लगाता है अर्थात् सम्यग्दृष्टिके परिणाममें उस प्रकारकी विशुद्धि रहती है। अनन्तानुबन्धी कषाय तो उसके सर्वथा छूट गये है और अन्य कषायों भी मंद हो गये हैं, अत उसके प्रशातभाव, संसारसे विरक्तभाव और मोक्षमार्गके प्रति उत्साह, सर्वज्ञदेव और उनके कहे हुए तत्त्वोंके प्रति दृढ विश्वासरूप आस्तिक्यता, तथा संसारके दु खी जीवों (आप स्वयं एवं दूसरे) दु खोंसे छूटकर मोक्षसुख पावें ऐसे विचाररूप अनुकम्पा,

—ऐसा परिणाम सहज ही होता है; अतः उपदेशमें ऐसा कहा है कि उन संवेगादिकमें चित्तको लगाओ।

अब आगे गुण-दोषोंके कथनमें प्रथम सम्यक्त्वके आठ गुण कहते हैं, और बादमें पच्चीस दोष कहेंगे॥

प्रश्नः—पांच भावोंमेंसे बन्धका कारण कौन?

उत्तर—एक उदयभाव और उसमें भी मोहरूप उदयभाव, वही बन्धका कारण है। अन्य कोई भाव बन्धका कारण नहीं है।

प्रश्नः—पांच भावोंमेंसे मोक्षका कारण कौन?

उत्तरः—उपशमभाव, क्षायिकभाव तथा सम्यक् क्षयोपशमभाव वे मोक्षके कारण हैं। पारिणामिकभाव बन्धका अथवा मोक्षका कारण नहीं है; वह बन्ध-मोक्षके हेतुत्वसे रहित है।

प्रश्नः—ऋद्धियाँ कितनी हैं?

उत्तरः बुद्धिऋद्धि इत्यादि आठ महा ऋद्धियां हैं, इनके अन्तर्भेद ६४ हैं। इन ६४ ऋद्धियोंमें सबसे प्रथम केवलज्ञान-बुद्धिरूप महाऋद्धि है। आत्मा निजवैभवकी अपेक्षासे तो केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंकी चैतन्य-ऋद्धिका भण्डार है।

सम्यग्दृष्टिके निःशंकता आदि आठ गुण

आठ अंगसहित सम्यक्त्व धारण करनेका कहा, वे आठ अंग अर्थात् आठ गुण कौन कौनसे हैं? यह दिखाते हैं—

[गाथा १२ तथा १३ का पूर्वार्ध]

जिन वचमें शंका न धार वृष, भव-सुख-वांछा भानै;
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व-कुतत्त्व पिछानै।
निज गुण अरु पर औगुण ढांकै, वा निजधर्म बढ़ावै;
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज परको सु दिढावै ॥१२॥
धर्मी सों गौ-वच्छ-प्रीति सम, कर जिनधर्म दिपावै;
इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनकों सतत खिपावै।

परद्रव्योंसे भिन्न अपने शुद्ध एकत्वस्वरूपकी रुचि-प्रतीत-श्रद्धा सो सम्यग्दर्शन है, उसकी अद्भुत महिमा है। ऐसे सम्यग्दर्शनकी साथमें शंकादि आठ दोषोंके अभावरूप निःशंकतादि आठ गुण होते हैं, उनका यह वर्णन है—

१. जिनवचनमें शंका नहीं करना।

२. धर्मके फलमें संसारसुखकी वांछा नहीं करना। संसारिक सुख वह तो पुण्यका फल है, वह वीतरागी धर्मका फल नहीं है। अतः धर्मात्माको उसकी चाह नहीं होती।

३. मुनिके देहकी मलिनता आदिको देखकर धर्मके प्रति घृणा

नहीं करना। उनके धर्मका परम बहुमान करना।

४. तत्त्व और कुतत्त्व, वीतरागदेव और कुदेव, इत्यादिके स्वरूपकी पहचान करनी, इनमें मूढ़ता नहीं रखनी।

५. अपने गुणको तथा अन्य साधर्मीके अवगुणको ढंकना, और स्व-परमें वीतरागभावरूप आत्मधर्मकी वृद्धि करना, उसका नाम उपगूहन अथवा उपबृंहण अंग है।

६. लोभ-कामवासना आदिके कारणसे अपना या परका आत्मा धर्मसे डिग जानेका या शिथिल होनेका प्रसंग हो तब वैराग्य भावनासे एवं धर्मकी महिमाके द्वारा धर्ममें स्थिर करना, दृढ़ करना, सो स्थितिकरण है।

७. अपने साधर्मीजनोंके प्रति गौवत्स समान सहज प्रेम रखना सो वात्सल्य है।

८. अपनी शक्तिसे जैनधर्मकी शोभा बढ़ाना, उसकी महिमा प्रसिद्ध करके प्रभाव बढाना सो प्रभावना है।

—ऐसे निःशंकतादि आठ गुणोंके सेवनसे सम्यग्दृष्टि जीव शंकादि आठ दोषोंको दूर करते हैं। निश्चय सम्यग्दर्शनमें तो परसे भिन्न अपने शुद्धात्माकी निःशंक श्रद्धा है, और उससे भिन्न समस्त परभावोंकी या संसारकी वांछाका अभाव है; —उसकी साथमें जो व्यवहार आठ अंग होते हैं उनका यह वर्णन है। सम्यक्त्वके निःशंकतादि आठ गुण और शंकादिक पच्चीस दोषको जानकर, गुणोंका ग्रहण व दोषोंका त्याग करनेके लिये यह कथन है। (इस

डेढ़ गाथामें आठ गुण दिखाये हैं, आगेकी डेढ़ गाथामें पच्चीस दोष कहेंगे।)

* १. निःशंकता-अंगका वर्णन *

सर्वज्ञदेवने जैसा कहा वैसा ही जीवादि तत्त्व है, उसमें धर्मीको शंका नहीं होती। उसने सर्वज्ञके स्वरूपका निर्णय तो किया है, अतः पहचान सहितकी निःशंकताकी यह बात है; पहचानके बिना मान लेनेकी यह बात नहीं है। जीव क्या है, अजीव क्या है इत्यादि तत्त्वोंको अरिहन्तदेवके कहे अनुसार स्वयं समझकर उनकी निःशंक श्रद्धा करना चाहिए, यदि कोई सूक्ष्म तत्त्व समझनेमे न आवे और विशेष जाननेकी जिज्ञासासे सन्देहरूप प्रश्न हो—तो इससे कहीं जिनवचनमें सन्देह नहीं हो जाता। सर्वज्ञकथित जैनशास्त्रोंमे जो कहा है वह सच्चा होगा, कि आधुनिक विज्ञानवाले लोग कहते हैं वह सच्चा होगा?—ऐसा सन्देह धर्मीको नहीं रहता। अहा, सर्वज्ञस्वभाव जिसकी प्रतीतमें आया, परम अतीन्द्रियवस्तु जिसकी प्रतीतमे आई, उसे सर्वज्ञकथित छहद्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रुव, द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि (-अपनेको वे प्रत्यक्ष न होते हुए भी) उनमें शंका नहीं रहती। निश्चयमें अपने ज्ञान-स्वभावरूप आत्मामें परम निःशंकता है, और व्यवहारमें देव-गुरु-धर्ममे निःशंकता है। क्या जैनधर्म एक ही सच्चा होगा, कि जगतमे जो दूसरे धर्म कहलाते हैं वे भी सच्चे होगे?-ऐसी शंका जिसके है उसे तो स्थूल मिथ्यात्व है, व्यवहारधर्मकी निःशंकता भी

उसके नहीं है। वीतरागी जैनधर्मके अतिरिक्त अन्य किसी मार्गकी मान्यता धर्मीके कभी नहीं होती।

जैन बालक अपनी मांकी गोदमें निःशंक है कि यह मेरी मां मेरा भला हीं करेगी, उसको कोई सन्देह नहीं होता कि—कोई मुझे मारेगा तो मेरी मां मेरेको बचायेगी कि नहीं? वैसे जिनवाणी-माताकी गोदमें धर्मी निःशंक है कि यह जिनवाणी-मां मुझे सत्य-स्वरूप दिखाकर मेरा हित करनेवाली है, संसारसे वह मेरी रक्षा करेगी। जिनवाणीमें उसे सन्देह नहीं रहता। परमेश्वर—वीतराग-सर्वज्ञ अरिहंत जिनपरमात्मा—जिन्होंने अपने केवलज्ञानमें वीतराग-भावसे सारे विश्वको देखा है, ऐसे परमात्माको पहचानकर उनमें निःशंक होना, और उनके कहे हुए मार्गमें तथा जीवादि तत्त्वोंमें निःशंक होना—यह निःशंकता गुण है।

श्री समन्तभद्रस्वामीने रत्नकरण्ड-श्रावकाचारमें सम्यक्त्वके इन आठ अंगोंके पालनमे प्रसिद्ध आठ जीवोंका उदाहरण दिया है; उनमें निःशंकित अंगमें अंजन चोरका दृष्टांत दिया है। (इन आठ अंगकी आठ कथाएँ आप 'सम्यक्त्वकथा' नामक पुस्तकमें, अथवा 'सम्यग्दर्शन'—गुजराती चौथे पुस्तकमें पढ़ सकेंगे) समझानेके लिये प्रत्येक अंगका अलग-अलग दृष्टांत दिया है; वैसे तो सम्यग्दृष्टि जीवोंको एकसाथ आठों अंगोंका पालन होता है, उनमेंसे प्रसंग अनुसार किसी अंगको मुख्य कहा जाता है।

* निःकांक्षा—अंगका वर्णन *

धर्मीजीव धर्मके फलमें भवसुखकी वांछा नहीं करते, अतः

पुण्यको या पुण्यके फलको वे नहीं चाहते; धर्मसे मुझे स्वर्गादिका सुख मिले-ऐसी वांछा सो भवसुखकी वांछा है, ऐसी वांछा अज्ञानीके होती है। ज्ञानीने तो अपने आत्मिक सुखका अनुभव किया है अतः अन्यत्र कहींपर भी उसे सुखबुद्धि नहीं है, इसलिये वह निष्कांक्ष है। सम्यग्दृष्टिने आत्मिक सुखका वेदन करके भवसुखकी वांछा नष्ट कर दी है। यही उसका निष्कांक्षगुण है। 'भवसुख' यह अज्ञानीकी भाषामें कहा है, सचमुचमें भवमें सुख है ही नहीं, किन्तु अज्ञानी लोग देवादिके भवमें सुख मानते हैं, इन्द्रियविषयोंमें सुख मानते हैं,-आत्माके सुखको तो वे पहचानते नहीं। अरे, सम्यग्दृष्टि तो आत्माके सुखका स्वाद लेनेवाला, मोक्षका साधक! वह संसार-भोगको क्यों इच्छे? जिसके वेदनमें जीव अनादिकालसे दुःखी हुआ उसकी वांछा ज्ञानी कैसे करे? भव-तन-भोग यह तो ज्ञानीको अनादिकालकी उच्छिष्टके समान (वमनके समान) दीखते हैं; जीव अनन्तबार उन्हें भोग चुका परन्तु सुखकी एक बून्द भी उनमेंसे न मिली।

धर्मका प्रयोजन क्या है?—धर्मका प्रयोजन, धर्मका फल तो आत्मसुखकी प्राप्ति है; धर्मका फल कहीं बाहरमें नहीं आता। जिसने आत्मसुखका स्वाद नहीं जाना उसके अन्तरमें संसार-भोगकी चाहना रहा करती है, तथा उसके कारणरूप पुण्यकी व शुभरागकी भी रुचि उसे रहती है, अतः उसे सच्चा निष्कांक्षपन नहीं होता। भले ही वह राजपाट घर-परिवार इत्यादिको छोड़कर त्यागी हुआ हो परन्तु जबतक रागसे भिन्न चैतन्यरसका स्वाद नहीं लिया

(अनुभव नहीं किया) तबतक उसे संसार–भोगकी वांछा विद्यमान रहती है। और सम्यग्दृष्टि जीव राजपाट–घर–परिवार इत्यादि संयोगमें रहा हो, उसके संबंधी राग भी हो, (–वास्तवमें तो वह अपनी चेतनामें ही तन्मय रहता है, अन्यत्र कहीं नहीं वर्तता, किन्तु संयोगकी अपेक्षासे राजपाटमें व रागमें वर्तना कहा है,) परन्तु अंतरमें उन सबके पार अपने चैतन्यरसका आनंद चाख लिया है अतः उसको उनमें कहीं स्वप्नमें भी सुखबुद्धि नहीं है; अतएव राग होनेपर भी श्रद्धाके बलसे उसे निष्कांक्षता ही है। धर्मीकी यह कोई अलौकिक दशा है—जिसे अज्ञानी नहीं पहचान सकता। और जो पहचाने उसे अज्ञान नहीं रहता।

लोग कहते हैं कि हम धर्म करेंगे इससे धन मिलेगा और हम सुखी होंगे।— किन्तु ऐसी मान्यतावालेको न धर्मकी पहचान है, न सुखकी। वे तो शुभरागको–पुण्यको धर्म समझ रहे हैं और उसके फलमें धन वगैरह मिले उसको सुख मानते हैं; उससे भिन्न आत्माके अस्तित्वकी तो उन्हें पहिचान ही नहीं है। अरे भाई! धर्मके फलमें कहीं बाहरी धन नहीं मिलता, और धनादिकका मिलना वह तो कहीं धर्मका प्रयोजन नहीं है। धनके लिये धर्म नहीं किया जाता। धर्मका प्रयोजन तो आत्मिक सुख है; और उस सुखमें धनादिकी जरूर नहीं पड़ती। वह संयोगरहित स्वाभाविक सुख आत्मामेंसे ही उत्पन्न होता है। ऐसे सुखको जानकर जिसने अनुभव किया उसको संसारमें अन्य किसीकी भी वांछा नहीं रहती,—कहीं भी सुखकी कल्पना नहीं रहती।

धर्मात्माको धर्मकी साथके रागके कारणसे पुण्य बंध जाय और उस पुण्यके फलमें बाहरका वैभव मिले, परन्तु धर्मीको उसकी वांछा नहीं है, वह अपने आत्माको उससे अत्यंत भिन्न जानते हैं। धर्मके फलमें मुझे पुत्र मिलो, धन मिलो—ऐसी वांछा धर्मीके नहीं है। धर्मी जीव देव-गुरुके आश्रयसे लौकिक हेतुकी आशा नहीं रखता। व्यापार-लग्न-वास्तु इत्यादि प्रसंगमें शुभरागसे भगवानको याद करे उसमे भवसुखकी वांछाका अभिप्राय धर्मीको नहीं है। जो सर्वज्ञका भक्त हुआ उसे ससारकी वांछा नहीं रह सकती। रागका एक कण भी मेरे ज्ञानमें नहीं है ऐसा जाननेवाला ज्ञानी उस रागके फलको कैसे वांछे? धर्मके सेवनमें उसे मोक्षरूप परमसुखके सिवा अन्य किसीकी भी आशा नहीं है। धर्मका फल तो वीतरागी सुख है, बाह्य वैभव या इन्द्रादि पद यह कोई धर्मका फल नहीं है, वह तो रागका-विकारका फल है। अज्ञानी उस पुण्यरूप धर्मको चाहता है अत वह भोगहेतुधर्मका सेवन करता है—ऐसा समयसारमें कहा है, रागरहित शुद्धआत्माके अनुभवरूप मोक्षहेतुधर्मको वह नहीं जानता।

अंतरके अनुभवमें अपने चैतन्य परमदेवका अनुभव करनेवाले धर्मात्मा जानते हैं कि मेरा यह चैतन्यचमत्कार आत्मा ही मुझे परमसुख देनेवाला है, इसके सिवा मैं अन्य किसकी वांछा करूं? अरे! स्वर्गका देव आवे तो भी उसकी पाससे तुझे क्या लेना है? स्वर्गके देवके आगमनकी बात सुनकर अज्ञानीको तो चमत्कार लगता है और उसकी महिमामे धर्मकी महिमाको भूल जाता है, क्योंकि

स्वयं उसके मनमें स्वर्गादिक भोगकी वांछा है। अरे, मूर्ख लोग तो सर्प-बन्दर-गाय इत्यादि तिर्यंच प्राणीओंको भी देव-देवी मानकर पूजते हैं। अपनेको जैन कहलानेवाले भी अनेक लोग भोगकी वांछासे, या रोग मिटनेकी वांछासे अनेक देव-देवीयोंकी पूजा-मानता करते हैं,-क्या मूर्खको कहीं विवेक होता है? अरिहंत भगवानका सच्चा भक्त प्राणके छूट जानेपर भी मिथ्या देव-देवीको पूजते नहीं। वीतरागधर्मके सेवनके फलमें धनादि बाह्यवस्तु मिलनेंकी वांछा धर्मी नहीं रखते। इसप्रकार धर्मात्मा निष्कांक्ष भावसे धर्मका सेवन करते हैं।

प्रश्नः-व्यापारादिमें धन मिले ऐसी वांछा तो धर्मीके भी रहती है, तब फिर उसे निष्कांक्षपना कैसे रहा?

उत्तरः-उसे अभी उस प्रकारका अशुभराग है; परन्तु इस रागसे या धनसे मुझे सुख मिलेगा-ऐसी मिथ्याबुद्धिरूप वांछा उसे नहीं है। राग और संयोग दोनोंसे पार मेरी चेतना है, उसमें ही मेरा सुख है, ऐसा जाननेवाला धर्मात्मा उस धर्मचेतनाके फलमें बाह्यसामग्री कभी नहीं चाहता, इसलिये वह निष्कांक्ष है। वह धर्मात्मा कदाचित इन्द्रपद या चक्रवर्तीपदके वैभवका उपयोग करता दिखे, किन्तु उसके ज्ञानमें विषय-भोगोंका रंचमात्र आदर नहीं है। अरे, हम तो अतीन्द्रिय आनन्दके पिंड हैं, हमारे आत्माको छोड़कर जगतमें कहीं भी हमारा आनन्द है ही नहीं। इसलिये कहा है कि-

चक्रवर्तीकी संपदा इन्द्र सरीखे भोग।
काकवीट सम गिनत हैं सम्यग्दृष्टि लोग॥

(यह दोहा इन्दौरमें श्री हुकमीचन्दजी सेठके जिनमंदिरमें

भी है।) विषयोंके विकल्पोंको धर्मीजीव दुःख एवं जेलके समान गिनते हैं, उसमें सुखबुद्धि नहीं अतः उसकी वांछा नहीं है। उत्तम-वस्तु खाते-पीते हो, अच्छे वस्त्र पहिनते हो, स्त्री-पुत्रादिके बीच बैठे हो,—तो क्या धर्मी उसमें सुख मानते होंगे? नहीं, जरा भी नहीं। आनन्दस्वरूप मेरा आत्मा ही है, परमें सुख जरा भी नहीं है—ऐसी निःशंक प्रतीतवाला धर्मात्मा देवलोकके सुखको भी नहीं वांछते।—उसमें सुख है ही नहीं फिर उसकी वांछा कैसी? चैतन्यके अतीन्द्रिय आनन्दके पास स्वर्गके वैभवकी भी कोई गिनती नहीं। इन्द्रके वैभवमें उस सुखकी गंध भी नहीं है। हां, सम्यग्दृष्टि-इन्द्रको आत्माका सुख होता है-यह बात दूसरी है, किन्तु बाह्यवैभवमें तो उसकी गंध भी नहीं है और इन्द्र स्वयं भी उसमें सुख नहीं मानता।

अज्ञानी बाह्यमें भले ही विषयोंका त्यागी हो परन्तु अभिप्रायमें उसको विषयोंकी वांछा है, क्योंकि रागमें सुखबुद्धि है। चैतन्यका इन्द्रियातीत सुख जिसने नहीं देखा उसको रागमें और विषयोंमें सुखबुद्धिका अभिप्राय रहता ही है। यदि उसमें मीठास न लगती हो तो परिणति उससे हटकर अपने चैतन्यसुखमें क्यों नहीं आ जाती?—उसने चैतन्यसुखको देखा नहीं, और इन्द्रियविषयोंमें सुख माना इसलिये उसकी वांछा नहीं मिटी, भले विषयोंकी अभिलाषा प्रगट न दिखती हो परन्तु अंतरके अभिप्रायमें तो विषयोंकी आकांक्षा विद्यमान ही है।

और सम्यग्दृष्टि तो सिद्धका पुत्र हो गया, वह तो अखंड एक आनंदरसमय ज्ञायकस्वभावकी अनुभूति करके जीतेन्द्रिय हो गया।

आत्माको छोड़कर जगतमें कहीं भी उसे सुखबुद्धि नहीं है। पांच इन्द्रिय संबंधी रागकी वृत्ति आती है तो वे उसमें सुख मानते होंगे—ऐसा जरा भी नहीं है। उन्हें अंतरके आत्मिक आनंदकी ही भावना है। अहा, धर्मात्माकी चेतनाके खेल तो धर्मी ही जानते हैं। अज्ञानी बाह्यनेत्रके द्वारा धर्मीका सच्चा माप नहीं निकाल सकता। धर्मीका अंतर-हृदय बाहरसे देखा नहीं जाता। धर्मी जानते हैं कि मेरा धर्म मेरेमें है, उसका फल बाहरमेंसे नहीं आता। बाहरका जो पुण्यफल है वह तो चावलके ऊपरके छिलके जैसा है, अज्ञानी लोग उसे ही देखते हैं, अन्दरके सच्चे वीतरागी कसको वे नहीं देखते। धर्मके बदलेमें लौकिक फलको धर्मी नहीं चाहते, दुनियाको दिखानेके लिये वे धर्म नहीं करते। धर्मीका धर्म तो अपने आत्मामें ही समाता है और उसका फल भी आत्मामें ही आता है।

कोई देव सेवा करनेको आवे तो धर्मी उससे मोहित नहीं हो जाता, और कोई देव आकर त्रास दें तो उससे डरकर धर्मी अपने धर्मको नहीं छोड़ता। ऐसे कोई देव-देवीको धर्मबुद्धिसे वह नहीं मानता। मैं धर्म करता हूं तो स्वर्गका कोई देव प्रसन्न होकर मुझे धनादिका लाभ कर देगा—ऐसी बुद्धि धर्मीके नहीं होती। सर्वज्ञ-वीतराग अरिहंतदेवको छोड़कर अन्य कुदेवको वह अपना शिर कभी नहीं झुकाता। मैं वीतरागताका साधक हूं, अतः वीतरागको छोड़कर अन्य किसीको मैं देव मानूं नहीं। चैतन्यके वीतरागस्वभावसे अतिरिक्त पुण्यकी भी जहां वांछा नहीं वहां बाहरके पाप-भोगोंकी बात कैसी? देखो तो सही, इतनी बात तो सम्यग्दर्शनकी साथके

व्यवहारमें आ जाती है। सम्यग्दर्शनकी निश्चय अनुभूतिका तो कहना ही क्या?

अरे, दुनियांके लोग तो बाहरके तुच्छ चमत्कारमें मोहित हो जाते हैं; परन्तु ऐसा (हाथमेंसे कुमकुम नीकालना इत्यादि) चमत्कार तो तुच्छ अभव्य देव भी दिखा सकता है। उसमें आत्माका कौनसा हित है? धर्मी तो जानते हैं कि सर्वज्ञता और वीतरागता वही मेरे भगवानका सच्चा चमत्कार है; इसके सिवा बाहरके कोई चमत्कारके हेतु वे भगवानको नहीं मानते। बाह्य संयोगका आना-जाना तो पुण्य-पापके अनुसार हुआ करता है, धर्मकी साथ उसका संबंध नहीं है। धर्मी जीव धर्मके फलमें बाहरका आकांक्षा नहीं करते। जहा रागसे भिन्न आत्मिक आनंदका स्वाद अपनेमें आया तब फिर भवसुखकी वांछा कैसे रहे? 'भवसुख' वास्तवमें सुख नहीं किन्तु दुःख ही है। भव कहनेसे उसमें संसारकी चारों गति आ गई, स्वर्ग भी उसमें आ गया, अतः देवगतिके सुखको भी धर्मी नहीं चाहता। सम्यग्दृष्टिका ऐसा निष्कांक्ष अंग है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टिके आठ गुणमेंसे दूसरा गुण कहा। यह निःकांक्षा अंगके पालनमें सती अनंतमतीका उदाहरण प्रसिद्ध है-जो आप 'सम्यक्त्वकथा'में पढ सकेंगे।

* ३. निर्विचिकित्सा-अंगका वर्णन *

जिसने आत्मा और शरीरको भिन्न जान लिया है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, देहादिमें अशुची देखकर आत्माके धर्मके प्रति ग्लानि

नहीं करता; किसी मुनि वगैरह धर्मात्माका शरीर मलिन या रोगवाला देखकर उनके प्रति उसे घृणा–दुर्गंछा नहीं होती, परन्तु शरीर मलिन होने पर भी अंतरमें आत्मा तो पवित्र चैतन्यधर्मोंसे शोभित हो रहा है–उसका उसे बहुमान आता है। 'ऐसे मलिन–कोढ़ी शरीरवालेको कैसे धर्म होता है!' ऐसी दुर्गंछाका भाव उसे नहीं आता।–यह सम्यग्दृष्टिका निर्विचिकित्सा अंग है।

सर्वज्ञके देहमें तो अशुचि होती ही नहीं, उन्हें रोगादि भी नहीं होते। साधक–धर्मात्मा–मुनि वगैरहके देहमें मलिनता हो, रोगादि हो, कभी कोढ़ भी हो जाय, शरीर सड़ जाय, तो उसे देखकर धर्मी विचार करते हैं कि अहो, यह आत्मा तो अन्तरमें सम्यग्दर्शनादि अपूर्व रत्नोंसे अलंकृत है, देहके प्रति उन्हें कोई ममत्वबुद्धि नहीं है, रोगादि तो देहमें होते हैं और देह तो स्वभावसे ही अशुचिरूप है; इस प्रकार देह और आत्माके भिन्न–भिन्न धर्मोंका विचार करके धर्मी जीव देहको मलिन देख करके भी धर्मात्माके गुणोंके प्रति ग्लानि नहीं करते। शरीरमें भी रागादि मलिनता हो जाय तो उससे वे अपने धर्मोंसे नहीं डिगते, और उसमें शंका भी नहीं करते। मुनि तो देहके प्रति अत्यन्त उदासीन होते हैं, वे स्नानादि भी नहीं करते, देहकी शोभाका उन्हें लक्ष नहीं है, वे तो स्वानुभूतिरूप स्नानके द्वारा आत्माको निर्मल करनेवाले हैं, रत्नत्रय ही उनका शृंगार है। अहो! ऐसे मुनिराजको देखकर रत्नत्रयधर्मके बहुमानसे उनके चरणोंमें शिर झुक जाता है।

अरे, देह तो स्वभावसे ही अशुचिका धाम और क्षणभंगुर है;

और धर्मात्मा तो रत्नत्रयसे सहज पवित्र हैं। शरीरमें सुगन्ध हो कि दुर्गंध—यह तो जड़का धर्म है। ऐसा कोई नियम नहीं है कि धर्मीका शरीर कुरूप न हो; किसीका शरीर कुरूप भी हो, आवाज भी स्पष्ट न निकलती हो,—लेकिन इससे क्या? अन्तरमें तो धर्मात्मा अपनेको देहसे भिन्न अशरीरी ज्ञानमय अनुभव करते हैं। रत्नकरंडश्रावकाचारमें समन्तभद्र महाराज कहते हैं कि—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नम् अपि मातङ्गदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥

चाडालके देहमें रहा हुआ भी सम्यग्दृष्टि आत्मा देव समान शोभता है,—भस्मसे ढँके हुए अग्निके अंगारकी तरह देवरूपी भस्मके अन्दर सम्यक्त्वरूप ओजससे वह आत्मा शोभता है, वह प्रशंसनीय है। इस प्रकार आत्माके सम्यक्त्वको पहचाननेवाले जीव शरीरादिकको अशुचिको देख करके भी धर्मात्माके प्रति घृणा—तिरस्कार नहीं करते, किन्तु उनके पवित्र गुणोंके प्रति प्रेम व आदर करते हैं; ऐसा निर्विचिकित्सा अंग है। (इस निर्विचिकित्सा-अंगके लिये उदायन राजाका दृष्टांत शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है; वह 'सम्यक्त्व कथा' आदिमें आप पढ़ सकते हैं।)

किसी धर्मात्माके पुण्य अल्प हो—उससे क्या? पुण्य तो उदयभावका फल है, उससे आत्माकी कहीं शोभा नहीं, आत्मा तो सम्यक्त्वादिसे ही शोभता है। धर्ममें तो गुणसे ही शोभा है, पुण्यसे नहीं। कुत्ता जैसा एक तिर्यंच भी यदि सम्यक्त्वसहित हो तो शोभा

पाता है, जबकि मिथ्यादृष्टि बड़ा देव हो तो भी शोभा नहीं पाता। अल्प पुण्योदयके कारणसे कोई धर्मात्मा निर्धन हो, कुरूप भी हो और आप स्वयं धनवान-रूपवान हो तो इस कारणसे धर्मी दूसरे साधर्मीसे अपनी अधिकता नहीं मानता और दूसरेका तिरस्कार नहीं करता; परन्तु उसके गुणकी प्रीतिपूर्वक उनका आदर करता है कि वाह! देहादिकी इतनी प्रतिकूलता होने पर भी यह धर्मात्मा अपने धर्मको अच्छी तरह साध रहे हैं, उनको धन्य है! पुण्यके तो अनेक प्रकार हैं, उसमें हीनाधिकता हो-उससे क्या। अन्तरका धर्म तो पुण्यसे अलग है। इस प्रकार देह और आत्माके धर्मोंकी भिन्नता जाननेसे देहादिकी हीनता देख करके भी धर्मात्माके गुणोंके प्रति अनादरका भाव नहीं होता। किन्तु गुणोंके प्रति प्रेम आता है।—ऐसा सम्यक्त्वका तीसरा अंग है।

४. अमूढदृष्टि-अंगका वर्णन

आत्महितका सत्य मार्ग जिसने जान लिया है—ऐसा धर्मात्मा सच्चे-झूठेकी परीक्षा करनेमें जरा भी घबराता नहीं, सच्चे देव-गुरु-धर्म और झूठे देव-गुरु-धर्म उन्हें अच्छी तरह पहचानकर वह असत्य मार्गकी प्रशंसा भी छोड़ देता है। अंतरमें तो असत्य-मार्गको दुःखदायक जानकर छोड़ ही दिया है, और मनसे-वचनसे -कायासे भी वह कुमार्गकी प्रशंसा या अनुमोदना नहीं करता। कुमार्गका सेवन बहुत लोग करते हो, बड़े बड़े राजा भी उसका सेवन करते हो तो भी धर्मात्माको सन्देह नहीं होता कि उसमें कुछ सच्चा होगा? वह तो अपने जिनमार्गमें निःशंक रहता है। ऐसा अमूढ दृष्टिपना धर्मीको होता है।

वीतराग-सर्वज्ञ अरिहंत व सिद्ध परमात्माको छोड़कर अन्य किसी देवको वह नहीं मानता।

रत्नत्रयधारी निर्ग्रन्थ मुनिराजको छोड़कर अन्य किसी कुगुरुको वह नहीं मानता।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो वीतरागधर्म, उसके अतिरिक्त अन्य कोई धर्मको वह मोक्षका कारण नहीं मानता, और उसका सेवन भी नहीं करता।

—इस प्रकार देव-गुरु-धर्मके सम्बन्धमें धर्मीको मूढ़ता नहीं होती। कुदेव-कुगुरु-कुधर्मको माननेवाला जीव समाजमें करोड़ों मूढ़ लोगोंके द्वारा पूजा जाता हो। अरे! देव उसके पास आते हो तो भी धर्मीको मार्गकी शंका नहीं होती, और तत्त्वनिर्णयमें वह नहीं घबराता। निश्चयरूप जो अपना शुद्ध आत्मस्वरूप है उसमें तो वह निःसंदेह है, दृढ है और व्यवहारमें अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र-तत्त्व इत्यादिके निर्णयमें भी वह निःसंदेह है दृढ है। सुखका मार्ग ऐसा वीतराग जैनमार्ग, और दुःखका मार्ग ऐसा कुमार्ग, उसकी अत्यन्त भिन्नता जानकर कुमार्गकी सेवा-प्रशंसा-अनुमोदना सर्व प्रकारसे छोड़ देता है।

कुमार्गके माननेवाले बहुत जीव हो और सत्यमार्गके जाननेवाले जीव बहुत कम हो—किन्तु इससे धर्मात्माको घबराहट नहीं होती कि कौनसा मार्ग सच्चा होगा? अरे, चाहे मैं अकेला होऊँ तो भी मेरे हितका मार्ग मैंने जान लिया है वही परम सत्य है, और ऐसा हितमार्ग दिखानेवाले वीतरागी देव-गुरु ही

सच्चे हैं। स्वानुभवसे मेरा आत्मतत्त्व मैंने जान लिया है; इससे विरुद्ध जो कोई मान्यता हो वे सब झूठी हैं; ऐसी निःशंकतासे धर्मी जीवने कुमार्गकी मान्यताको असंख्य आत्मप्रदेशमेंसे निकाल दी है। वह शुद्ध दृष्टिवंत जीव किसी भयसे-आशासे-स्नेहसे या लोभसे कुदेवादिके प्रति प्रणाम-विनयादि नहीं करता।

अरे जीव! तुझे ऐसा मनुष्यत्व मिला; ऐसा सत्य धर्मका योग मिला, तो अब इस अवसरमे तेरी विवेकबुद्धिसे सत्य-असत्यकी परीक्षा द्वारा निर्णय कर; आत्माके लिये परम हितकार ऐसे सर्वज्ञ भगवानके मार्गका स्वरूप समझकर उसका सेवन कर, और कुमार्गके सेवनरूप मूढ़ताको छोड़। अरिहंतभगवानका मार्ग जिसने जान लिया है वह जीव जगतमें कहीं भ्रमित नहीं होता; भगवानके मार्गका निःशंकतासे सेवन करता हुआ वह मोक्षको साधता है। सम्यग्दृष्टिका ऐसा अमूढदृष्टित्व-अंग है। (इस अमूढदृष्टि अंगके पालनमें रेवती-रानीका उदाहरण शास्त्रमें प्रसिद्ध है, वह 'सम्यक्त्वकथा' आदि पुस्तकमेंसे देख लेना चाहिए)। इस प्रकार सम्यक्त्वके चौथे अंगका वर्णन किया।

५. उपगूहन (उपबृंहण) अंगका वर्णन

अपने गुणोंकी प्रशंसा न करना, दूसरेकी निंदा न करना, साधर्मीमें कोई दोष लग गया हो तो उसे ढँकना और उस दोषको दूर करनेका प्रयत्न करना, तथा गुणकी-धर्मकी वृद्धि हो ऐसा उपाय करना,-ऐसा भाव सो सम्यग्दृष्टिका उपगूहन अथवा उपबृंहण अंग है।

धर्मात्माको ऐसी मार्दवभावना अर्थात् निर्मानता होती है कि, मेरे गुण जगतमें प्रसिद्ध हो और पूजा हो-ऐसी भावना उसे नहीं होती, तथा कोई साधर्मीके दोष प्रसिद्ध करके उसको हलका दिखानेकी भावना नहीं होती, परन्तु धर्मकी वृद्धि कैसे हो, गुणकी वृद्धि कैसे हो-यही भावना है। कोई अज्ञानी या अशक्त जनके द्वारा पवित्र रत्नत्रयधर्ममें लांछनका प्रसंग हो जाय तो धर्मी उसको दूर करते हैं, धर्मकी निंदा नहीं होने देते। दोषोंको दूर करना और वीतरागी गुणोंकी वृद्धि करना यह सम्यक्त्वका अंग है। अतः ऐसा भाव सम्यग्दृष्टिके सहज होता है। जैसे माताको अपना पुत्र प्यारा है अतः वह उसकी निन्दा सह नहीं सकती, इसलिये उसके दोष छिपाकर गुण प्रगट करना चाहती है, वैसे धर्मीको अपना रत्नत्रयधर्म प्यारा है अतः रत्नत्रयमार्गकी निंदाको वह सह नहीं सकता, इसलिये वह ऐसा उपाय करता है कि जिससे धर्मकी निंदा दूर हो और धर्मकी महिमा प्रसिद्ध हो। दोषको ढँकना-दूर करना और गुणको बढ़ाना—ये दोनों बात इस पांचवें अंगमें आ जाती हैं। अतः इसे उपगूहन अथवा उपबृंहण कहा अंग जाता है।

धर्मात्मा निजगुणको ढांकते हैं अर्थात् बाह्यमें उसकी प्रसिद्धिकी कामना नहीं करते, मेरा काम मेरे आत्मामे हो रहा है वह दूसरेको दिखानेका क्या प्रयोजन है? दूसरे लोग मेरे गुणको जाने तो अच्छा-ऐसी बुद्धि धर्मीको नहीं होती। धर्मी अपने आत्मामे तो निजगुणकी प्रसिद्धि (प्रगट अनुभूति) अवश्य करते हैं, अपने सम्यक्त्वादि गुणोंका आप निःशंक जानते हैं; परन्तु बाह्यमें दूसरे

लोगोंके द्वारा अपने गुणोंकी प्रसिद्धिसे मान-बड़ाई लेनेकी बुद्धि धर्मीको नहीं होती; एवं दूसरे धर्मात्माओंके दोषोंको प्रसिद्ध करके उन्हें निंदा करनेका या उन्हें हलका दिखानेका भाव धर्मीको नहीं होता परन्तु उनके सम्यक्त्वादि गुणोंको मुख्य करके उनकी प्रशंसा करते हैं; इस प्रकार गुणकी प्रीतिसे वे अपनेमें गुणकी वृद्धि करते हैं, और अवगुणको ढंकते हैं तथा प्रयत्नपूर्वक उन्हें दूर करनेका उद्यम करते हैं।

धर्मीको अपने गुण इष्ट हैं और दोष इष्ट नहीं हैं। किसी अन्य धर्मात्मामें हीन शक्तिवश कोई दोष हो गया हो तो उसे प्रसिद्ध करके उसका तिरस्कार नहीं करते, परन्तु युक्तिसे उसके दोष दूर करता है; किन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं समझना कि मिथ्यादृष्टि चाहे जैसा कुमार्गका प्रतिपादन करे तो भी उसकी भूल प्रसिद्ध न करे। मिथ्यामतोंमें तत्त्वोंकी विपरीतता कैसी है, मिथ्यादृष्टि लोग कैसी-कैसी भूल करते हैं यह तो स्पष्ट दिखावें, और सच्चा तत्त्व कैसा है वह समझावें। यदि ऐसा न करे, कुमार्गका खण्डन न करे सत्य मार्गका स्थापन न करे तो जीव हितका मार्ग कैसे जाने अतः सत्य-असत्यकी पहिचान कराना उसमें किसीकी निंदाका प्रयोजन नहीं है। जीवके हितके लिये सत्य मार्गकी प्रसिद्धिका व असत्यके निषेधका भाव तो धर्मीको आता है। जहाँ धर्मकी निंदा हो, देव-गुरुकी निंदा हो—ऐसा प्रसंग धर्मात्मासे देखा नहीं जाता वे अपनी शक्तिसे उसे दूर करते हैं।

सभी धर्मात्माओंके उदयभाव समान नहीं होते; आत्मश्रद्धा सभी की समान हो परन्तु उदयभाव तो भिन्न-भिन्न प्रकारके होते

हैं। भूमिकाके अनुसार क्रोध-मानादि दोष होते हों—किन्तु उनकी मुख्यता करके धर्मात्माकी या जिनशासनकी निंदा न होने दे। अरे, वह तो धर्मात्मा हैं, जिनेश्वरदेवके भक्त हैं, आत्माके अनुभवी हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, मोक्षके साधक हैं-ऐसे गुणोंको प्रधान करके, परिणाममें कोई मन्दता हो गई हो तो उस दोषको गौण कर देते हैं, धर्मकी या धर्मात्माकी निंदा नहीं होने देते। अहा, यह तो पवित्र जैनमार्ग...अकेली वीतरागताका मार्ग, कोई अज्ञानी जनके निंदा करनेसे वह मलिन नहीं हो जाता। ऐसे मार्गकी श्रद्धामें सम्यग्दृष्टि जीव अत्यन्त निष्कंप रहते हैं; तीक्ष्ण असिधारके समान उनकी श्रद्धा मिथ्यात्वकी कुयुक्तिओंका खण्डन कर देती है, किसी भी युक्तिसे उनकी श्रद्धा चलित नहीं होती। ऐसे मार्गको जानकर जो धर्मी हुआ है-उस जीवमें यदि कोई सूक्ष्म दोष हो जाय तो उसके उपगूहनकी यह बात है। जहां गुण और दोष दोनों विद्यमान हो वहां उसमें गुणकी मुख्यता करके दोषको गौण करना वह उपगूहन है। परन्तु जिसके पास सच्चा मार्ग है ही नहीं और मिथ्यामार्गको ही धर्म मान रहे हैं, उनको जगतके हितके लिये प्रसिद्ध करें कि यह मार्ग असत्य है, दुःखदायक है अतः उसका सेवन छोड़ो, और परम सत्य वीतराग जैनमार्गको जानकर उसका सेवन करो। धर्मात्मा अपनेमें जैसे रत्नत्रयधर्मकी शुद्धि बढ़े वैसा उपाय करे। दुनियांसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं, मुझे तो मेरे आत्माकी शुद्धता वृद्धिगत हो और वीतरागता हो-वही प्रयोजन है, —ऐसी भावना पूर्वक धर्मात्मा अपनेमें धर्मकी वृद्धि करते हैं। इसे उपबृंहण गुण कहते हैं।

धर्मी जानते हैं कि मेरे गुण मेरेमें ही हैं; मेरी अनुभूतिमें मेरा आत्मा प्रसिद्ध हुआ है–इसको मैं स्वयं जानता हूँ, दुनियांको दिखानेका क्या काम है? क्या दुनियांके माननेसे मेरे गुणकी शुद्धि बढ़ती है? और दुनियांके न देखनेसे क्या मेरे गुणकी शुद्धि रुकती है?–नहीं, मेरा गुण तो मेरेमें है। कोई धर्मात्माके गुणोंकी जगतमें सहज प्रसिद्धि हो यह बात अलग है, परन्तु धर्मीको तो अपनेमें ही तृप्ति है, दुनियाँमें प्रसिद्धिकी कोई दरकार नहीं है। दुनियां स्वीकार करे तभी मेरा गुण सच्चा–ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है, और दुनियां स्वीकार न करे तो मेरे गुणको कोई नुकसान हो जाय-ऐसा भी नहीं है मेरे गुण मैंने दुनियांके पाससे तो नहीं लिये हैं, मेरे आत्मामेंसे ही गुण प्रगट किये हैं, अतः मेरे गुणमें दुनियांकी अपेक्षा मुझे नहीं है।—इस प्रकार धर्मी जगतसे उदास निजगुणमें निःशंक वर्तते हैं।

धर्मात्माको जातिस्मरणादि ज्ञान हो जाय, ज्ञानकी शुद्धताके साथ अनेक लब्धियाँ भी प्रगटें, अनेक मुनिवरोंको विशेष लब्धियाँ हो जाय, अवधि–मनःपर्ययज्ञान भी हो जाय,–किन्तु जगतको वह मालूम भी न हो, वे मुनि अपने आपमें आत्माकी साधनामें मशगूल वर्तते हैं। अपनी पर्यायमें अपने गुणोंकी प्रसिद्धि हुई (अनुभूति हुई) तब आत्मा स्वयं अपने आपसे ही संतुष्ट एवं तृप्त हो जाता है; अपने गुणके शांतरसको आप स्वयं ही वेदता है, वह दूसरेको दिखानेका क्या काम है? और दूसरे जीव भी ऐसी अन्तर्दृष्टिके बिना गुणको कैसे पहचानेगे? इस प्रकार धर्मी अपने गुणोंको अपनेमें गुप्त रखते हैं, और अन्य साधर्मीके

अवगुण भी गुप्त रखकर उन्हें दूर करनेका उपाय करते हैं। भाई किसीका अवगुण प्रसिद्ध हो इससे तुझे क्या लाभ? और उसके अवगुण प्रसिद्ध न हो उससे तुझे क्या नुकसान? जो करेगा वह भोगेगा,—अतः दूसरेके गुण-दोषका फल उसे ही है, उसमें तुझे क्या? इसलिये समाजमें धर्मकी निंदा न हो और प्रभावना हो, तथा गुणोंमें वृद्धि हो—उस प्रकार धर्मी प्रवर्तते हैं।

किसी भी तरह अपनेमें एवं परमें गुणकी वृद्धि हो और दोष दूर हो, आत्माका हित हो और धर्मकी शोभा बढ़े—इस प्रकार धर्मीका प्रवर्तन होता है। कोई साधर्मीजनसे कोई दोष हो गया हो और अपने ध्यानमें आ जाय तो उसको गुप्तरूपसे बुलाकर धर्मात्मा प्रेमसे समझाते हैं कि—देखो भाई! अपना जैनधर्म तो महान पवित्र है, महान भाग्यसे अपनेको ऐसा धर्म मिला है; उसमें तेरेसे इतना दोष हो गया, परन्तु इससे तुम घबड़ाना मत, तुम आत्माके श्रद्धा-ज्ञानमें दृढ़ रहना। जिनमार्ग महान पवित्र है, अत्यंत भक्तिसे उसकी आराधना करके तुम अपने सभी दोषोंको छेद डालना,—इसप्रकार प्रेमसे उसे धर्मका उत्साह बढ़ाकर उसके दोष दूर कराते हैं। दोषोंके छिपानेमे कहीं उसके दोषोंको उत्तेजन देनेका आशय नहीं है, परन्तु तिरस्कार करनेसे तो वह जीव निरुत्साह हो जाय और बाह्यमें भी धर्मकी निंदा होगी—अतः ऐसा न होने देनेका आशय है तथा गुणकी प्रीतिसे शुद्धिकी वृद्धिका हेतु है।—ऐसा धर्मीका उपगूहन तथा उपबृंहण-अंग है। इस अंगके पालनमें जिनेन्द्रभक्त एक सेठकी कथा पुराणमें प्रसिद्ध है, वह 'सम्यक्त्व-कथा' आदिमें से देख लेना। इस प्रकार सम्यक्त्वके पांचवें अंगका वर्णन हुआ।

६. स्थितिकरण-अंगका वर्णन

किसी कषायवश, रोगादिकी तीव्र वेदनाके वश, कुसंगसे, लोभसे या अन्य कोई प्रतिकूलताके प्रसंगमें धर्मी जीव श्रद्धासे या चारित्रसे डिग रहा हो या शिथिल हो रहा हो तो उसे प्रेमपूर्वक वैराग्य-उपदेशसे या अन्य अनेक उपायसे धर्ममें स्थिर करना, अपने आत्माको भी धर्ममें दृढ़ करना एवं अन्य साधर्मीको भी धर्ममें दृढ़ करना सो स्थितिकरण है। शरीरमें कोई तीव्र रोग आ जाय, व्यापारमें अचानक बड़ी नुकसानी हो जाय, स्त्री-पुत्रादिका मरण हो जाय, विषयोंमें मन चलित हो जाय, कोई तीव्र मान-अपमानका प्रसंग बने, उस समय अपने परिणामको शिथिल होता देखकर धर्मात्मा शीघ्र ही ज्ञान-वैराग्यकी भावनाके बलसे अपने आत्माको धर्ममें दृढ़ करे कि-अरे आत्मा! तेरेको यह क्या हुआ? ऐसा महा पवित्र रत्नत्रयधर्म पाकर ऐसी कायरता तुझे शोभा नहीं देती! तू कायर मत हो। अंतरमें जो शुद्ध आत्मस्वरूप परम महिमावंत देखा है उसकी बारम्बार भावना कर। संसारके दुर्ध्यानसे तो नरकादिके तीव्र दुःख तुमने अनन्तबार भोगे, अतः अब उस दुर्ध्यानको छोड़ो और चैतन्यकी भावना करो।-अनेक प्रकारके धर्म चिंतनसे अपने आत्माको धर्ममें स्थिर करे; तथा अन्य साधर्मीजनोंको भी अपना ही समझकर सर्व प्रकारकी सहायतासे धर्ममें स्थिर करे.-ऐसा भाव धर्मात्माको होता है। किसीको उपदेशके द्वारा धर्ममें उत्साहित करे, किसीको धनसे भी सहायता करे, किसीकी तनसे सेवा करे, किसीको धैर्य बंधावे, किसीको अध्यात्मकी

महान चर्चा सुनावे,—ऐसे सर्व प्रकारसे तनसे-मनसे-धनसे-ज्ञानसे धर्मात्माकी आपत्तिको दूर करके उसे धर्ममें स्थिर करता है। अरे, ऐसा मनुष्य अवतार और ऐसा जैनधर्म अनन्तकालमें मिला है ऐसे अवसरको यदि चूक जाओगे तो फिर अनन्तकालमें ऐसा अवसर मिलना कठिन है। इस समयमें जरासी प्रतिकूलताके दुःखसे डरकर यदि धर्मकी आराधनामें चूक जाओगे तो फिर संसार-भ्रमणमें नरकादिका अनन्त दुःख भोगना पड़ेगा, नरकादिके तीव्र दुःखके समक्ष यह प्रतिकूलता तो कुछ गिनतीमें नहीं है, अतः कायर होकर आर्त्त परिणाम न करो; वीर होकर धर्मध्यानमें दृढ़ रहो। आर्त्तध्यान करनेसे तो और भी दुःख बढ़ जायगा। संसारमें तो प्रतिकूलता होती ही है, अतः धैर्यपूर्वक धर्मध्यानमें दृढ़ रहो। तुम तो मुमुक्षु हो, धर्मके जाननेवाले हो, ज्ञानवान हो; इस प्रसंगमें दीन होकर धर्मसे डिग जाना तुझे शोभा नहीं देता, अतः वीरतापूर्वक आत्माको सम्यक्त्वादिकी भावनामें दृढ़तासे लगाओ। पहले अनेक महापुरुष पांडव, सीताजी इत्यादि हुए हैं। उन्हें स्मरण करके आत्माको धर्मकी आराधनामें उत्साहित करो। अतः अपने एवं परके आत्माको सम्बोधन करके धर्ममें स्थिर करते हैं, यह सम्यग्दृष्टिका स्थिति-करण-अंग है। प्रतिकूलता आने पर आप स्वयं धैर्य न छोड़े, और अन्य साधर्मीको भी घबराहट न होने दे—उन्हें भी धैर्य बंधावे। अरे, चाहे मरण भी आवे, या कितनी भी प्रतिकूलता आवे, परन्तु मैं कभी अपने धर्मसे चलायमान नहीं होऊँगा, आत्माकी आराधनाको नहीं छोड़ूंगा—ऐसे निःशंक दृढ़ परिणामसे धर्मी अपने आत्माको

धर्ममें स्थिर रखते हैं। कोई भय दिखावे, लालच दे, तो भी वह धर्मसे नहीं डिगते। जो मोक्षके साधक हुए हैं उनके आत्मपरिणाममें ऐसी दृढ़ता होती है।

सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्वादि निश्चयधर्ममें जितनी स्थिरता हुई उतना धर्म है, वह वीतरागभाव है; और दूसरे साधर्मीको धर्ममें स्थिर करनेका जो भाव है वह तो शुभराग है, वह धर्म नहीं है, किन्तु धर्मीको धर्मप्रेमका ऐसा भाव आता है। श्रेणिक राजाके पुत्र वारिषेणमुनिने अपने मित्रको मुनिधर्ममें स्थितिकरण किया था, उनकी कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है वह 'सम्यक्त्व-कथा' में आप पढ़ सकेंगे। इस प्रकार स्थितिकरण नामक छठवें अंगका वर्णन किया।

७. वात्सल्य-अंगका वर्णन

जिस प्रकार गायको अपने बछड़े पर किसी प्रकारकी आशाके बिना निरपेक्ष प्रेम होता है उसी प्रकार धर्मीको अन्य साधर्मी-जनोंके प्रति सहज ही प्रेम होता है। उन्हें अपना जानकर उन पर वात्सल्य आता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र धारक जीवोंके समूहको धर्मी जीव अपना हितैषी स्वजन मानते हैं। उनकी प्राप्ति होने पर मानों कोई महान निधान मिल गया है—ऐसी अत्यन्त प्रतीति उत्पन्न होती है। उनका आदर, उनके गुणोंकी स्तुति, आहार-पान सेवा आदिमें आनन्द मानना वह वात्सल्य अंग है। धर्मी जीव किसीको दिखानेके लिये कपटसे नहीं करते या किसी बदलेकी आशा नहीं रखते। परन्तु धर्मकी प्रीतिके कारण धर्मीको ऐसा प्रेम-भाव सहज आ जाता है। जिस वीतराग धर्मकी मैं साधना कर

रहा हूं उसी धर्मकी यह साधना कर रहे हैं, अतः यह मेरे साधर्मी हैं, मेरे साधर्मीको कोई दुःख न हो, उन्हें धर्ममें कोई विघ्न न हो,—इसप्रकार साधर्मीके प्रति वात्सल्य होता है। यद्यपि राग तो है परन्तु उस रागकी दिशा संसारकी ओरसे पल्टकर धर्म सन्मुख हो गई है। संसारमे स्त्री-पुत्र-धन आदिका राग वह तो पाप-बंधका कारण है, और साधर्मीके प्रति धर्मानुरागमें तो धर्मकी भावनाका पोषण होता है। अन्तरंगमें तो धर्मीको अपने शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप आत्मामें परम प्रीति है; उसे ही वह अपना स्वरूप जानता है; वह परमार्थ वात्सल्य है और व्यवहारमें रत्नत्रयके धारक अन्य साधर्मी जीवोंको अपना समझकर उन पर परम प्रीतिरूप वात्सल्य आता है। धर्मात्मा पर आये हुए दुःखको धर्मी देख नहीं सकते। इस प्रकारसे उनका दुःख मिटानेका उपाय करते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीवको किसी भी जीवके प्रति वैरभाव नहीं होता, तो फिर धर्मीके प्रति ईर्षा कैसे हो? दूसरे जीव अपनी अपेक्षा आगे बढ़ जायें वहाँ उसे द्वेष नहीं होता परन्तु अनुमोदना और प्रेम आता है। साधर्मीको एक-दूसरेके प्रति प्रेम होता है,—कैसा प्रेम? माँ को अपने पुत्र पर प्रेम हो वैसा निर्दोष प्रेम, गायको अपने बछड़े पर प्रेम होता है वैसा निस्पृह प्रेम धर्मीको साधर्मीके प्रति होता है। अभी इनके दुःखमें मैं सहायता करूँगा, तो भविष्यमें किसी समय यह मुझे काममे आयेंगे-ऐसी बदलेकी भावना नहीं रखते। परन्तु धर्मके सहज प्रेमवश निस्पृह भावसे धर्मीके प्रति वात्सल्य रखते हैं।

जिस प्रकार माता अपने पुत्रका दु:ख देख नहीं सकती, हिरनी अपने बच्चेके प्रेम वश उसकी रक्षा हेतु सिंहके सन्मुख जाती है। सच्ची माताके प्रेमकी एक बात आती है कि एक बालकके लिये दो स्त्रीयोंमें झगड़ा हुआ। न्यायधीशने (सत्यकी परीक्षा हेतु) बालकके दो टुकड़े करके दोनोंको एक-एक देनेकी आज्ञा दी। यह सुनते ही सच्ची माता तो जोरसे रोने लगी, पुत्रकी रक्षा हेतु उसने कहा—इसे ही बालक दे दीजिये। मुझे नहीं चाहिये। उदाहरणमेंसे केवल इतना लेना है कि सच्ची माता पुत्रका दु:ख देख नहीं सकती, उसका वास्तविक प्रेम उमड़ पड़ता है। प्रद्युम्नकुमार १६ वर्षकी अवस्थामें जब घर पधारे तब रुक्मिणी माताको हृदयमें वात्सल्यकी धारा उमड़ पड़ी थी। उसी प्रकार साधर्मीका प्रेम वास्तविक प्रसंग पर छिपा नहीं रहता। सम्यग्दृष्टिको सम्यग्दृष्टिके प्रति अन्तरमें प्रेम होता है; उन्हें देखते ही, उनकी बात सुनते ही प्रेम आता है। जिसे धर्मके प्रति प्रेम होता है उसे धर्मीके प्रति प्रेम होता ही है, क्योंकि धर्म और धर्मी कहीं भिन्न नहीं हैं। [-न धर्मो धार्मिकैः विना।]

यह तो सम्यग्दर्शन सहित आठ अंगकी बात है; परन्तु इसके पूर्व भी धर्मके जिज्ञासुको धर्मके प्रति वात्सल्य, धर्मात्माका बहुमान आदि भाव होते हैं। मोक्षका सच्चा कारण तो अन्तरमें परद्रव्यसे भिन्न अपने आत्माकी रुचि और ज्ञान करना है। सम्यग्दर्शनके बिना शुभभावसे मोक्षमार्ग नहीं होता। सम्यग्दर्शनके बाद भी जो राग है वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो सम्यग-

दर्शनादि वीतरागभाव ही है। जहाँ रागकी भूमिका है वहाँ ऐसे वात्सल्यादि भाव अवश्य आते हैं।

८. प्रभावना–अंगका वर्णन

जिनमार्ग द्वारा अपने ज्ञानानन्दस्वभावी आत्माको जानकर उसकी 'प्र–भावना' उत्कृष्ट भावना तो धर्मी करते ही हैं, और व्यवहारमें भी ऐसे जिनमार्गकी महिमा जगतमें कैसे प्रसिद्ध हो और संसारी जीव धर्म कैसे प्राप्त करें—ऐसी प्रभावनाका भाव धर्मीको होता है। वह अपनी पूर्ण शक्तिसे, ज्ञान–विद्या–वैभव–तन–मन–धन–दान–शील–तप आदिसे धर्मकी प्रभावना करता है। किसी विशेष शास्त्र द्वारा, तीर्थ द्वारा, उत्तम जिनमन्दिर द्वारा तथा अनेक महोत्सवों द्वारा भी प्रभावना करता है, वर्तमानमें तो जीवोंको सच्चा तत्त्वज्ञान प्राप्त हो—ऐसी प्रभावनाकी विशेष आवश्यकता है। कुन्दकुन्दाचार्यदेवने समयसार आदि अध्यात्मशास्त्रोंकी रचना द्वारा जिनशासनकी महान प्रभावना की है, और लाखों जीवों पर उपकार किया है। समंतभद्रस्वामी, अकलंकस्वामी आदिने भी जैनधर्मकी महान प्रभावना की है।

धर्म पर संकट आये वहाँ धर्मी जीव बैठा नहीं रहता। जिस प्रकार शूरवीर योद्धा युद्धमें छिपा नहीं रहता, उसीप्रकार धर्मात्मा धर्मप्रसंगमें छिपता नहीं है, धर्मप्रभावनाके कार्योंमें वह उत्साहसे अपने आप भाग लेता है। देव–गुरु–शास्त्रके कार्योंमें, तीर्थोंके कार्यमें या साधर्मीजनोंके कार्यमें अपनी शक्ति अनुसार

उमंग पूर्वक वर्तता है। ऐसा शुभभाव धर्मीको होता है, तथापि उसकी मर्यादा भी जानता है कि यह राग है, वह कहीं मुझे मोक्षका साधन नहीं है। राग द्वारा मुझे तथा दूसरोंको लाभ नहीं है। इसलिये उसे रागकी भावना नहीं परन्तु वीतरागमार्गकी प्रभावना और पुष्टिकी ही भावना होती है। अहा, ऐसा सुन्दर वीतराग-मार्ग! और ऐसे मार्गकी साधना करनेवाले यह मेरे साधर्मी भाई! इसप्रकार अपने साधर्मो भाई–बहिनोंके प्रति उमंग आती है। वह साधर्मीका अपवाद नहीं होने देता। वाह, देखो तो सही! अन्तर-दृष्टि पूर्वक वीतरागमार्गमें व्यवहारका भी कितना विवेक है। जो अन्तरमें यथार्थ मार्गकी प्रतीति करे उसे ही ऐसा व्यवहार समझमें आता है। सम्यक्त्वके इन आंठ अंगों द्वारा धर्मी जीव अपनेमें वीतरामार्गकी पुष्टि करते हैं और सर्व प्रकारसे उसकी प्रभावना करते हैं। प्रभावना–अंगके लिये वज्रमुनिका उदाहरण शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार सम्यक्त्वके आठ अंग कहे। ऐसे आठ गुणों सहित शुद्ध सम्यक्त्वकी आराधना करो और उनसे विरुद्ध शंकादि आठ दोषोंका त्याग करो।

सम्यग्दृष्टिको ही मार्गकी सच्ची प्रभावना होती है। जिसने धर्मका सच्चा स्वरूप जाना है वही उसकी प्रभावना कर सकता है, जो धर्मको पहिचानता ही नहीं वह प्रभावना किसकी करेगा? अहा, जिनमार्ग कोई अद्भुत अलौकिक है, इन्द्र–चक्रवर्ती और गणधर भी जिसका भक्तिसे आदर करते हैं—ऐसे वीतरागमार्गकी क्या बात! ऐसा मार्ग और उसका आदर करनेवाले साधर्मियोंका

योग मिलना बहुत दुर्लभ है है। ऐसे मार्गको प्राप्त कर अपना हित कर लेना चाहिए। जितना रागभाव है उसे धर्मी अपने स्वात्मकार्यसे भिन्न जानता है, और निश्चय सम्यक्त्वादि वीतरागभावको ही स्वधर्म जानकर उसका आदर करता है। धर्मका ऐसा स्वरूप समझकर उसकी प्रभावना करता है। जो केवल व्यवहारके शुभ विकल्पोंको ही धर्म मान लेते हैं, और राग रहित निश्चय धर्मको समझते ही नहीं, उन्हें तो अपनेमे किंचित् धर्म नहीं होता, अर्थात् सच्ची धर्मप्रभावना भी उन्हें नहीं होती। अपनेमें धर्म हो तो उसकी प्रभावना करे न? यहां तो अन्तरमें अपने शुद्धात्माका अनुभव करके निश्चयधर्म सहितके व्यवहारकी बात है। अरे, वीतरागके सत्यमार्गको भूलकर अज्ञान द्वारा कुमार्गके सेवन द्वारा जीव अपना अहित कर रहे हैं, वे ज्ञान द्वारा सच्चा मार्ग प्राप्त करें और अपना हित करें—ऐसी भावनासे धर्मी जीव ज्ञानके प्रचार द्वारा सत्यधर्मकी प्रभावना करते हैं, सत्यमार्गको स्वयंने जाना है अतः उसकी प्रभावना करते हैं।

आत्मा परद्रव्योंसे भिन्न, शान्त-वीतराग-चिदानन्दस्वभावरूप है, उसे पहिचानकर उसमें "यही मैं हूँ" ऐसा जो भाव है वह निश्चय सम्यग्दर्शन है।

शरीर-मन-वाणी तथा राग-द्वेषसे पार होकर, अन्तरमें अपने शुद्ध एकत्वस्वरूपमें स्वसन्मुख दृष्टि करने पर सम्यग्दर्शन होता है, वह मोक्षमहलकी प्रथम सीढ़ी है, वहींसे मोक्षमार्गरूप धर्मका प्रारम्भ होता है। जन्म-मरणके नाशके उपायमें प्रथम ही सम्यग्दर्शन है;

इसके अतिरिक्त समस्त जानपना और समस्त क्रियाएँ निरर्थक हैं। किसी पुण्यसे–शुभरागसे ऐसा सम्यग्दर्शन नहीं होता; अन्तरमें शुद्ध-तत्त्व है उसे ज्ञानमें–अनुभवमें लेकर निःशंक श्रद्धा करने पर सम्यक्-दर्शन प्रगट होता है। ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शनके साथ सच्चे देव–गुरु-धर्मकी तथा नव तत्त्वकी पहिचान करायी है तथा निःशंकितादि आठ गुण आदि व्यवहार कैसा होता है वह बतलाया है। ऐसा जानकर मुमुक्षु जीवोंको आठ अंग सहित शुद्ध सम्यक्त्वको धारण करना चाहिए।

[आठ अंगका स्वरूप व उनकी आठ सुन्दर कथाएँ पढ़नेके लिये 'सम्यक्त्वकथा' नामकी सचित्र पुस्तिका पढ़िये।]

हे जीव! लाखों बातोंमें साररूप यह एक ही बात है कि संसारके सभी द्वंद्व–फंदको तोड़कर, आत्महितके लिये अंतरमें निजात्मस्वरूपका चिंतन करो।

सम्यग्दृष्टिका पच्चीस दोषसे रहितपना

परद्रव्योंसे भिन्न अपने शुद्ध आत्माकी प्रतीति करके जिसको सम्यग्दर्शन हुआ है, जो मोक्षमार्गी हुआ है-ऐसे सम्यग्दृष्टि धर्मात्माका यह वर्णन है। उस सम्यग्दृष्टिको निःशंकतादि आठ अंग होते हैं, और उनसे विरुद्ध ऐसे शंकादि आठ दोष नहीं होते-उसका वर्णन किया, अब आठ मद वगैरह दोष भी नहीं होते-उनका कथन करते हैं—

[गाथा १३ उत्तरार्द्ध तथा १४]

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूपको मद न ज्ञानको, धन-बलको मद भानै॥ १३।
तपको मद न मद जु प्रभुताको, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो यही दोष वसु, समकितको मल ठानै॥
कुगुरु-कुदेव-कुवृष सेवककी नहीं प्रशंस उचरे है।
जिन-मुनि-जिनश्रुत विन कुगुरादिक तिन्हें न नमन करे है॥१४॥

सम्यक्त्वके पच्चीस दोष हैं, यह दोष सम्यग्दृष्टि जीवको नहीं होते-उनका यह वर्णन है।

(१ से ८) शंकादि आठ दोषः-पहले निःशंकता, निष्कांक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना—ये आठ गुण कहे थे, उनसे विरुद्ध ये आठ दोष हैं—शंका,

कांक्षा, दुर्गंच्छा, मूढ़ता, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य और अप्रभावना—ये दोष सम्यग्दृष्टिको नहीं होते।

(१) सम्यग्दृष्टि जीव जिनमार्गमें कभी सन्देह नहीं करता।

(२) धर्मके फलमें संसार–भोगकी वांछा नहीं करता।

(३) शरीरादि कैसा भी हो किन्तु धर्मात्माके गुणोंके प्रति वह कभी घृणा नहीं करता।

(४) सच्चे देव–गुरु–धर्म कैसे हैं? सत्यमार्ग कैसा है और कुमार्ग कैसा है—उसका विवेक करनेमें उसे उलझन नहीं होती; अच्छी तरह पहचानकर वह सत्यमार्गका आदर करता है, कुमार्गको छोड़ता है।

(५) अपने गुणोंकी बाह्यमें प्रसिद्धि नहीं चाहता, और अन्य धर्मात्माका कोई दोष देखकर उसकी निंदा नहीं करता, परन्तु दोषको ढककर युक्तिसे दूर करता है और धर्मकी वृद्धि करता है।

(६) आप या अन्य साधर्मी धर्म मार्गसे डिग जाय—ऐसा स्थिर कभी नहीं करता, किन्तु स्व-परको धर्ममार्गमें दृढ़ करके करता है।

(७) ऐसा नहीं करता कि जिससे धर्मका या धर्मात्माका अपवाद हो, किन्तु वात्सल्यपूर्वक उनकी प्रशंसा व आदर करता है।

(८) लोकमें जैनधर्मकी निंदा हो—ऐसा कभी नहीं करता, किन्तु धर्मकी प्रभावना हो और उसकी महिमा प्रसिद्ध हो—ऐसा करता है।

—इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव शंकादिक आठ दोष रहित और निःशंकतादि आठ गुण रहित सम्यक्त्वकी आराधना करता है। तदुपरान्त आठ मद भी उसे नहीं होते।

(९ से १६) आठमद-कुलमद, जातिमद, रूपमद अर्थात् शरीरमद, विद्यामद अर्थात् ज्ञानमद, धनमद अर्थात् ऋद्धिमद, बलमद, तपमद और अधिकारमद अर्थात पूजामद, ऐसे आठ प्रकारके मदरूप आठ दोष सम्यग्दृष्टिको नहीं होते।

(१७ से २२) छह अनायतनः-कुदेव उसका सेवक, कुगुरु, उसका सेवक, कुधर्म उसका सेवक—ये छहों धर्मके लिये अस्थान हैं इसलिये वे अनायतन हैं, उनमें धर्म नहीं होता, धर्मी जीव उनका सेवन तो नहीं करता, और उसकी प्रशंसा भी मनसे वचनसे या कायसे नहीं करता। इस प्रकार छह अनायतकी प्रशंसारूप छह दोष सम्यग्दृष्टिके नहीं होते।

(२३ से २५) तीन मूढ़ताः-मूढ लोकोंमें देवके नाम पर, गुरुके नामपर व शास्त्रके नामपर अनेक विपरीत रूढियां चलती हैं, परन्तु धर्मी जीव देव-गुरु-शास्त्र संबंधी कोई मूढ़ताका सेवन नहीं करताः वीतरागमार्गके जिनेश्वरदेव, रत्नत्रयधारक निर्ग्रंथ जिनमुनि, और उनके द्वारा उपदिष्ट वीतरागतापोषक जिनशास्त्र, उनको ही सत्य मानता है, उनके ही आदर-सत्कार, नमस्कार-प्रशंसा करता है। उनके सिवाय अन्य कोई भी कुदेव-कुदेव-कुशास्त्रको स्वप्नमें भी नहीं मानता, न उन्हें नमस्कारादि भी करता है। इसप्रकार तीन मूढतारूप तीन दोष सम्यग्दृष्टिके नहीं होते।

शंकादिक आठ दोष, आठ मद, छह अनायतन, तथा तीन मूढता —ये पच्चीस दोषोंको छोड़कर, निःशंकतादि आठगुणसहित सम्यग्दर्शनको हे भव्य जीवों ! तुम भक्तिपूर्वक धारण करो। यह मोक्षका मूल है।

सम्यग्दृष्टिको अपने अचिन्त्य चैतन्यवैभवके समक्ष जगतमें अन्य किसीकी महानता प्रतीत नहीं होती, इसलिये उसे कोई मद नहीं होता। इसप्रकार उसे आठ मदका अभाव होता है, उनका वर्णन यहाँ करते हैं—

(१-२) कुलमद तथा जातिमदः—पिताके पक्षको कुल तथा माताके पक्षको जाति कहते हैं; लेकिन माता-पिता तो इस जड़ शरीरके सम्बन्धी हैं, उनकी महत्तामें अभिमान क्या ? मैं तो शरीरसे भिन्न चैतन्यमूर्ति हूँ; माता-पिताके कारण कहीं मेरा बड़प्पन नहीं है। माता किसी बड़े परिवारकी हो या पिता कोई बड़े राजा-महाराजा हों उनके कारण धर्मी अपना बड़प्पन नहीं मानता, अर्थात् उसे जातिमद या कुलमद नहीं होता। अरे, हमारी जाति तो चैतन्यजाति है, देहकी जाति हमारी है ही नहीं, फिर उसका मद कैसा ? मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मेरे ज्ञानस्वरूप आत्माको किसीने उत्पन्न नहीं किया है फिर मेरी जाति-कुल कैसा ? चैतन्य मेरी जाति और ज्ञान-दर्शनस्वभाव ही मेरा कुल है। इसप्रकार धर्मीको पिता या पुत्रादि कोई महान हों तो उनका बहुमान उसे नहीं होता, उसी प्रकार पिता आदि दरिद्र हों तो उनसे उसे दीनता नहीं होती। वह तो इन समस्त संयोगोंसे अत्यन्त भिन्न चैतन्यस्वरूप ही अपनेको

देखता है। अरे, मेरे चैतन्यकी अधिकतासे दूसरा कौन अधिक है–कि जिसका मैं गर्व करूँ? मेरे चैतन्य–प्रकाशके सन्मुख चक्रवर्ती-पद भी निस्तेज प्रतीत होता है, उसमें मेरा बड़प्पन नहीं है। चक्रवर्तीपद तो रागका फल है। कहाँ अनन्त गुणमय चैतन्यपद और कहाँ विकारका फल! जिसने परमेश्वरकी जातिरूप अपनेको देखा है, उसे अब कौनसी कमी रह जाती है कि बाह्यमें शरीरकी जाति आदिमें अपनापन माने? चैतन्यकी जातिके समक्ष जड़ शरीरकी जातिका अभिमान कैसा? शरीर मैं हूँ ही नहीं, मैं तो चैतन्य हूँ–ऐसी सम्यक् प्रतीतिमें धर्मीको शरीरादि सम्बन्धी मद नहीं होता। मिथ्यात्वरूप दोष तो धर्मीको होते ही नहीं और सम्यक्त्वके अतिचार रूप दोषोंको वह दूर करता है, उसका यह उपदेश है। निश्चय सम्यग्दर्शनके साथ ऐसा शुद्ध व्यवहार होता है कि उसमें किंचित् भी अतिचार लगे तो वह दोष है–ऐसा समझकर उसका त्याग करना चाहिये। धर्मके स्थान तो वीतरागी अरिहन्तदेव, निर्ग्रंथ मुनिराज तथा वीतरागी शास्त्र हैं, उनमें धर्मी जीव शंका करते ही नहीं तथा उनसे कोई विपरीत हो तो उन्हें किसी भी प्रकार ग्रहण नहीं करते। प्राण जायें या कितनी भी प्रतिकूलता आये तो भी वीतरागी देव–गुरुकी श्रद्धा नहीं छोड़ते। इसलिये उनके सम्यक्त्वमें शंकादि दोष नहीं होते।

संसारमें परिभ्रमण करता हुआ जीव शुभाशुभ कर्मवश उच्च कुल तथा नीच कुलमें अनन्तबार अवतार धारण कर चुका है, यह तो क्षणिक संयोग है। शाश्वत आत्माको इस अवतारका अभिमान क्या?

अवतार धारण करना यह तो शर्म है। उच्च कुल प्राप्त करनेका फल यह है कि रत्नत्रयके उत्तम आचरण द्वारा आत्माको मोक्ष-मार्गमें लगाना और मिथ्यात्वादि पापोंके अधम आचरणको छोड़ना। उच्च कुलमें अवतार धारण करके भी यदि अभक्ष्य भक्षण आदि निंद्य कार्य करे तो नरकमें ही जाता है; कहीं उच्च कुल नरकमें जानसे रोक नहीं सकता, ऐसा विचार कर धर्मी जीव कुल तथा जातिमदको छोड़ते हैं।

❖ एक वैरागी बालक अपनी मातासे दीक्षा लेनेकी आज्ञा माँगता है।

❖ तब उसकी माता कहती है कि-बेटा! मैं तुझे दीक्षाकी आज्ञा तो देती हूँ;-परन्तु एक शर्त है!

❖ पुत्र कहता है-माताजी! कहिये, आपकी क्या शर्त है? चाहे जैसी कड़ी शर्त हो फिर भी मैं अवश्य पूरी करूँगा।

❖ माता कहती है कि-दीक्षा लेनेके बाद आत्मसाधना ऐसी करना कि तुझे अब दूसरी माता न करनी पड़े अर्थात् मैं तेरी अन्तिम माता बनूँ।-इस शर्तके साथ मैं तुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति देती हूँ।

❖ पुत्र कहता है-माताजी, मैं अप्रतिहत साधना करके अवश्य केवलज्ञान प्राप्त करूँगा और पुनः इस संसारमें जन्म धारण नहीं करूँगा, दूसरी माता मैं नहीं बनाऊँगा।

देखो, संसारमें माताके उदरसे जन्म लेना भी एक कलंक है, उसका मद क्या? चैतन्यमूर्ति अशरीरी भगवानकी पहिचान माता-पिताके सम्बन्धसे कराना पड़े वह तो शर्म है। जिन्होंने अशरीरी

चैतन्यतत्त्व अनुभवमें लिया उन्हें माता-पिता सम्बन्धी मद नहीं होता। इसप्रकार धर्मीको जातिमद तथा कुलमदका अभाव है

(३) रूप मदः—शरीरके रूपका गर्व सम्यग्दृष्टि जीवको नहीं होता। आत्माका रूप तो ज्ञान है। धर्मी जीव शरीरसे भिन्न अपनेको ज्ञानरूपसे देखता है। इस शरीरका रूप मेरा नहीं, यह तो एक क्षणमें नाशको प्राप्त होता है तथा सड़ जाता है-इसका गर्व कौन करे? इस तरह धर्मीको सुन्दरताका गर्व नहीं होता, तथा किसी गुणवानका शरीर कुरूप-काला, कुबडा हो तो उसके प्रति तिरस्कार भी नहीं है। सुन्दर मनुष्य भी यदि पापकार्य करे तो दुर्गतिमें जाता है, इसलिये शरीरकी सुन्दरतासे कहीं आत्माको शोभा नहीं है। सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ वही आत्माका सच्चा महान श्रेष्ठ आभूषण है, इससे आत्मा तीन लोकमें शोभायमान होता है।

अपने आत्माको शरीरसे भिन्न जाना है इसलिये शरीर रूपवान हो तो उसके द्वारा अपनी महत्ता प्रतीत नहीं होती, और शरीर कुरूप हो तो दीनता भी नहीं होती। क्योंकि वह जानता है कि यह रूप तो जडका है, वह रूप मेरा नहीं है, फिर उसका अभिमान क्या? मेरा चैतन्यरूप है, चैतन्यके रूपसे उच्च जगतमें कोई नहीं है। वीतरागी चैतन्यरूप द्वारा ही मेरी शोभा है। शुभराग भी मेरे रूपसे कुरूप है, और शरीरका रूप तो पुद्गलकी रचना है। ऐसी प्रतीति होनेसे धर्मीको रूपका मद नहीं होता।

(४) विद्यामद अर्थात् ज्ञानमदः—कोई विद्या आती हो या शास्त्रज्ञान हो, तो उसका घमंड धर्मीको नहीं होता। अहा, कहाँ

परम अतीन्द्रिय केवलज्ञान और कहाँ यह अल्पज्ञान ! केवलज्ञानके अचिंत्य सामर्थ्यके निकट तो यह ज्ञान अनन्तवें भागका है। चैतन्य-विद्याका समुद्र जिसने देखा उसे गड्ढे जितने ज्ञातृत्वकी महिमाका मद नहीं होता, यह तो जो ज्ञानी हैं और जिन्हें विशेष ज्ञानविद्या प्रगट हुई है, तथापि उसका मद नहीं–उनकी बात है। जो अज्ञानी हैं और विशेष ज्ञानादि न होने पर भी शास्त्रादिके अल्प ज्ञानमें जो अधिक मद करते हैं उन्हें तो आत्माके अपार ज्ञानसामर्थ्यकी खबर ही नहीं है, वे तो अल्प ज्ञातृत्वमें ही अटक जाते हैं। भाई ! तेरे ऐसे इन्द्रियज्ञानका मोक्षमार्गमें कोई महत्व नहीं है। यह इन्द्रियज्ञान तो क्षणिक विनाशी है। आत्माकी केवलज्ञानविद्याके पास १४ पूर्वका ज्ञान भी अनन्तवें भागका है, तो तेरे बाह्य अभ्यासकी क्या गिनती ? १४ पूर्वमें तो अगाध ज्ञान है, वह तो भावलिंगी मुनिको ही होता है। धर्मीको शास्त्राभ्यास आदि हो तथापि उसकी मुख्यता नहीं, उसको तो ज्ञानचेतना द्वारा अन्तरमें अपने आत्माके अनुभवकी ही मुख्यता है। चैतन्यस्वभावको ज्ञानस्वभावमें एकाग्र किये बिना सारी पढ़ाई व्यर्थ है। धर्मीको कदाचित् अन्य जानकारी कम हो, परन्तु अंतरमें ज्ञानचेतना द्वारा सम्पूर्ण भगवान आत्माको जान लिया है—उसमें सब कुछ आ गया।

थोड़ीसी जानकारी हो वहाँ तो हमें सब कुछ आता है और दूसरोंको नहीं आता–ऐसी अभिमानबुद्धिसे अज्ञानी दूसरे धर्मात्माका अनादर कर देते हैं। केवलज्ञान विद्याका स्वामी आत्मा कैसा है उसकी उसे खबर नहीं इसलिये वह इन्द्रियज्ञानमें मग्न हो रहा है।

केवलज्ञानस्वभावको जाने तो इन्द्रियज्ञानका अभिमान न हो। इन्द्रिय-ज्ञान तो पराधीन ज्ञान है, उसका उत्साह क्या?

वीतरागी श्रुतका ज्ञान तो वीतरागका कारण है, वह मानादि कषायका कारण क्यों हो? इसलिये जैनधर्मके ऐसे दुर्लभ ज्ञानको प्राप्त करके आत्माको मानादि कषायभावोंसे छुड़ाना और ज्ञानके परम विनयपूर्वक संसारके अभावका उद्यम करना।—इसप्रकार जो अपने ज्ञानको मोक्षमार्गमें लगाते हैं उन धर्मीको ज्ञानमद या विद्या-मद नहीं होता।

अरे, मेरा चैतन्य भगवान मैंने अपनेमें देखा है, उसकी पूर्ण परमात्मदशाके निकट अन्य किसका अभिमान करूँ? कहाँ सर्वज्ञदशा, कहाँ मुनियोंकी वीतरागी चारित्रदशा और कहाँ मेरी अल्पदशा? स्वभावसे पूर्ण परमात्मा होनेपर भी जब तक केवलज्ञानको प्राप्त न करूँ तबतक मैं छोटा ही हूँ—इसप्रकार दृष्टिमें प्रभुता और पर्यायमें पामरता—दोनोंका धर्मीको विवेक है।

(५) धनमद अथवा ऋद्धिका मदः—अन्तरमें अपना चैतन्यवैभव जिसने देखा है ऐसे धर्मात्मा बाह्य वैभवको अपना नहीं मानते, तो फिर उसका मद कैसा? समुद्र जैसा पूर्णानन्द अपनेमें तरंगित है ऐसी जहाँ प्रतीति हुई वहाँ अन्य सर्वत्रसे मद उड़ जाता है। माता-पिता-धन-शरीर-पुत्र-राजपथ-प्रधानपद यह तो सब कर्मकृत हैं, इनका अभिमान क्या? जिसने राग और पुण्यसे अपने चैतन्यमूर्ति आत्माका भिन्न अनुभव किया है उसे राग या पुण्यफलका अभिमान क्या? यह तो सब कर्मसामग्री है, उसमें

कहीं मेरा धर्म नहीं है। जिन्हें धर्मकी प्रतीति हुई है उन्हें कर्म-सामग्रीमें अपनापन क्यों रहेगा? कर्मसामग्रीद्वारा पुण्यके फल द्वारा) जिसे अपनी महत्ता प्रतीत होती है उसे कर्मसे भिन्न अपना चैतन्य-वैभव दृष्टिगोचर नहीं हुआ। धर्मी जानता है कि यह वैभव मेरा नहीं है, यह तो उपाधि है। मेरे आत्माका वैभव तो केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयसे भरपूर अक्षय-अखण्ड-अविनाशी है। माता-पिता महान हों या बाह्यमें अटूट पुण्य-वैभव हो, उसमें मुझे क्या? वह तो सब कर्मकी सामग्री है; वह मेरी जाति नहीं है, हम तो सिद्ध भगवंतोंकी जातिके तथा तीर्थंकरोंके वंशज हैं; उनके मार्गपर चलनेवाले हैं। सिद्ध और तीर्थंकर भगवन्तों जैसे ही आत्मवैभवके हम स्वामी हैं। हमारा आत्मा चैतन्यदेव है, वही हमारी महानता है। यह चैतन्यदेव स्वयं महिमावन्त तथा जगतमें सर्व श्रेष्ठ है, इसके अतिरिक्त जगतमें अन्य किसी पदार्थ द्वारा हमें अपनी महानता भासित नहीं होती। चैतन्यका ऐश्वर्य जिसने नहीं देखा वह किसी न किसी परके बहाने मिठास लेता है। जैसे निबौरीको एकत्र करके ऐसा माने कि मेरे पास कितना वैभव है! वह तो बालक है, राजा ऐसा नहीं करता। उसी प्रकार बाह्यमें पुण्य वैभव तो निबौरी जैसे कड़वे विकारके फल हैं, बालबुद्धि अज्ञानी उसे अपना वैभव मानते हैं, परन्तु राजा जैसा सम्यग्दृष्टि जिसने अपने सच्चे चैतन्यनिधानको अपनेमें देखा है—वह कभी पुण्यफलके द्वारा अपनी महानता नहीं समझता उसे तो वह धूलके ढेर समान पुद्गल पिंड मानता है।

भरत चक्रवर्तीको छह खण्डका राज्य वैभव था; तथापि वे

जानते थे कि हमारे चैतन्यके अखण्ड वैभवके अतिरिक्त एक रजकण भी हमारा नहीं है। हम उसके स्वामी नहीं हैं। हम छह खण्डके स्वामी नहीं हैं, परन्तु अखण्ड आत्माकी अनुभूतिके स्वामी हैं। इस प्रकार वे चैतन्यकी अनुभूतिमें बाह्यवैभवका स्पर्श भी नहीं होने देते थे। अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा आत्मसम्पदाके अचित्य वैभवका स्वसंवेदन जिसने किया, उसे जड़ था विकारके फलका अभिमान कहांसे रहे? इसप्रकार धर्मीको धनमद नहीं होता; उसी प्रकार कोई अन्य धर्मात्मा-गुणवान जीव अशुभ कर्मके वश दरिद्र हो, तो उसके प्रति उसको अवज्ञा या तिरस्कारबुद्धि नहीं होती। अरे, आत्माके चैतन्यनिधानके निकट जगतके वैभवको तुच्छ-सड़े हुए तृण समान समझकर, उसे क्षणभरमें छोड़कर, चैतन्यके केवलज्ञान-निधानको साधनके लिये अनेक मुमुक्षु जीव मुनि होकर वनमें चले गये। अज्ञानी जीव उस धनादि जड़ सामग्रीके समक्ष अपने सुखकी भीख मांगते हैं। ज्ञानी तो उसका त्याग करके अपने चैतन्य-सुखकी साधना करते हैं। अज्ञानीको पुण्यकर्मके उदयसे धनादि सामग्री मिले, वहाँ तो उसे अभिमान हो जाता है कि मैं कितना बड़ा हो गया हूँ। अरे, भाई! अपने इस अभिमानको छोड़ दे, और अपने चैतन्यनिधानको देख। आत्माकी चैतन्य-सम्पदाके सन्मुख तेरी इस जड़ विभूतिका क्या मूल्य है।

देखो तो सही, सन्तोंने आत्माके वैभवका कैसा वर्णन किया है। ऐसा वैभव अन्तरमें है, वह बताया है; ऐसे वैभव वाले अपने आत्माको जहाँ अनुभवमें लिया वहाँ धर्मीको बाह्यधन आदि वैभवका मद नहीं रहता।

(६) बलमद:—यह शरीर ही मैं नहीं हूँ, तो उसके बलका अभिमान कैसा? मेरा आत्मा अनन्त चैतन्य बलका धारक है; उसकी प्रतीति तो हुई है; उसकी आराधनामें ध्यान द्वारा ऐसा एकाग्र होऊँ कि चाहे जैसे उपसर्ग-परिषह आने पर भी चलायमान न होऊँ.—ऐसी वीतरागी क्षमा दशा प्रगट करूँ वही आत्माका सच्चा बल है। शारीरिक बल कहीं आत्माको साधनेमें काम नहीं आता।

यद्यपि तीर्थंकरोंको शारीरिक बल भी दूसरोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट होता है, परन्तु अन्तरमें चैतन्य शक्तिकी प्रतीतिमें वे अपनेको देहसे भिन्न जानते हैं। भरत और बाहुबली दोनों भाई आपसमें लड़े, तथापि किसीको अपने शरीरका मद नहीं था। दोनोंके अन्तरमें भेदज्ञानका कार्य चल रहा था। युद्धकी क्रिया हुई इसलिये देहके साथ एकत्वबुद्धि होगी—ऐसा रंचमात्र भी नहीं है। सहज अभिमान आया, लेकिन अंतरकी चैतन्यपरिणति उस अभिमानसे भिन्न ही कार्य कर रही थी; उसे ज्ञानी ही पहिचानते हैं।

भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे; उनके बलमें जब अमुक सैनिकोंने शंका की, तब बल प्रदर्शनका विकल्प उठते ही भरत राजाने अपनी अँगुली टेढ़ी कर दी, और सैनिकोंसे कहा कि मेरी यह अँगुली टेढ़ी हो गई है इसे सीधी कर दो। सैनिकोंने बहुत जोर लगाया, परन्तु अँगुलीको सीधा न कर सके। अन्तमें एक साँकल अँगुलीके साथ बाँधकर ९६ करोड़ पैदल सेनाने उसे खींचा। चक्रवर्तीने तर्जनी अँगुलीका जरासा झटका लगाया कि सारे सैनिक

पृथ्वी पर गिर पड़े—ऐसा तो उनका शारीरिक बल था! और इस प्रकारका विकल्प भी आया, लेकिन शरीर और विकल्प दोनोंसे भिन्न ऐसी अनन्त चैतन्यशक्तिसे सम्पन्न ही वह अपनेको देखते हैं। ऐसी चैतन्यदृष्टिमें उन्हें शरीरका मद रंचमात्र नहीं है।

ऐसा ही एक प्रसंग नेमिनाथ तीर्थंकर और श्रीकृष्णके बीच बना था। यादवोंकी सभामें एकबार शरीर-बलकी चर्चा चल उठी। नेमकुमार और श्रीकृष्ण दोनों चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण बड़े और नेमकुमार छोटे थे, परन्तु छोटा फिर भी सिंह! छोटे परन्तु तीर्थंकर थे। वे भी सभामें गंभीर रूपसे बैठे थे। सभामें किसीने श्रीकृष्णके बलकी प्रशंसा की, किसीने नेमकुमारके बल की। किसका बल अधिक है उसकी परीक्षा करनेका निर्णय हुआ। उसी समय नेमकुमारने तर्जनी अँगुली बढ़ाकर कहा कि यदि आपमें बल हो तो इसे मोड़ दो! श्रीकृष्ण तो उस अँगली पर तुल गये तथापि उसे मोड़ न सके।—कैसा अचिंत्य शरीर बल तथापि उस समय आत्माको उससे सर्वथा भिन्न ही जानते थे। सम्यक्त्वमें आठों मदका अभाव था। अस्थिरताका विकल्प आया, परन्तु उसमें सम्यक्त्व सम्बन्धी कोई दोष न था। ऐसे सम्यक्त्वको पहिचानकर उसकी आराधना करनेका उपदेश है।

धर्मात्माको प्राकृतिक रूपसे पुण्यका वैभव होता है, लेकिन वह जानता है कि इस पुण्यके वैभवमें हम नहीं हैं। हमारे चैतन्यका वैभव इससे निराला है। हमारा सामर्थ्य हमारे अंतरमें समाया है। हमारे चैतन्यका बल कहीं शरीरमें नहीं है। ऐसी

प्रतीतिमें धर्मीको बलका मद नहीं होता। शरीरसे जो धर्म होना मानते हैं उन्हें मद हुए बिना नहीं रहता।

(७) तपमदः—स्वयं कोई उपवास, स्वाध्यायादि तप करता हो और अन्य धर्मात्माको उपवासादिकी विशेषता न हो वहाँ धर्मी जीव अपनेको बड़ा और दूसरेको छोटा मानकर तपमद नहीं करता। अहा, सच्चे तपस्वी तो वे शुद्धपयोगी मुनि भगवन्त हैं कि जो चैतन्यके उग्र प्रतपन द्वारा वीतरागभाव प्रगट करके कर्मोको भस्म कर देते हैं, मैं तो अभी प्रमादमें ही पड़ा हूँ। शरीरकी निर्बलतासे कोई उपवासादि तप न कर सकता हो लेकिन ज्ञान–ध्यानकी उग्रता द्वारा आत्माकी शुद्धताकी वृद्धि करता हो वह धन्य है! इसप्रकार सम्यग्दृष्टिको तपका मद नहीं होता। मद वह तो कषाय है और तप वह कषाय नष्ट करनेके लिये है।

(८) ऐश्वर्यमदः—अर्थात् पूज्यपनेका मद अथवा अधिकारका मद, वह धर्मात्माको होता नहीं। हम तो सर्वज्ञके पुत्र हैं। हमारा पद तो सर्वज्ञपद है, अन्य कोई हमारा पद नहीं। केवलज्ञान द्वारा ही हमारी महत्ता है, इसके अतिरिक्त बाह्यमें राज्यपद या प्रधानपद द्वारा हमारे आत्माकी महत्ता नहीं—ऐसा जाननेवाले धर्मीको बाह्य महत्ताका मद नहीं होता। पुण्यके योगसे बाह्य महत्ता अधिक हो, परन्तु उसके कारण अपने आत्माकी महत्ता धर्मी नहीं मानते।

श्रीमद् राजचन्द्रने कहा है कि—'लक्ष्मी अने अधिकार वधतां शुं वध्युं ते तो कहो?' यह तो सब संसारका ठाठबाट है; इसमें कहीं आत्माकी शोभा नहीं है। मेरा आत्मा स्वयं सिद्ध

परमेश्वर है—उसके समक्ष ऐसा कौनसा ऐश्वर्य या महत्ता है कि जिसका मैं मद करूँ? अरे, राग और रागका फल वह तो सब अपद हैं—अपद हैं। लोग बाह्य पदवीके लिये लालायित रहते हैं, लेकिन धर्मी जानता है कि मेरे चैतन्यके पदके सन्मुख चक्रवर्तीपद भी तुच्छ प्रतीत होता है। ऐसा चैतन्यपद जिसने प्राप्त किया है (जाना है और अनुभव किया है) वह अन्य किस पदका अभिमान करे? अहा, तीनलोकमें सबसे उच्च ऐसा मेरा चैतन्यपद मैंने अपने अन्तरमें देखा है। अन्तरमें आनन्दकी अपूर्व वीणा बजी है। अतीन्द्रिय सुखकी तरंगोंसे चैतन्य समुद्र उमड़ पड़ा है।—ऐसा आनन्दस्वरूप मैं स्वयं हूँ...आनन्दसे उच्च जगतमें दूसरा क्या है? ऐसी आत्म अनुभूतिके द्वारा धर्मात्माको जगतके ऐश्वर्यका मोह नष्ट हो गया है, इसलिये उसे कहीं ऐश्वर्यका मद नहीं होता। उच्च अधिकार हों, लखों-करोड़ों लोगोंमें पुजता हो, सम्पूर्ण देशमें आज्ञा चलती हो—लेकिन उसके द्वारा धर्मी अपने आत्माकी रंचमात्र भी महानता नहीं मानता। मेरी महानता तो मेरे स्वभावमें ही है, दूसरे मुझे क्या महत्ता देगें? दूसरोंके पास महानता लेने जाना पड़े ऐसा पराधीन मैं नहीं हूँ। इसप्रकार धर्मीको बड़प्पनका मद नहीं होता; उसीप्रकार अन्य जीव अशुभकर्मके उदयसे दरिद्र हो उसकी अवज्ञा भी नहीं करता। बाह्य ऐश्वर्य हो या न हो, वह तो कर्मकृत (कर्मोंका फल) है। उसका स्वामित्व धर्मीको नहीं है। मिथ्यादृष्टि बड़ा राजा हो और सम्यग्दृष्टि उसकी नौकरी करता हो—यह तो सब शुभाशुभ कर्मका खेल है, इनसे धर्मी अपनेको दीन नहीं

मानता। अपने अक्षय ज्ञानादि अनन्त ऐश्वर्यको वह अपनेमें देखता है।—इसप्रकार धर्मीको मद या दीनताका अभाव है।

धर्मात्माको सम्यक्त्वपूर्वक ऐसे आठ मदका अभाव हुआ है। स्वद्रव्य और परद्रव्यकी अत्यन्त भिन्नताको जिसने जान लिया है उसको परवस्तु द्वारा अपना बड़प्पन भासित नहीं होता। माता-पिता-शरीर-रूप-धन आदि जो वस्तुएँ मेरी हैं ही नहीं, उनके द्वारा मेरी महत्ता कैसी? मेरी महत्ता तो मेरी सम्यक्त्वादि स्वभाव द्वारा ही है। सुन्दर शरीर और बाह्य बड़प्पन, वह तो कई बार मिला, उसमें जिसे अपनी शोभा प्रतीत होती है उसे चैतन्यसे शोभायमान ऐसे अपने आत्माकी प्रतीति नहीं है। देह-जाति-रूप-माता-पिता-धन वैभव-उच्च पदवी यह सब परद्रव्य हैं, इन सबसे अपने आत्माको सर्वथा भिन्न अनुभव करनेके बाद धर्मीको उन पदार्थोंके द्वारा अपना बड़प्पन कैसे भासित हो? इसलिये उसके आठ मद नहीं होते। कोई विकल्प आ भी जाये, तो उसे मलिन जानकर वह भाव छोड़े और दोषरहित शुद्ध सम्यक्त्वका आराधना करे—ऐसा उपदेश है।

इस प्रकार आठ शंकादि दोष तथा आठ मद सम्यग्दृष्टिको नहीं होते; इसके अतिरिक्त छह अनायतन और तीन मूढ़ताका सेवन भी उसे नहीं होता। अरिहन्त परमात्माने जीवका जैसा स्वरूप बतलाया है तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो वीतरागमार्ग बतलाया है, उससे विपरीत कहनेवाले ऐसे कुदेव-कुगुरु-कुधर्मको धर्मी जीव सब प्रकारसे छोड़ता है। किसी भी प्रकार उसकी अनुमोदना नहीं

करता तथा कुदेव–कुगुरु–कुधर्मकी सेवा करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका साथ भी छोड़ देता है। धर्मबुद्धिसे ऐसे जीवका साथ वह नहीं कर सकता, तथा देव सम्बन्धी अनेक मूढ़ताएँ, गुरु सम्बन्धी अनेक मूढ़ताएँ तथा धर्म सम्बन्धी अनेक मूढ़ताएं लोगोंमें प्रचलित हैं, परन्तु धर्मी स्वप्नमें भी उनका सेवन नहीं करता।

जो धर्मका स्थान नहीं, जिसके पास धर्मका सच्चा उपदेश नहीं, सम्यग्ज्ञानका स्वरूप जिनमें नहीं, अनेक प्रकारसे जो विषय–कषाय राग–द्वेषके पोषक हैं, जिनमें हिंसा–अहिंसाका भी विवेक नहीं ऐसे कुदेव–कुगुरु–कुधर्म वह धर्मके अनायतन हैं, उनके सेवनसे आत्माका किंचित्‌मात्र हित नहीं होता, उनके सेवनसे तो सम्यक्त्वादिका घात होता है और आत्माका अत्यन्त अहित होता है। कुदेवादिका सेवन सम्यग्दृष्टिको तो होता ही नहीं, लेकिन जैन नाम धारण करनेवाले जिज्ञासुको भी ऐसे कुदेवादिका सेवन नहीं होता। वीतरागमार्गके देव-गुरु–धर्म और उनका सेवन करनेवाले साधर्मी–धर्मात्माके अतिरिक्त दूसरेका सेवन अहितका कारण जानकर अत्यन्त छोड़ने योग्य है।

सम्यग्दृष्टि, महान अलौकिक आत्माके अंतरस्वभावकी जिसे प्रतीति हुई है उसे निश्चयसे सम्यक्त्वके साथ व्यवहार भी पच्चीस दोषरहित होता है। आजीविका छूट जाय, धन लुट जाय, देशको छोड़ना पड़े या प्राण जायें, तथापि सम्यग्दृष्टि जीव किसी भी प्रकारके भयसे–आशासे–स्नेहसे कुधर्मकी या कुदेवादिकी आराधना नहीं करता। वीतरागी देव–गुरु–धर्मका भक्त हिंसक देव–देवियोंको

नमन नहीं करता। अहा, अरिहन्तदेवका उपासक तो चैतन्यके वीतरागमार्ग पर चलनेवाला है, वह अन्य कुमार्गका आदर क्यों करेगा? वह कुमार्गकी या उसके सेवककी प्रशंसा नहीं करता, अनुमोदना नहीं करता। कुधर्म खूब फैला हुआ हो अतः अच्छा है, उसके भक्त अच्छे हैं; शास्त्र-मन्दिर अच्छे हैं—ऐसी प्रशंसा धर्मी नहीं करता। कुधर्मके सेवक कोई बड़ा मन्दिर बनवायें, लाखों रुपया खर्च करके विशाल यज्ञादिक उत्सव करें, वहाँ धर्मी उनकी प्रशंसा भी नहीं करता कि तुमने बहुत अच्छा कार्य किया है। अरे, वीतरागमार्गसे विरुद्ध ऐसा कुमार्ग, जो जगतके जीवोंका अहित करनेवाला हो, उसकी प्रशंसा क्या? जिसमें मिथ्यात्वका पोषण हो उन क्रियाओंको अच्छा कौन कहे? इसप्रकार कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका तो स्वयं सेवन नहीं करता तथा दूसरे जो सेवन करें उनकी प्रशंसा भी नहीं करता, परन्तु संभव हो तो उपदेश देकर कुमार्गसे छुड़ाता है। धर्मी गृहस्थ राजाको या माता-पिता आदि बड़ोंको नमन करे वह तो लोकव्यवहार है, उसके साथ कहीं धर्मका सम्बन्ध नहीं है, लेकिन धर्मके व्यवहारमें वह कुदेव-कुगुरुको कभी नमन नहीं करता। यह बात तो उनके लिये है जिन्हें सम्यग्दर्शन-रूपी महारत्न लेना है, धर्मका सच्चा माल लेना है; तथा जिन्होंने सम्यग्दर्शनरूपी रत्न प्राप्त कर लिया है उन्हें उसको संभालनेकी बात है। सम्यक्त्वमें किंचित् भी अतिचार न लगे और शुद्धता हो—इसलिये पच्चीस दोष रहित और आठ गुण सहित सम्यक्त्वकी आराधना करनी चाहिये। उसके द्वारा ही जीवका परम हित होता है।

भाई! यह तो अपने हितके लिये सच्चे-झूठेका विवेक करनेकी बात है। सच क्या और झूठ क्या, इसीकी जिसे खबर नहीं वह क्या लेगा? और क्या छोड़ेगा? अपना हित किस प्रकार करेगा? परीक्षा द्वारा सच्चे-झूठेको पहिचानकर निर्भयरूपसे सत्यका स्वीकार करना चाहिये और असत्यका सेवन छोड़ना चाहिये। जगतके साथ मेल रखने या जगतको अच्छा दिखानेके लिये कहीं धर्मको नहीं छोड़ना चाहिये। यह तो अपनी श्रद्धा सच्ची करनेकी बात है।

वीतरागी देव-गुरु-धर्मका आदर और उससे विपरीत कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका त्याग, इतना तो सम्यक्त्वी पात्रतारूप प्रथम भूमिकामें होना चाहिये। "त्याग-विराग न चित्तमें थाय न तेने ज्ञान,"—ऐसा श्रीमद् राजचन्द्रने कहा, उसमे कुदेवादिका त्याग तो पहेले ही समझ लेना चाहिये। दूसरे तो अनेक प्रकारके त्याग किये, परंतु कुदेव-कुगुरुके सेवनका त्याग न करे तो उसका रंच-मात्र भी हित नहीं होता। और जहाँ रागको धर्म माना वहाँ वैराग्य कहाँ रहा? अरे, देहसे भिन्न मेरा अखण्ड चैतन्यतत्त्व क्या है और उसका अनुभव कैसा है? उसका सच्चा स्वरूप बतलाने वाले वीतराग सर्वज्ञदेव, रत्नत्रयवन्त गुरु और रागरहित धर्म तथा शास्त्रको जो पहिचाने वह जीव उससे विरुद्ध अन्य किसीको मानता नहीं, नमन नहीं करता और प्रशंसा नहीं करता।

एक ओर कुन्दकुन्दाचार्य जैसे वीतरागी सन्तोंका भक्त कहलाये तथा दूसरी ओर उनसे विरुद्ध कहनेवालोंका आदर तथा श्रद्धा करे

तो उसे सत्यका विवेक कहाँ रहा? भाई! वीतरागमार्गके और वीतरागी सन्तोंके विरोधी ऐसे कुगुरुके सेवनमें तो मिथ्यात्वकी पुष्टि तथा तीव्र कषायके द्वारा आत्माका बहुत अहित होता है, जिससे उसका निषेध करते हैं। इसमें कहीं किसी व्यक्तिके प्रति द्वेष नहीं है, परन्तु जीवोंकी हितबुद्धि ही है। अपनी श्रद्धा स्वच्छ रहे, उसमें दोष न लगे उसकी बात है। सत्यमार्गसे विरुद्ध विकल्प धर्मी कभी आने नहीं देता। मिथ्यात्व-सम्बन्धी दोषोंसे बचने और सम्यक्त्वी की शुद्धि बनाये रखनेके लिये निःशंकितादि आठ अंग आदरणीय हैं।

—इसप्रकार सम्यक्त्व सम्बन्धी गुण-दोषको पहिचानकर अपने हितके लिये निःशंकितादि आठ गुणसहित, शंकादिक पच्चीस दोष-रहित शुद्ध सम्यक्त्वको धारण करो—ऐसा उपदेश है।

हे मोक्षार्थी साधर्मी! भगवानका आत्मा प्रत्येक प्रसंगमें (गर्भसे लेकर मोक्ष तक) कैसे चैतन्यभावरूप परिणत हो रहा है—उसे तुम पहिचानो। अकेले संयोगको, पुण्यके ठाटको या राग-द्वेषको देखनेमें मत रुको; उनसे पार आत्मिकगुणोंके द्वारा प्रभुकी सच्ची पहचान करो, तब तुम्हें भी सम्यक्त्वादि होगा और तुम भी प्रभुके मोक्षके मार्गमें प्रविष्ट हो जाओगे।

सम्यक्त्वधारक जीवकी अन्तरंगदशा और उसकी महिमा

आठ गुणसहित और पच्चीस दोषरहित ऐसा सम्यक्त्व धारण करनेका कहा; अब ऐसे सम्यक्त्वका धारक जीव कैसा होता है यह दिखाकर उसकी महिमा कहते हैं—

[श्लोक १५]

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यग्दरश सजैं हैं ।
चरितमोहवश लेश न संजम पै सुरनाथ जजैं हैं ॥
गेही, पै गृहमें न रचैं ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है ।
नगरनारीकौ प्यार यथा, कादेमें हेम अमल है ॥ १५ ॥

अहो, सम्यग्दर्शन चीज क्या है ! लोगोंको उसके मूल्यकी खबर नहीं है; सम्यग्दृष्टिको लेश भी संयम न हो तो भी वह प्रशंसनीय है, देव भी उसके सम्यक्त्वकी महिमा करते हैं। दोषरहित व गुणसहित सम्यग्दर्शन जिसने धारण किया है, सम्यग्दर्शनसे आत्माको अलंकृत किया है वह उत्तम बुद्धिमान गृहवासमें रहता हुआ भी गृहमें जरा भी रत नहीं होता; जैसे जलके बीचमें रहा हुआ भी कमल जलसे भिन्न है; जैसे नगरनारीका प्रेम सच्चा प्रेम नहीं है; और जैसे कीटके बीच भी सुवर्ण मलिन नहीं होता; वैसे गृहवासमें रहते हुए भी सम्यग्दृष्टिका अलिप्तपना समझना। देखो, सम्यग्दृष्टिकी अन्तरंग दशा समझानेके लिये तीन दृष्टान्त दिये।

यहां सम्यग्दृष्टिको 'सुधी' कहा है। सु-धी माने सम्यक् है। जिसकी बुद्धि सच्ची ऐसी बुद्धिवाला; चैतन्यको साधनेमें सच्ची बुद्धिवाला सम्यग्दृष्टि वह 'सुधी' है, अन्य सब कुबुद्धि है। सुबुद्धि सम्यग्दृष्टि विषयोंसे पार आत्माका अनुभव करनेवाला, उसे कदाचित् जरा भी संयमदशा न हो, अभी विषयआसक्ति भी हो, गृहवासमें हो, तो भी सुरनाथ इन्द्रादि देव भी उसकी प्रशंसा करते हैं (सुरनाथ जजे हैं)-ऐसी सम्यग्दर्शनकी महिमा है।

जिसने अपनी बुद्धि आत्मामें लगायी वही सच्चा बुद्धिमान है,-अन्य जानकारी भले कम हो। अष्ट गुणरूपी अलंकारोंसे वह विभूषित है। उसे मुनिदशाकी भावना रहते हुए भी अभी चारित्र-मोह विद्यमान होनेसे वह संयम नहीं ले सकता,-कर्मके कारणसे नहीं परन्तु चारित्रमोहके आधीन अपने दोषके कारण; अपने इतने दोषसे वह आरंभ-परिग्रहमें रहा है, अभी विषय-व्यापार छोड़कर मुनि नहीं हुआ है, संयम या व्रत लेश भी नहीं है, व्यापार-धन्धा-स्त्री आदि होते हैं, किन्तु वह सम्यग्दृष्टि उनमें कहीं राचता नहीं, वह उसमें लीन नहीं अपितु भिन्न है, उसका सम्यग्दर्शन बिगड़ता नहीं, वह तो अपनेको जलकमलवत जुदा अनुभव करता है; अन्तरमें चैतन्यके विषयातीत सुखका स्वाद लिया है, अतः विषयोंमें कहीं सुख मानकर लिप्त नहीं होता। व्रतादिका अभाव होने पर भी उसमें सम्यक्त्वका दोष नहीं है, सम्यग्दर्शन तो उसका भी तीन लोकमें सर्वत्र प्रशंसनीय ही है।

सम्यग्दर्शनके प्रभावसे अनन्तानुबंधी कषायोंका अभाव होकर

स्वरूपाचरण' तो हुआ है, किन्तु अभी मुनिका या श्रावकका व्रत-चारित्र न होनेसे वह असंयमी है, असंयमी होते हुए भी वह प्रशंसनीय है;-असंयम कहीं प्रशंसनीय नहीं परन्तु सम्यग्दर्शन प्रशंसनीय है, उसके प्रतापसे वह मोक्षको साध रहा है।

और जिसको चैतन्यतत्त्वका ज्ञान नहीं है वह रागकी रुचिसे मिथ्यात्वसहित अनन्तानुबंधी कषायोंमे वर्तता है, उसे विषयोंकी रुचि हटी नहीं, क्योंकि जिसे रागका प्रेम है उसे रागके फलरूप विषयोंका प्रेम भी है ही, वह शुभरागसे व्रतादिका पालन करे तो भी शास्त्रकार उसे प्रशंसनीय नहीं कहते, क्योंकि वह (सम्यग्दर्शनके बिना) मोक्षके मार्गमें नहीं आया। यही बात श्री समन्तभद्र महाराजने रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है कि-गृहस्थ सम्यग्दृष्टि जो कि निर्मोही है,-दर्शनमोहरहित है वह तो मोक्षमार्गमें स्थित है, परन्तु जो मोहवान है ऐसा मिथ्यादृष्टि अनगार (द्रव्यलिंग धारक साधु) मोक्षमार्गमें नहीं है, अतः मोहवान मुनिसे निर्मोही गृहस्थ श्रेय है-भला है-उत्तम है-प्रशंसनीय है। अहो, ऐसे सम्यग्दर्शन समान श्रेयकर तीनकाल तीनलोकमें दूसरा कोई नहीं है।

कोई मिथ्यादृष्टि सूखी रोटी खाता हो या उपवास करता हो तो भी उसे रागमें तथा विषयोंमें सुखबुद्धि है, और कोई सम्यग्दृष्टि मिष्टान्न खा रहा हो फिर भी उसे उसका रस नहीं है, चैतन्य-सुखको चखकर विषयोंमेंसे सुखबुद्धि हट गई है, अतः वह विषयोंमें रत नहीं है। यद्यपि चारित्रमोहके कारण विषयाशक्ति है परन्तु सम्यक्त्वमें दोष नहीं है।

प्रश्नः—सम्यग्दृष्टिके बाह्यविषय होते हैं तब फिर हमें भी हो तो क्या दोष ?

उत्तरः—अरे भाई! यह तेरा स्वछंद है, सम्यग्दृष्टिका हृदय देखना तुझे नहीं आता। तुझे आत्माके विषयातीत सुखकी पहचान नहीं है और तेरी बुद्धि रागमें ही लगी हुई है, अतः तू रागको व विषयोंको ही देखता है, परन्तु सम्यग्दृष्टिके अंतरमें रागातीत–विषयातीत जो ज्ञानचेतना विद्यमान है उसे तो तू नहीं देखता, वह ज्ञानचेतना विषयोंको या रागको छूती ही नहीं, दूर ही दूर रहती है; और ऐसी चेतनाके प्रभावसे ही सम्यग्दृष्टि प्रशंसनीय है। जब तेरेमें तो ज्ञानचेतना है ही कहां ? तू तो रागमें ही तल्लीन हो,— फिर भी कहता है कि ‘ हमें क्या दोष ?’-यह तो तेरा स्वच्छंद है।

एक ही घरमें दो पुत्र हो, दोनों एक सा भोगोपभोग करते हो, फिर भी उस समय एकको तो अनन्तकर्मबंध होता है, दूसरेको अल्प,–उसका कारण ? अन्तरकी दृष्टिके अन्तरके कारण बड़ा फर्क पड़ जाता है।

अरे, सम्यग्दृष्टि तो परमात्माका पुत्र हो गया, परमात्माकी गोदमें बैठा, अब तो उसे केवलज्ञान लेनेकी तैयारी हो गई, मोक्ष-महलकी सीढ़ी पर चढ़नेका उसने प्रारम्भ कर दिया। (मोक्ष-महलकी परथम सीढ़ी...यह बात १७ वें श्लोकमें कहेंगे।

अहा, ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शनको बहुमानसे धारण करो. थोड़ा भी समय व्यर्थ मत गमाओ, प्रमाद छोड़ दो अंतरमें शुद्धात्माका अनुभव करके सम्यग्दर्शनको अभी ही धारण कर लो।

सम्यग्दृष्टिके लेश भी संयम-व्रत न होनेपर भी दृष्टि अपेक्षासे वह सारे लोकालोकसे उदासीन हो गया है; उसका आदर देव भी करते हैं—

"वाह! धन्य आपकी आराधना, धन्य आपका अवतार; भवका किया अभाव ऐसा धन्य आपका अवतार; सम्यग्दर्शनसे आपने मानव जीवनको सफल किया; आप जिनेश्वरके पुत्र हुए और मोक्षके साधक हुए।

इन्द्र स्वयं भी सम्यग्दृष्टि है, अवधिज्ञानी है, उसने सम्यक्त्वकी महिमा अपने अन्दर अनुभूत की है इसलिये असंयमी मनुष्यके या तिर्यंचके भी सम्यग्दर्शनकी वह प्रशंसा करता है; भले ही वस्त्रादि परिग्रह हो, इससे कहीं सम्यग्दर्शनरत्नका मूल्यांकन कम नहीं हो जाता। जैसे फटे-टूटे-मलिन वस्त्रसे लिपटा हुआ अमूल्य रत्नका मूल्य कुछ कम नहीं हो जाता, वैसे गृहस्थका सम्यक्त्वरूपी अमूल्यरत्न असंयमरूपी मलिन वस्त्रमें लिपटा हुआ हो तो भी उसका मूल्य कुछ भी कम नहीं हो जाता। सम्यग्दर्शनके होनेसे वह गृहस्थ भी मोक्षका पथिक है।

सम्यग्दृष्टि आत्माके आनन्दमें रहनेवाला है; जहाँ आत्माके आनन्दरसका स्वाद लिया कि जगतके समस्त विषयोंका प्रेम छूट गया। उसकी दशा कोई परम गंभीर है, उसे बाहरसे नहीं पहचाना जाता। अपने चिदानंदस्वभावका अनुभव करके जिसने भवका अभाव किया है ऐसे सम्यग्दर्शनकी महिमा अचिंत्य है, अनादिके

दुःखका नाश कर अपूर्व मोक्षसुखका वह देनेवाला है; जो अनन्त कालमें पूर्व कभी नहीं किया था वह उसने किया; ऐसे सम्यग्-दर्शनका स्वरूप व उसकी महिमा बहुत गम्भीर है, कहीं देवोंके द्वारा पूजा-सत्कार होनेकी वजहसे उसकी महिमा नहीं है। उसकी महिमा तो अन्दरमें आत्माकी अनुभूतिसे है; इस अनुभूतिकी महिमा वचनातीत है।

सिद्धान्तमें कहा है कि, रागमें जिसे एकत्वबुद्धि है ऐसे मिथ्या-दृष्टि-महाव्रतीकी अपेक्षासे तो, रागसे भिन्न चैतन्यका अनुभव करनेवाला सम्यग्दृष्टि-अव्रती भी पूज्य है—महान है-प्रशंसनीय है। 'अहो, आपने आत्माका काम कर लिया, आत्माकी अनुभूति करके आप भगवानके मार्गमें आये'—इसप्रकार इन्द्र भी अपना साधर्मी समझकर उसके प्रति प्रेम-अनुमोदन करता है। ऐसे मनुष्य-भवमें पंचमकालकी प्रतिकूलताके बीचमें भी अपने आत्माको साध लिया, आपको धन्य है!—इसप्रकार 'सुरनाथ जजे हैं' अर्थात् उसके सम्यक्त्वका बहुमान करता है, प्रशंसा करता है, अनुमोदन करता है। श्री कुन्दकुन्दस्वामी जैसे वीतरागी सन्त भी अष्टप्राभृतमें कहते हैं कि—

वह धन्य है कृतकृत्य है शूरवीर है पण्डित है।
सम्यक्त्व-सिद्धिकर अहो! नहीं स्वप्नमें दूषित है॥

सम्यग्दृष्टि कदाचित् चाण्डालके देहमें रहा हो तो भी वह देव जैसा है,-यह बात श्री समन्तभद्रस्वामीने रत्नकरण्ड-श्रावकाचारमें की है—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नम् अपि मातंगदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्म गुढांगारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥

चाण्डाल शरीरमें ऊपजा हो तो भी जो जीव सम्यग्दर्शन-सम्पन्न है उसे गणधरदेव 'देव' कहते हैं; भस्मसे ढके हुए तेजस्वी अंगारकी तरह वह जीव सम्यक्त्वसे शोभते हैं। सम्यग्दृष्टि तिर्यंचपर्यायमें हो या स्त्री पर्यायमें हो वो भी सम्यक्त्वके प्रतापसे वह प्रशंसनीय है। तीर्यंच पर्याय या स्त्री पर्याय लोकमें सामान्यतः निंदनीय होती है, परन्तु वह भी यदि सम्यग्दर्शन सहित हो तो प्रशंसनीय है। भगवती-आराधनामें भी सम्यग्दृष्टि स्त्रीकी बहुत प्रशंसा की है। (देखिये गा. ९९४ से ९९९)

गृहस्थ सम्यग्दृष्टि स्त्री हो पुत्रादि सहित भी हो, किन्तु वह गृहमें राचते नहीं, उनकी रुचि आत्मामें है। जिनको आत्मासे भिन्न जान लिया उनकी रुचि कैसे रहे? स्वानुभवके द्वारा स्व-परका विभाग कर दिया है कि मैं ज्ञानानंदस्वरूप ही हूं, और शुद्धात्माके विकल्पसे लेकर सारी दुनिया-अब मेरेसे भिन्न है,—ऐसी भेद-ज्ञान दृष्टिकी अपार महिमा है, उसका अपार सामर्थ्य है, अहा, उसने अपनी अंतरकी परिणमन धारामे आनंदमय स्वघर देखा है, वह रागको पर घर समझकर उसमें जाना नहीं चाहता; चित्त चैतन्य-धाममें लगा है वहांसे हटता नहीं, और जहांसे जुदा हुआ वहां जाना नहीं चाहता।

आठ वर्षकी छोटी बेटी हो, सम्यग्दर्शन प्रगट कर लिया हो, और उसके माता-पिताको खबर पड़े, तो वे भी कहते हैं कि-वाह,

बेटी! धन्य है तेरा अवतार! तूने आत्माका काम करके जीवन सफल किया। आत्मामें सम्यक्त्व–दीपक प्रगटा कर तूने मोक्षका पथ पा लिया। उम्र भले छोटी हो, किन्तु जिसने आत्माको साध लिया वह सराहनीय है, देव भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव परभावोंसे एवं संयोगोंसे अलिप्त रहता है; बाह्यमें विशेष त्याग भले न हो, असंयमी हो, गृहवासमें स्त्री–पुत्रादिके साथ रहता हो, तो भी अंतरकी दृष्टिमें वह कितना अलिप्त है?–यह बात यहां तीन दृष्टान्तसे समझायी गयी है:—

(१) जलके बीच कमलकी तरह वह अलिप्त है। समयसारकी १४वीं गाथामें भी आत्माका अलिप्त (अबद्ध–स्पृष्ट) स्वभाव दिखानेके लिये यह दृष्टान्त दिया है। जैसे कमलपत्र पानीके बीच रहा दिखता है परन्तु उसका अलिप्त स्वभाव देखो तो वह पानीसे छुआ ही नहीं; वैसे धर्मात्मा संयोग और रागरूपी कादवके बीच रहा दीखे परन्तु उसके ज्ञानभावको देखो तो वह परभावसे अलिप्त है। ज्ञान तो रागसे भिन्न ही है, वह ज्ञान परभावोंसे लिप्त नहीं होता। आत्माका ज्ञान परसे भिन्न है; जिनको अपनेसे भिन्न जाना उनमें आत्मबुद्धि कैसे हो? और जिसका अपने स्वरूपसे अनुभव किया ऐसी चैतन्यसत्ताका अस्तित्व कभी छूटता नहीं, उसकी दृष्टि, उसकी श्रद्धा कभी नहीं छूटती। इसप्रकार चैतन्यसत्ताके ऊपर जिसकी दृष्टि है उसकी चेतना परभावसे कभी लिप्त नहीं होती, वह अपने ज्ञानको कभी परभावरूप अनुभव नहीं करता। उसे निरंतर भेदज्ञान है कि मेरे ज्ञानका एक अंश भी अन्यरूप

नहीं हुआ है, ज्ञान परभावके किसी भी अंशको नहीं छूता, अलग ही अलग अलिप्त ही रहता है। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि गृहवासमें रहा हो तो भी जलकमलवत् अलिप्त ही है।

(२) जैसे सुवर्ण कीचड़के बीच पड़ा हो तो भी उसे कीचड़का जंग नहीं लगता, सोनेका स्वभाव ही जंगसे रहित है; वैसे असंयम-रूपी कीचके बीच रहते हुए भी धर्मात्माका सम्यग्दर्शन सोने जैसा शुद्ध है, वह मलिन नहीं होता। चैतन्यबिंब आत्मा जिस दृष्टिमें आया उस दृष्टिकी शुद्धतामें ऐसा सामर्थ्य है कि वह किसी भी परभावको अपनेमें आने नहीं देती; रागादि परभावके होने पर भी श्रद्धा-ज्ञान तो सोटंचके सोने जैसे शुद्ध वर्तता है; ज्ञान और विकल्पको वे अत्यन्त भिन्न ही रखते हैं। विकल्पका प्रवेश ज्ञानमें नहीं होता, ज्ञान विकल्परूप नहीं होता। ऐसे ज्ञानवंत सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा प्रशंसनीय है।

ऐसा कहा है कि, सम्यग्दृष्टि चलते हुए भी स्थिर हैं, बोलते हुए भी मौन हैं,—क्योंकि शरीरसे और वचनसे अत्यंत भिन्न अपना चेतनस्वरूप जान लिया है उसमें ही वे वर्तते हैं; अंतरकी दृष्टि और ज्ञान तो निजभावमें स्थिर बैठे हैं, वे कहीं विकल्पमें या वाणीमें नहीं जाते, इसलिये ज्ञानी तो स्थिर ही हैं। अहो, ज्ञानीकी ऐसी अंतरंग दशाको कोई बिरले ही पहचानते हैं। बाह्य दृष्टिसे देखनेवाले लोग ज्ञानीको नहीं पहचान सकते।

सम्यग्दृष्टि जीवड़ो करै कुटुंब प्रतिपाल।
फिर भी अंतरसे तो भिन्न है, ज्यों धाव खिलावे बाल ॥

धावमाता बच्चेको पुत्रकी तरह ही प्रेम करके सम्हालती है–खिलाती है, लालपाल करती है, 'पुत्र' कहके बुलाती है, फिर भी अन्तरमें उसको भान है कि इस पुत्रको जन्म देनेवाली माता मैं नहीं हूं, यह मेरा पुत्र नहीं है; वैसे धर्मात्मा शरीरादिकी चेष्टा करता हुआ दिखनेमें आवे, 'यह मेरा घर' इत्यादि भाषा भी बोलता हो, परन्तु अन्तरकी दृष्टिमें उसे भान है कि मैं तो चैतन्य हूं; मेरे चैतन्यभावके सिवाई अन्य कोई वस्तु रंचमात्र भी मेरी नहीं है; मेरी चेतना परभावकी जनेता नहीं है;–ऐसा भेदज्ञान ज्ञानीको एकक्षण भी नहीं छूटता, और परभावके साथ या संयोगके साथ जरा भी एकत्व नहीं होता।

(३) तीसरा दृष्टांत है नगरनारीके प्यारका। जैसे वेश्याका परपुरुषके प्रति जो प्रेम है वह सच्चा प्रेम नहीं है, उसे तो लक्ष्मीका प्रेम है· वैसे जिसने अपने चैतन्यतत्त्वका परसे अत्यन्त भिन्न अनुभव किया है ऐसे चैतन्यदृष्टिवंत धर्मात्माको, परवस्तु अपनी मानकर उसके प्रति प्रेम नहीं होता, उसका सच्चा प्रेम तो अपनी चैतन्यलक्ष्मीमें ही है। इस दृष्टांतसे धर्मीकी अन्तरदृष्टिमें परके प्रति प्रेमका अभाव दिखलाया है। अपने चैतन्य सिवाय जगतमें कहीं भी परके प्रति आत्मबुद्धिसे उसे राग नहीं होता, अतः वह अलिप्त है।

इस प्रकार तीन दृष्टान्तके द्वारा सम्यग्दृष्टि–धर्मात्मका अलिप्त भाव जानना। आत्माके सिवाय अन्यत्र कहीं भी उसका मन संतुष्ट नहीं होता, आत्माके पास अन्य कोई चीज उसे प्रिय नहीं लगती.

उसका सच्चा प्रेम व एकता आत्मामे ही है। परके प्रति कुछ राग होता है, परन्तु उसमे कहीं (परमें या रागमें) अंशमात्र सुखबुद्धि नहीं है। राग और स्वभावके बीच बडी खाई हो गई है, अत्यन्त भिन्नता हो गई है, वह कभी एक होनेवाली नहीं। राग और ज्ञानको यह जुदा ही जुदा अनुभवता है। ऐसी ज्ञानदशावंत सम्यग्दृष्टिकी महिमा अपार है। जैसे श्रीफलके भीतर सफेद-मीठा गोला है वह छिलकेसे जुदा है, वैसे धर्मात्माके अन्तरमें चैतन्यरसका मीठा पिण्ड है वह रागादि परभावोंसे जुदा है, चैतन्यरस रागरूप नहीं होता, संयोग एवं रागसे धर्मी अपनेको जुदा ही देखता है।

भरतचक्रवर्ती या छोटा मेंढ़क,-जो भी सम्यग्दृष्टि हैं उन सबकी ऐसी दशा होती है। उन्होंने आकाश जैसा अलिप्त अपना स्वभाव देखा है अतः परभावके प्रेमसे वे लिप्त नहीं होते, उन्हें असंयमसे जो रागादि है उसको भी वे छोडना चाहते हैं, उसको पुष्ट करना नहीं चाहते। वैसे तो उन सब परभावोंको अपने चैतन्यस्वभावकी अनुभूतिसे भिन्न जानकर अभिप्रायमें तो उनको छोड़ ही दिये हैं-कि ये कोई भाव मैं नहीं हूं। स्वानुभूतिके द्वारा स्व-परका विवेक हुआ है अत. स्वतत्त्वमें ही प्रीति है, परकी प्रीति छूट गई है।

विषय-कषाय तो पाप है, धर्मी भी उसे पाप ही समझता है; किन्तु उसी समय धर्मीके अतरमें जो सम्यग्दर्शन है वह शुद्ध है, प्रशंसनीय है वह मोक्षका कारण है। उस सम्यग्दर्शनका भाव विषय-कषायोंसे अलिप्त है। भिन्न भिन्न तरहकी दो धारायें एकसाथ

चल रही हैं—एक सम्यक्त्वादि शुद्ध भावकी धारा, और दूसरी रागधारा उनमेंसे शुद्धभावकी धाराके साथ धर्मीकी तन्मयता है और उसीके द्वारा ही धर्मीकी सच्ची पहचान होती है। अज्ञानी अकेली रागधाराको देखता है, अतः वह धर्मीको नहीं पहचान सकता

अहा, देखो यह वीतरागी जैनमार्ग! इसकी पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन, वह भी कैसी अलौकिक है! जैनमार्गको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी सम्यग्दर्शन या सच्चा आत्मज्ञान नहीं होता; अतः सच्चा चारित्र भी नहीं होता। ऐसे अन्य मार्गकी मान्यतामें तो गृहीत मिथ्यात्व है; धर्मीको ऐसे कुमार्गका आदर नहीं होता। उसने तो चैतन्यके अनन्तगुणके रससे भरपूर अतीन्द्रिय आनन्दके अनुभव-सहित आत्माकी प्रतीति की है, उसकी साथमें निःशंकतादि आठ गुण होते हैं। उसे तीव्र अन्यायके कोई कार्य नहीं होते। मांस-अण्डे-शराब आदि अभक्ष्य वस्तुका सेवन कभी नहीं होता; महापापके कारण ऐसे सप्तव्यसन भी नहीं होते। अरे, ऐसे पापकार्य तो जिज्ञासु-सज्जनको भी नहीं होते तब फिर सम्यग्दृष्टिको तो कैसे हो? चौथे गुणस्थानमें सम्यग्दृष्टिके यद्यपि संयमदशा नहीं होती तथापि उसे अलौकिक ज्ञान वैराग्यदशा होती है, स्वरूपमें आचरणरूप स्वरूपाचरण दशा भी है, और मिथ्यात्व या अनन्तानुबंधी क्रोधादि तो उसे होते ही नहीं। उस धर्मीके ज्ञानमें अतीन्द्रिय आनन्द आया है इसलिये अन्यत्र कहीं उसे सन्तोष या सुखका आभास नहीं होता; विषयोंकी मूर्छा नहीं है किन्तु खेद है असंयम है, किन्तु स्वच्छंद तो नहीं है। अरे, आत्माके आनन्दका साधक तो संसारसे उदास

हुआ,-उसे अब स्वच्छंद कैसा? पर्यायमें प्रतिक्षण उसका ज्ञान रागसे भिन्न रहकर मोक्षको साध रहा है, और उसमें ही सच्चा वैराग्य है। रागका कर्तृत्व ही जहां छूट गया वहां उसका (रागका) जोर नहीं रहता, अतः असंयम दशा रहते हुए भी कषायों मर्यादामें आ गये हैं, वहां श्रद्धा ज्ञानमें मलिनता नहीं रहती।-ऐसा सम्यग्दर्शन जिस जीवने प्रगट किया वह इन्द्र द्वारा भी प्रशंसनीय है। अहो, ऐसे कठिन कालमें भी अन्तरकी अनुभूतिसे जिसने आत्मदर्शन कर लिया वह धन्य है, वह तो आत्मराजाके आनन्ददरबारमें जाकर बैठ गया, वह पंचपरमेष्ठीकी जातिमें आ गया; शास्त्रोंने जिस चैतन्यवस्तुकी अनन्त महिमा गायी है वह चैतन्यवस्तु उसने अपनेमें पा ली, अपनेमें उसका अनुभव कर लिया, वह सुकृती है, जगतमें सर्वश्रेष्ठ कार्य उसने कर लिया, अत. वह धन्य है . धन्य है... धन्य है ॥ १५ ॥

सम्यग्दर्शनकी श्रेष्ठता, तथा सम्यग्दृष्टिके दुर्गतिगमनका अभाव

सम्यग्दृष्टि जीव असंयमी-गृहस्थ हो तो भी प्रशंसनीय है-ऐसा कहा। उसकी विशेष महिमा करते हुए और भी कहते हैं कि तीनकाल-तीनलोकमें सम्यग्दर्शन जीवको सुखकारी है, वही धर्मका मूल है; और सम्यग्दृष्टि जीव नीच गतिके स्थानोंमें उत्पन्न नहीं होते—

[श्लोक-१६]

प्रथम नरक विन षट् भू ज्योतिष वान भवन षंड नारी;
थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत सम्यक् धारी।
तीनलोक तिहुँकाल माँहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी;
सकल धर्मको मूल यही, इस विन करनी दुखकारी ॥ १६ ॥

अहो, जीवको सम्यग्दर्शनके समान सुखकारी तीनकाल तीन-लोकमें दूसरा कोई नहीं, है। सम्यग्दर्शन ही श्रावक या मुनिके समस्त धर्मका मूल है। सम्यग्दर्शनसे रहित शुभाशुभ समस्त क्रियाएँ जीवको दु.खकारी हैं।

सम्यग्दर्शन-धारक जीव पहली नरकको छोड़कर छह नरकोंमें, भवनवासी-व्यंतर-ज्योतिष देवोंमे. पहली नरकके सिवाय अन्यत्र नपुंसकमें, स्त्रीपर्यायमें, स्थावरमें, विकलत्रयमें या कर्मभूमिके पशुमें कभी उत्पन्न नहीं होता। सम्यग्दृष्टि-मनुष्य उत्तम देवमें,

और सम्यग्दृष्टि-मनुष्यदेव उत्तम मनुष्यमें ही उत्पन्न होता है; यदि किसीको सम्यग्दर्शनके पहले अज्ञानदशामें नरकादि आयु बंध गई हो तो ऐसा जीव पहली नरकमें या भोगभूमिके तीर्यंच अथवा मनुष्यमें जायगा। सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें तो नरक-तिर्यंचकी आयुष बंधती ही नहीं। सम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर विदेह क्षेत्रादि कर्मभूमिमे उत्पन्न नहीं होता, मिथ्यादृष्टि मनुष्य ही मरकर वहां जा सकता है।

सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति तो चारों गतिमें योग्य जीवोंको हो सकती है,-देव या मनुष्य, तिर्यंच या नारक कोई भी पात्र जीव सम्यग्दर्शन पा सकता है। नरकमें भी असंख्यात सम्यग्दृष्टि जीव हैं। सम्यग्दृष्टि जीव यदि चरमशरीरी न हो तो, मरकर कहां ऊपजेगा? और कहां नहीं ऊपजेगा? वह यहां दिखाया है—

❀ देवलोकसे चयकर सम्यग्दृष्टि जीव उत्तम मनुष्यमें ही आता है, अन्यत्र नहीं जाता।

❀ नरकमेंसे निकल कर सम्यग्दृष्टि जीव उत्तम मनुष्यमें ही आता है, अन्यत्र नहीं जाता।

तिर्यंचमेंसे मरकर सम्यग्दृष्टि जीव वैमानिक स्वर्गमें ही जाता है, अन्यत्र नहीं जाता।

❀ अब सम्यग्दृष्टि-मनुष्यमें दो बातें हैं—

(१) सामान्यरूपसे तो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर स्वर्गमें ही

(२) परन्तु जिसे सम्यग्दर्शनके पहले मिथ्यात्वदशामें आयु बन्ध गई हो और बादमें सम्यक्त्व हुआ हो ऐसा जीव सम्यक्त्व सहित मरके, यदि उसे नरकका आयुष बंधा होगा तो वह पहली नरकमें जायगा, और यदि तिर्यंचका या मनुष्यका आयु बंधा होगा तो वह भोगभूमिका तिर्यंच या मनुष्य होगा। इसमें भी यह विशेषता है कि ऐसा जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही होगा। अन्य सम्यक्त्व साथमें लेकर कोई जीव नरकमें या भोगभूमिमें उत्पन्न नहीं होता-यह नियम है।

महावीर भगवानके समयमें राजगृहीके महाराजा श्रेणिकको पहले अज्ञानदशामें जैनमुनिके पर उपसर्ग करनेसे सातमी नरककी आयु बन्ध गई, परन्तु बादमें उन्हीं मुनिराजके समीपमें जैनधर्म पाकर, महावीर प्रभुके पादमूलमें क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट किया एवं तीर्थंकर प्रकृति भी बांधी, तब उनकी नरककी स्थिति घटकर असंख्य वर्षमेंसे ८४००० वर्षकी ही रह गई. और सातवीके बदले पहली नरक (क्षायिक सम्यक्त्वको साथ लेकर) गये। जिस गतिका आयु बन्ध गया वह गति नहीं फिरती। ८४००० वर्ष पूर्ण होने पर वहांसे निकल कर वह जीव तीनलोकका नाथ तीर्थंकर परमात्मा होगा;—यह सम्यक्त्वका प्रताप है। योगसारमें कहा है कि—

सम्यग्दृष्टि जीवके दुर्गति गमन न होय।
कदी जाय तो दोष नहीं, पूर्वकर्म क्षय होय॥

सम्यग्दर्शन होनेके बाद जीवको दुर्गति गमन नहीं होता; किंतु यदि पूर्वबद्ध आयुके कारणसे नरकमे जाय तो भी इसमें सम्यग-

दर्शनका तो कोई दोष नहीं है; यह तो पूर्वकी मिथ्यात्व दशामें बंधे हुए कर्मोंका फल है, और उस कर्मकी भी उसे निर्जरा हो जाती है।

देखो, इसमें कितनी बात आ गई! प्रथम तो संसारमें चार गतिके स्थान हैं। आत्मज्ञान होनेपर तत्क्षण ही जीवकी मुक्ति हो जाय और वह संसारमें रहे ही नहीं—ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शनके बाद भी किसीको कुछ भव होते हैं। उस सम्यग्दृष्टिको असंयम एवं कुछ अशुभभाव होते हुए भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे उसके परिणाम इतने उज्ज्वल रहते हैं कि उत्तम देव या मनुष्यमें ही उसका अवतार होता है, हलके देवोंमें वह नहीं जाता, देवी भी नहीं होता। सम्यग्दृष्टि जीव मरके इन्द्राणी नहीं होता, स्त्रीपर्यायमें तो मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होता है उत्पन्न होनेके बाद भले वह सम्यग्दर्शन प्रगट कर ले। हलके देव, देवियां, छहों नरकके नारकी, नपुंसक—इन सबमें उत्पन्न होनेवाले जीव सम्यग्दर्शन पा सकते हैं, परन्तु वहां उत्पन्न होनेके समय तो वे मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। मल्लितीर्थंकरको जो लोग स्त्रीपर्याय मानते हैं उन्हें जैनसिद्धांतकी या सम्यक्त्वके महिमाकी जानकारी नहीं है। सभी तीर्थंकरोंका आत्मा तो पूर्व भवसे ही सम्यग्दर्शन तथा अवधिज्ञान साथमें लेकर आता है, तब वह स्त्रीपर्याय कैसे धारण करे? स्त्रीपर्यायमें तो मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होता है, सम्यग्दृष्टि कभी नहीं।

देवलोकसे मरकर सम्यग्दृष्टि जीव कर्मभूमिका मनुष्य होता है

परन्तु मनुष्यमेंसे मरकर कोई सम्यग्दृष्टि जीव कर्मभूमिका मनुष्य नहीं होता; यदि पहले मनुष्यका आयु बंध गया हो और मनुष्य हो तो भी भोगभूमिका ही मनुष्य होगा, कर्मभूमिका (विदेह-क्षेत्रादिका) नहीं होगा। कोई लोग बिना समझे ऐसा कहते हैं कि कोई धर्मात्मा यहांसे मरकर सीधा विदेहक्षेत्रमें जन्मा,—परन्तु यह भूल है। जो मनुष्य मरकर विदेहमें उत्पन्न हो वह नियमसे मिथ्या-दृष्टि होगा। कुन्दकुन्दाचार्यदेव वगैरह यहांसे विदेहमें गये थे यह बात सच है, परन्तु वे तो देहसहित गये थे; समाधिमरण करके तो वे स्वर्गमें गये हैं।

अज्ञानदशामें नरकका आयु बंध गया हो और बादमें जो जीव सम्यग्दर्शन (क्षायिक) प्राप्त करे वह पहली नरकमें जायगा; इससे नीचेकी छह नरकोंमें सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते; वहां जानेके बाद तो सातों नरकके जीव सम्यग्दर्शन पा सकते हैं। सातों नरकमें असंख्यात सम्यग्दृष्टि जीव हैं।

सम्यग्दर्शनकी साथ तो नरक या तिर्यंचका आयुष बन्धता ही नहीं; चाहे अव्रती हो तो भी ४१ अशुभ कर्मप्रकृतिका बन्धन सम्यग्दृष्टिको कभी नहीं होता, वह इसप्रकार—मिथ्यात्व, हुंडकादि पांच संस्थान, वज्रर्षभनाराचके अतिरिक्त पांच संहनन, नपुंसकवेद-स्त्रीवेद, एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रिय, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकगति—नरकगत्यानुपूर्वी-नरकायु, तिर्यंचत्रिक, अनन्तानुबन्धी क्रोधादिचार, स्त्यनगृद्धि—निद्रानिद्रा—प्रचलाप्रचला ये तीन दर्शनावरण, अप्रशस्त विहायोगति, नीच गोत्र, दुर्भग, दुस्वर

तथा अनादेय–ये प्रकृति मिथ्यात्व अवस्थामें बन्ध गई हो तो भी बहुत सम्यक्त्वके प्रभावसे नष्ट हो जाती हैं, नरकादिका आयुबंध नहीं छूटता किन्तु उसका स्थिति–अनुभाग बहुत कम हो जाते हैं; हीन तिर्यंचका या मनुष्यका आयु बन्ध गया हो तो सम्यक्त्वके प्रभावसे वह उत्तम भोगभूमिका हो जाता है। व्यंतरादि हल्के देवका आयु बन्ध गया हो तो सम्यक्त्वके प्रभावसे वह बदल कर कल्पवासी–वैमानिक देवका हो जाता है। सम्यग्दृष्टि जीव नीचकुलमें या दरिद्रतामें उत्पन्न नहीं होते, वह अत्यंत अल्प आयुवाला नहीं होता, विकृत अंगवाला या लूला–मूंगा–बहरा–अंधा भी उत्पन्न नहीं होता।–यह सब आत्माका बाह्य पुण्यफल है। सम्यग्दर्शनकी अनुभूति तो इन सबसे अत्यंत अलग ही है। देवादिके उत्तम शरीरसे भी सम्यग्दृष्टि अपनेको सर्वथा भिन्न ही अनुभव करता है। किन्तु सम्यक्त्वके साथमें ऐसे पुण्यका सम्बन्ध रहता है–यह यहां दिखाना है। सम्यग्दृष्टि तो अपनेको रागसे भी भिन्न अनुभवता है तब फिर पुण्यकर्मकी या संयोगकी तो बात ही कैसी?

देवोंमें नपुंसक कोई नहीं होते, मनुष्य तथा तिर्यंचमें नपुंसक होते हैं परन्तु सम्यग्दृष्टि उसमें उत्पन्न नहीं होते; यह अलग बात है कि नरकमें उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टि नपुंसक होते हैं,–क्योंकि नरकमे तो सभीको एक ही नपुंसकवेद होता है, वहां अन्य कोई वेद होते ही नहीं। कौन जीव कहा उत्पन्न हो सकता है, और कहा नहीं, उसका विस्तृत कथन श्री षट्खंडागम आदि सिद्धान्त-सूत्रोंमें है।

देखो, चार गति हैं, उनके योग्य जीवके भाव हैं, जीवको एक गतिमेंसे दूसरी गतिमें पुनर्जन्म अपने भावके अनुसार होता है, कोई ईश्वर उसे कर्मफल देनेवाला नहीं है,—इन सब बातोंका आस्तिक्य होना चाहिए! चार गति, पुनर्जन्म, कर्मफल इत्यादिको जो न माने उसे तो गृहीत मिथ्यात्व है, उसको तो यह बात कैसे समझमें आयगी? विकल्प तोड़ना चाहता है और समभाव रखना चाहता है और समभाव रखना चाहता है परन्तु सच्चे तत्त्वनिर्णयके बिना वह नहीं हो सकता। मिथ्यादृष्टिको समभाव कैसी? और निर्विकल्पता कैसी? आत्मामें एकाग्रताके बिना न तो निर्विकल्पता होती है, न समभाव। अरे, मूर्ख लोग तो भगवान महावीरको ईसु-बुद्ध या गांधीके साथ मिला कर उनकी कक्षामें बिठाते हैं, ऐसे लोगोंने न महावीरको पहचाना है, न जैनधर्मको; उनकी दृष्टि तो जैनधर्मसे बिलकुल विपरीत है। सर्वज्ञका जैनमार्ग तो कोई अद्भुत अलौकिक, जगतसे भिन्न तरहका है, अन्य किसी मार्गके साथ उसका समन्वय नहीं हो सकता। यह तो भगवानका मार्ग है और भगवान बननेका मार्ग है। प्रत्येक जीव सर्वज्ञस्वभावी परमात्मा है; अपने ऐसे स्वरूपकी पहचान होनेपर भी जब तक रागका सर्वथा अभाव नहीं होता तबतक ऐसे ज्ञानी जीवका भी पुनर्जन्म होता है, परन्तु वह उत्तम गतिमें ही होता है। सम्यग्दर्शन होनेके बाद उत्तम देव और उत्तम मनुष्यके अतिरिक्त संसारका छेद हो गया। सम्यग्दृष्टि जहां भी जाता है वहां ओजस्वी—पराक्रमी, तेजस्वी, प्रतापवंत, विद्यावंत, वीर्यवंत, उज्ज्वल, यशस्वी, वृद्धिवंत, विजयवंत, महान कुलवंत, चतुर्विधपुरुषार्थका स्वामी और मानवतिलक होता है अर्थात् समस्त

मनुष्योंमें तिलकके समान शोभा पाता है, समस्त लोकमें उसका आदर होता है; चक्रवर्ती-तीर्थंकर आदि बड़े-बड़े पद सम्यग्दृष्टिके ही होते हैं। और ऐसे उत्तम पुण्यपद पाकर-उसे भी छोड़कर, रत्नत्रयकी पूर्णता करके मोक्षपद पाते हैं। सम्यग्दर्शनका ऐसा महान प्रताप है।

सम्यग्दृष्टि असंयमी हो, विषय-कषायोंके भाव होते हो, किन्तु उसे अशुभ परिणामके समय आयुका बन्ध नहीं होगा, शुभपरिणामके समय ही आयुबन्ध होगा, क्योंकि उसको उत्तम आयुष्य ही बन्धता है; परिणामकी मर्यादा ही ऐसी है। उत्तम देव या मनुष्यमें जहां जायेगा वहां वह सम्यग्दृष्टि जीव अंतर्दृष्टिमें अपने शुद्धात्माके सिवाय अन्य सबसे अलिप्त ही रहेगा। इन्द्रलोकके वैभवके बीच भी वह आत्माको नहीं भूलता।

देह-मन-वाणी, कर्म पुण्य-पाप, राग-द्वेष, ..., व्यापार, (-नोकर्म-द्रव्यकर्म-भावकर्म) ये सब होते हुए भी, उनके सामने उन सबसे पार एक सर्वोपरी चिदानंदतत्त्व भी विद्यमान है, वह देहादि सबसे पार चिदानंदतत्त्व ही मैं हूं-ऐसा धर्मीको भान है, अनुभूति है; बाह्यमें सब कुछ रहते हुए भी मेरे तत्त्वमें वे कोई भी नहीं है, मेरा तत्त्व उनके साथ तन्मय नहीं हुआ, सबसे न्यारा ही न्यारा है। धर्मी ऐसी शुद्धदृष्टि रखकर आत्मज्ञानके साथ-साथ व्यवहारको भी जैसा है वैसा जान लेता है। रागादि है, गृहवास है, उसे वह अच्छा नहीं समझता, उसे तो वह कीच जैसा समझता है। अरे, मेरे शुद्धतत्त्वकी अनुभूतिमेंसे बाहर आकर बाह्य विषयोंमें

वृत्ति जावे सो तो वह कादव जैसी मलिन है. वह मेरेको शोभा नहीं देती। जैसे रोगीको रोगका या औषधिका प्रेम नहीं है, उसे तो वह मिटाना चाहता है, वैसे धर्मीजीवको असंयमका या विषयोंका प्रेम नहीं है, उसे तो वह छोड़ना ही चाहता है। इसप्रकार वह दोषको दोषरूप जानता है एवं दोषरहित शुद्धतत्त्वको भी जानता है, इस कारण रागादिभाव होनेपर भी धर्मीजीव अन्तरसे न्यारा है, अपने अतीन्द्रिय आनन्दमय चैतन्यस्वभावमें वह रागका प्रवेश नहीं होने देता। जैसे सज्जन मनुष्यको कैदमें रहना पड़े तो उसे वह अच्छा नहीं मनलगता; वैसे धर्मात्माको राग-द्वेष पुण्य-पाप कैद जैसा लगता है; परभावसे अर्थात गृहवासरूपी असंयमकी जेलमें धर्मीजीव आनन्द नहीं मानता, अपितु उसमेंसे छूटना ही चाहता है। सम्यग्दर्शनमें मुक्ति सुखके स्वादका नमूना चाख लिया है अतः रागके रसमें कहीं उसे चैन नहीं पड़ती।

सदन निवासी तदपि उदासी तातैं आस्रव छटाछटी।
संयम धर न सकै पै संयम धारनकी उर चटाचटी॥
निजपरत दृग धारिनी मोहे रीति लगत है अटापटी।

सम्यग्दृष्टिकी दशा कोई अलौकिक है। शास्त्रोंने दिल भर भरके सम्यग्दर्शनकी महिमा गायी है। सम्यग्दर्शनमें पूर्ण आत्माका स्वीकार है। सम्यग्दर्शन सर्वोत्तम सुखका कारण है, और वह धर्मका मूल है। श्री समन्तभद्र महाराज कहते हैं कि—

तीनकालमें तीनलोकमें सम्यक्त्व सम नहीं श्रेयको।
मिथ्यात्व सम कोई नहीं घातक इस जीवको॥
(रत्नकरंड-श्रावकाचार ३४)

मोक्षसुखका मूल कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनसे रहित जो कोई ज्ञान या जो कोई आचरण है वह सब दुःखका ही कारण है। अज्ञानीको व्रतादिके पुण्यके साथ मिथ्यात्वका पाप भी पड़ा है। सम्यग्दर्शनके विना जीवको सुखका अंश भी नहीं होता। सम्यग्दर्शन होते ही जीवको अपने स्वभावके अपूर्व सुखका आस्वादन होता है नरकमें भी सम्यग्दृष्टिको ऐसे सुखका आस्वादन है जब कि मिथ्यादृष्टिको स्वर्गमें भी सुखकी झलक नहीं है।

अज्ञानी लोग मानते हैं कि विना सम्यग्दर्शन भी हम जो व्यवहार (शुभराग) करेंगे वह हमें धर्मका या सुखका कारण हो जायगा। यहां शास्त्रकार कहते हैं कि रे भाई! सम्यग्दर्शनके विना तो सब करनी दुःखकी ही देनेवाली है, और सम्यग्दर्शनके बाद भी जितनी राग करनी है वह तो दुःख ही देनेवाली है, आत्माके आनन्दरूप सुखका देनेवाला तो सम्यग्दर्शन और वीतरागभाव ही है। देवलोकके वैभवमे सुख नहीं है परन्तु सम्यग्दर्शनमें सुख है। देवलोकमें जो सम्यग्दृष्टि सुखी हैं वे सम्यग्दर्शनसे सुखी हैं, किन्तु देवलोकका वैभव उनके सुखका कारण नहीं है। वैभवके ओर जो वृत्ति है उसमें तो दुःख है, आकुलता है।

सम्यग्दर्शनसे रहित जीव शुभरागके परिणाममें सुख मान लेता है, राग और ज्ञानके बीचमें बड़ा भेद है उसे वह नहीं जानता। 'राग' और 'ज्ञान' वे अनेक होने पर भी अज्ञानसे वह अनेकको एकरूपसे अनुभव करता है। भाई, तेरा चैतन्यतत्त्व रागसे जुदा है उसे तू जुदा ही जान। चैतन्यभावका अस्तित्व रागरूप या देहरूप

नहीं है। ऐसे चैतन्यकी [illegible] अज्ञानीको नहीं
शुभरागकी या देहकी क्रिया [illegible]
तो वे सब क्रिया थोती हैं, भैया! [illegible]

सम्यग्दर्शन होते ही भवसे रहित आत्मा
चैतन्यतत्त्व रागरहित आनन्दसे परिपूर्ण
भवके भावका आदर नहीं रहा, एक-दो
वह हेय जानता है। सम्यग्दर्शनके सिवाय
नहीं है। 'अन्य' कहनेसे
किन्तु सम्यग्दर्शनसे सहित सम्यग्ज्ञान-
चारित्रदशामें तो बहुत विशेष आत्मसुख
सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शनके बिना
सकती। सम्यग्दर्शनसे रहित ज्ञान
मिथ्याचारित्र है, उनमें कहीं सुखका
मूल मिथ्यात्व, और सर्व सुखका मूल

प्रश्नः-क्या यह सच्च है कि मिथ्या
जाते हैं?

उत्तरः-नहीं, मिथ्यादृष्टि जीव अपने-
चारों गतिमें जाते हैं, स्वर्गमें भी वे जाते
भी उन्हें सुख नहीं मिलता। अज्ञानसे वे अपनेको
लें, परन्तु सुख कहां है और कैसा है—उसे वे
मिथ्यादृष्टि जीव पाप करके नरकमें जाय, या पुण्य
भी जाय (नरकसे असंख्यातगुने स्वर्गके भव हैं)-

है तो संसार ही, मनमें कहीं भी वे जीव सुखी नहीं होते। सुखिया तो सम्यग्दृष्टि हैं—कि जिन्होंने चार गतिसे पार ऐसे अपने चैतन्यतत्त्वको देख लिया है।

दुनियांके लोग धन आदिके संयोग अनुसार सुख समझते हैं, आत्मिकसुखको वे नहीं जानते। वे लोग यह नहीं पूछते कि आपको कितना आत्मसुख है? परन्तु यह देखते हैं कि आपकी पास कितना धन-मकान है?—कितनी आय है? मानों अधिक पैसेसे अधिक सुख मिल जाता है—और पैसेके विना मानों सुख हो ही नहीं सकता!—ऐसी अज्ञानी लोगोंकी भ्रमणा है। दुनिया तो बाहरसे ही देखनेवाली है।

अरे, शुभ विकल्प भी जहां दुःख है, उसमें भी सुख नहीं है, तब अन्यकी तो क्या बात? विना सम्यग्दर्शन सुख देनेवाला कोई नहीं है। कोई संयोग ऐसा नहीं कि जो सुख दे सकता हो। सम्यक्त्व ही सभी धर्मका मूल है, 'सभी धर्म' कहनेसे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जैनधर्म एवं अन्य धर्म; किन्तु सभी धर्म कहनेसे आत्माका ज्ञानधर्म—चारित्रधर्म—श्रावकधर्म—मुनिधर्म—सुखधर्म क्षमादि दशधर्म—वीतरागी अहिंसा धर्म,—ऐसे वीतरागी शुद्धभावरूप सभी धर्मोंका मूल सम्यग्दर्शन है, क्योंकि 'धर्मी' ऐसा अपना शुद्ध आत्मा, उसके लक्ष—प्रतीत—अनुभवके विना उसके धर्मो (—शुद्ध पर्यायें) प्रगट नहीं होते। सम्यग्दर्शनमें शुद्धात्माको ध्येय बनाकर एकाग्र होनेसे श्रावकधर्म—मुनिधर्म—उत्तम क्षमादि धर्म—शुद्धोपयोग धर्म—परम अहिंसा धर्म—ध्यानरूप धर्म—सुख धर्म—स्वानुभवरूप धर्म—मोह

क्षोभ रहित परिणामरूप धर्म -ये सब वीतरागी धर्म खिल जाते हैं। अतः धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शनके बिना जीव जो कुछ करे वह धर्म नहीं, उसमें सुख नहीं।

आत्माके सम्यग्दर्शन बिना ध्यान किसका करेगा? ध्यानके लिये जिसमें एकाग्र होनेका है वह वस्तु तो प्रतीतिमें आयी नहीं। उसीप्रकार 'स्वरूपमें चरना सो चारित्र' है, परंतु जिस स्वरूपमें चरना है उसकी पहिचानके बिना चारित्र कैसा? वीतरागता करना चाहे परंतु रागसे भिन्न चैतन्यके अनुभवके बिना वीतरागता होगी कैसे? रागसे लाभ मानकर वीतरागता कभी नहीं हो सकती। इस प्रकार सम्यग्दर्शन और स्वानुभवके बिना जीवको किसी प्रकारका धर्म या मोक्षमार्ग नहीं होता। जैसे मूलके बिना वृक्ष नहीं होता, वैसे सम्यग्दर्शनके बिना धर्म नहीं होता। ऐसे ही अज्ञानसे धर्म मान लेना वह तो मिथ्या है। जाननेवालेने जब स्वयंको ही नहीं जाना-तो धर्म कैसा?

प्रत्येक आत्मा स्वयं परमात्मा बन सकता है; उसे न जानकर अन्य परमात्माने इन आत्माको बनाया ऐसा माने, अथवा तो यह आत्मा अन्य किसी परमात्माका अंश है ऐसा माने, (अर्थात् यह आत्मा स्वयं अखंड स्वतंत्र अकृत्रिम पदार्थ है-ऐसा न माने,) वे सब अज्ञानी हैं, उन्होंने न तो आत्माका स्वरूप जाना है, और न परमात्माको भी पहचाना है। ऐसे जीवोंको सम्यक्त्व नहीं होता, और सम्यक्त्वके बिना धर्म नहीं होता।

अतः मुमुक्षु जीवको चाहिए कि अपने सुखके लिये देव गुरु

—धर्मका स्वरूप अच्छी तरह पहचाने, सर्व प्रकारके सन्देह छोड़कर वीतराग जैनमार्गके तत्त्वोंका सच्चा निर्णय करे, और परसे भिन्न अपने चिदानंदस्वरूप आत्मतत्त्वकी रुचि-प्रतीति–स्वानुभूति करके शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण करे,—यह सन्तोंका उपदेश है।

आत्म-शान्ति

भाई, तेरा आत्मस्वभाव ऐसा है कि उसके सन्मुख परिणमन करते ही आनन्द सहित निर्मल सम्यक्त्वादिका उत्पाद होता है। जगतके कोलाहलसे दूर होकर, तू अपने स्वभावको लक्षमें ले। जगत क्या करता है, क्या बोलता है—उसके साथ तेरे तत्त्वका कोई संबंध नहीं है, क्योंकि तेरा उत्पाद तुझमेंसे आता है, अन्यमेंसे नहीं आता।

स्वभावकी प्रतीति होने पर भी किंचित् राग द्वेष हो तो वह कहीं ज्ञानभावका कार्य नहीं है—इसप्रकार धर्मीको भिन्नताका भान है, इसलिये उस समय वह अपने ज्ञानभावको नहीं भूलता। —"आत्मवैभवसे"

मोक्षमहलकी पहली सीढ़ी : सम्यग्दर्शन, हे भव्य ! उसको शीघ्र धारण करो काल वृथा मत गँवाओ

सम्यग्दर्शनकी अपार महिमा बतलाकर अब इस तीसरी ढालके अन्तिम छंदमें उसकी अत्यन्त प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि अरे जीव ! तू काल गँवाये बिना इस पवित्र सम्यग्दर्शनको धारण कर।

[श्लोक १७]

मोक्षमहलकी परथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ, सुन, चेत, सयाने काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै॥१७॥

अहा, सम्यग्दर्शनका स्वरूप अचिन्त्य है। हे भव्य ! ऐसे सम्यग्दर्शनको पहिचानकर अत्यन्त महिमापूर्वक तू उसे शीघ्र धारण कर...जरा भी काल गँवाये विना तू सावधान हो और उसे शीघ्र प्राप्त कर; क्योंकि यह सम्यग्दर्शन ही मोक्षकी पहली सीढ़ी है;

ज्ञान या चारित्र कोई सम्यग्दर्शनके विना सच्चे नहीं होते। सम्यग्-दर्शनसे रहित सर्व बाह्य ज्ञान तथा शुभ आचरण वह मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है, इसलिये हे भव्य! तू यह उपदेश सुनकर चेत, समझ और काल गँवाये विना सम्यग्दर्शनका सच्चा उद्यम कर। यदि इस भवमें सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो फिर ऐसा मनुष्यभव और जिनधर्मका ऐसा सुयोग प्राप्त होना कठिन है।

यदि अवसर चुक गया तो तेरे पछताना पड़ेगा। अतः कवि अपने आपको सम्बोधन करके कहते हैं एवं अन्य भव्य जीवोंसे भी कहते हैं कि हे चैतन्य दौलतवाले आतमराम! हे भव्य जीव! तुम अत्यन्त सावधान होकर चेतो और उद्यमपूर्वक शीघ्र सम्यक्त्वको धारण करो।

मोक्षरूपी महलमें पहुँचनेके लिये रत्नत्रयरूपी जो नसैनी है उसकी पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन है; उसके विना ऊपरकी सीढ़ियाँ (श्रावकदशा, मुनिदशा आदि) नहीं होतीं। नसैनीकी पहली सीढ़ी भी जिससे नहीं चढ़ी जाती वह पूरी सीढ़ी चढ़कर मोक्षमें कैसे पहुँचेगा? सम्यग्दर्शनसे रहित सब क्रियाएँ अर्थात् शुभभाव वे कहीं धर्मकी सीढ़ी नहीं है, वह तो संसारमें उतरनेका मार्ग है। रागको जिसने मार्ग माना वह तो संसारके मार्गमें है, रागके मार्ग पर चलकर कहीं मोक्षमें नहीं पहुँचा जा सकता। मोक्षका मार्ग तो स्वानुभवयुक्त–सम्यग्दर्शन है। आत्माकी पूर्ण शुद्ध वीतरागी दशा वह मोक्षरूपी आनन्दमहल है और अंशतः शुद्धतारूप सम्यग्दर्शन वह मोक्षमहलकी पहली सीढ़ी है। अंशतः शुद्धताके विना पूर्ण

शुद्धताके मार्ग पर कहाँसे पहुँचा जायगा? अशुद्धताके मार्ग पर चलनेसे कहीं मोक्षनगर नहीं आता।

मोक्ष क्या है?—मोक्ष कोई त्रैकालिक द्रव्य या गुण नहीं है, परन्तु वह तो जीवके ज्ञानादि गुणोंकी पूर्ण शुद्धदशारूप कार्य है; उसका मूल कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनका लक्ष्य पूर्ण शुद्ध आत्मा है; उस पूर्णताके ध्येयसे पूर्णके ओरकी धारा उल्लसित होती है; बीचमें रागादि हों, व्रतादि शुभभाव हों, परन्तु सम्यग्दृष्टि उन्हें आस्रव जानता है, वह कहीं मोक्षकी सीढ़ी नहीं है। सम्यक्‌ता कहो या शुद्धता कहो; ज्ञान-चारित्रादिकी शुद्धिका मूल सम्यग्दर्शन है। शुभराग वह कहीं धर्मकी सीढ़ी नहीं है; रागका फल सम्यग्-दर्शन नहीं है और सम्यग्दर्शनका फल शुभराग नहीं है, दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं।

आत्मा शांत वीतराग स्वभाव है; वह पुण्य द्वारा, राग द्वारा, व्यवहार द्वारा प्राप्त नहीं होता अर्थात् अनुभवमें नहीं आता, परन्तु सीधा स्वयं अपने चेतनभाव द्वारा अनुभवमें आता है। ऐसा अनुभव हो तब सम्यग्दर्शन होता है और तभी मोक्षमार्ग खुलता है। अनंत जन्म-मरणके नाशके उपायमें तथा मोक्षके परमानन्दकी प्राप्तिमें सम्यग्दर्शन ही पहली सीढ़ी है उसके बिना शास्त्रज्ञान या शुभरागकी क्रियाएँ वह सब निरर्थक हैं; उससे धर्मका फल जरा भी नहीं आता इसलिये वह सब निरर्थक है। नवतत्त्वोंकी मात्र व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान या पंचमहाव्रतादि शुभ आचार वह कोई राग आत्माके सम्यग्दर्शनके लिये किंचित् भी कारणरूप नहीं

है; विकल्पकी सहायता द्वारा कभी निर्विकल्पता प्राप्त नहीं होती। सम्यक्त्वादिकी भूमिकामें उसके योग्य व्यवहार होता है इतनी उसकी मर्यादा है, परन्तु वह व्यवहार है इसलिये उसके कारण निश्चय है-ऐसा नहीं है। व्यवहारके जितने विकल्प हैं वे सब आकुलता और दुःख हैं, आत्माके निश्चयरत्नत्रय ही सुखरूप और अनाकुल हैं। ज्ञानीको भी विकल्प वह दुःख है, विकल्प द्वारा कहीं आत्माका कार्य ज्ञानीको नहीं होता; उसी समय उससे भिन्न ऐसे निश्चयश्रद्धा-ज्ञानादि उसको अपने आत्माके अवलम्बनसे वर्तते हैं और वही मोक्षमार्ग है। ऐसे निरपेक्ष निश्चय सहित जो व्यवहार हो वह व्यवहाररूपसे सच्चा है।

सम्यग्दर्शनके बिना ज्ञान या चारित्रमें यथार्थता नहीं आती अर्थात् मिथ्यापना रहता है। सम्यग्दर्शनके बिना सब झूठा ?-हाँ, मोक्षके लिये वह सब निरर्थक है; धर्मके लिये वह सब बेकार है। शास्त्रज्ञानकी बातें करके चाहे जितना लोकरंजन करे, धारावाही भाषण देकर अनेक न्याय-तर्क कहे, अथवा व्रतादि आचरणरूप क्रियाओंके द्वारा लोकमें वाहवाह होती हो, परन्तु सम्यग्दर्शनके बिना यह ज्ञान और आचरण सब मिथ्या है, उसमें आत्माका किंचित् हित नहीं है; उसमें मात्र लोकरंजन है, आत्मरंजन नहीं है, आत्माका सुख नहीं है।

व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान चारित्र, वे सम्यग्दर्शनके बिना कैसे हैं ?—तो कहते हैं कि वे सम्यक्ताको प्राप्त नहीं होते अर्थात् सच्चे नहीं किन्तु मिथ्या हैं, उनके द्वारा मोक्षमार्ग जरा भी नहीं सधता।

सम्यग्दर्शन पूर्वक ही सच्चे ज्ञान–चारित्र होते हैं और मोक्षमार्ग सधता है, इसलिये वह धर्मका मूल है।

अहा, ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शनको हे भव्य जीवो ! तुम धारण करो, बहुमान सहित उसकी आराधना करो ! हे सयाने सुज्ञ आत्मा तू चेत, समझ और सावधान होकर प्रमादके बिना उस सम्यग्दर्शनको शीघ्र प्राप्त कर। सम्यग्दर्शनके लिये अवसर है; फिर बारबार यह मनुष्य भव प्राप्त होना दुर्लभ है। अतः यह उत्तम उपदेश सुनकर, तत्क्षण ही अन्तरमें अपने शुद्ध आत्माकी अखण्ड अनुभूति सहित श्रद्धा करके सम्यक्त्वके दीपक प्रगट कर। हे भव्य ! हे सुखाभिलाषी मुमुक्षु ! सुखके लिये तू इस उत्तमकार्यको शीघ्र कर !–शीघ्र अपने आत्माकी पहिचान करके अपनेको भवसमुद्रसे उबार।

('मोक्ष कह्यो निज शुद्धता') आत्माके सर्व गुणोंकी पूर्ण-शुद्धता सो मोक्ष है।

('सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व') आत्माके सर्व गुणोंकी अंशतः शुद्धता सो मोक्षमार्ग है।

आत्मामें जैसा ज्ञानानन्दस्वभाव त्रिकाल है वैसा पर्यायमें प्रगट हो उसका नाम मोक्ष, और सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र उसका कारण वह मोक्षमार्ग; उसमें भी मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन क्या है? यह दूसरे पदमें बताया कि–

"परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि, सम्यक्त्व भला है।"

परद्रव्योंसे भिन्न आत्माकी रुचि सो सम्यग्दर्शन है। मोक्षार्थीको सबसे पहले ऐसा सम्यग्दर्शन अवश्य प्रगट करना चाहिये।

ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा मैं हूँ, शरीरादि अजीव मैं नहीं हूँ, रागादि आस्रव भी मैं नहीं हूँ, इसप्रकार रागादिसे भिन्न अपने आत्माकी अनुभूति करनेसे सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन होते ही विशेष शास्त्राभ्यास या संयम न हो तो भी मोक्षमार्गका प्रारम्भ हो जाता है। श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं कि—"अनंतकालसे जो ज्ञान भवहेतु होता था, उस ज्ञानको क्षणमात्रमें जात्यंतर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शनको नमस्कार।"

ऐसे सम्यग्दर्शनका सच्चा स्वरूप इस जीवने अनंतकालमें नहीं समझा और विकारको ही आत्मा मानकर उसीके अनुभवमें रुक गया है। कभी पाप छोड़कर शुभरागमें आया परन्तु शुभराग भी अभूतार्थ धर्म है, वह मोक्षका कारण नहीं है, और उसके अनुभवसे कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। "भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी"—भूतार्थाश्रित जीव सम्यग्दृष्टि है। सब तत्त्वोंका सच्चा निर्णय सम्यग्दर्शनमें होता है। आत्मा चैतन्यप्रकाशी ज्ञायक सूर्य है, उसकी किरणोंमें रागादिका अंधकार नहीं है, शुभाशुभराग वह ज्ञानका स्वरूप नहीं है। ऐसे रागरहित ज्ञानस्वभावको जानकर उसकी प्रतीति एवं अनुभूति करना सो अपूर्व सम्यग्दर्शन है, वह सबका सार है।

'परमात्मप्रकाश'मे कहते हैं कि अनादिकालसे संसारमें भटकते हुए जीवने दो वस्तुएँ प्राप्त नहीं की—एक तो श्री जिनवर-स्वामी और दूसरा सम्यक्त्व। बाह्यमें तो जिनवरस्वामी मिले परन्तु स्वयं उनके सच्चे स्वरूपको नहीं पहिचाना इसलिये उसे जिनवर-स्वामी नहीं मिले,—ऐसा कहा है। जिनवरके आत्माका स्वरूप

पहिचाननेसे सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान-चारित्रको भगवानके मार्गकी अर्थात् सच्चाईकी छाप नहीं मिलती है। सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्धात्माको श्रद्धामें लिया तब ज्ञान सच्चा हुआ और ऐसे श्रद्धा-ज्ञान द्वारा अनुभवमें लिये हुए अपने शुद्धात्मामें लीन होनेसे चारित्र भी सच्चा हुआ, इसलिये कहा है कि—

"मोक्षमहलकी परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा,
सम्यकृता न लहै, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा।"

धर्मकी पहली सीढ़ी पुण्य नहीं किन्तु सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनसे रहित जीवने पुण्य भी अनन्तबार किया, किन्तु वह संसारका ही कारण हुआ, धर्मका किंचित् कारण न हुआ। सम्यग्दर्शन करके ही अनन्ता जीवोंने मोक्षसाधना की है। सम्यग्दर्शनके विना किसीने मोक्ष नहीं पाया। सम्यग्दर्शनके बिना ज्ञान नहीं है और चारित्र भी नहीं है। सम्यग्दर्शन सहित ही ज्ञान और चारित्र शोभा पाते हैं। इसलिये हे भव्य! ऐसे पवित्र सम्यक्त्वको अर्थात् निश्चय सम्यक्त्वको तुम शीघ्र धारण करो, काल गँवाये विना ऐसा सम्यक्त्व प्रगट करो। आत्मबोध विना शुभरागसे तो मात्र पुण्य-बंधन है, उसमें मोक्षमार्ग नहीं है, और सम्यग्दर्शनके पश्चात् भी कहीं राग वह मोक्षमार्ग नहीं है, रागरहित जो रत्नत्रय वही मोक्षमार्ग है; जितना राग है उतना तो बंधन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन वह राग है, विकल्प है, वह पवित्र नहीं है; निश्चय सम्यग्दर्शन वह पवित्र है, वीतराग है, निर्विकल्प है। विकल्पसे भिन्न होकर चेतना द्वारा ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माके अनुभव पूर्वक प्रतीति करना वह सच्चा

सम्यक्त्व है, वह मोक्षका सोपान है; इसलिये शुद्धात्माको अनुभवमें लेकर ऐसे सम्यक्त्वको धारण करनेका उपदेश है।

हे जीवो! सम्यक्त्वकी ऐसी महिमा सुनकर अब तुम जागो, जागकर चेतो, सावधान होओ, और ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शनका स्वरूप समझकर अपने पुरुषार्थ द्वारा उसे धारण करो; उसमें प्रमाद न करो। इस दुर्लभ अवसरमें सम्यग्दर्शन ही प्रथम कर्तव्य है। पुनः पुनः ऐसा अवसर मिलना कठिन है। सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो इस दीर्घसंसारमें परिभ्रमणका कहीं अन्त नहीं आयेगा... इसलिये हे समझदार जीवो! तुम उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शनको धारण करो। सावधान होकर अपनी स्वपर्यायको संभालो! उसे अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शनरूप करो। तुम्हारी पर्यायके कर्त्ता तुम ही हो, भगवान तो तुम्हारी पर्यायके ज्ञाता हैं परन्तु कर्त्ता नहीं हैं, कर्त्ता तो तुम्हीं हो। इसलिये तुम स्वयं आत्माके उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन पर्यायरूप परिणमित होओ।

अपना आत्मा क्या है उसे जाने बिना अनन्तबार यह जीव स्वर्गमें गया, परन्तु वहाँ उसे किंचित् सुख प्राप्त नहीं हुआ, वह संसारमें ही भटका। सुखका कारण तो आत्मज्ञान है। अज्ञानीको करोड़ों जन्म तक तप करनेसे जो कर्म खिरते हैं वे ज्ञानीको आत्मज्ञान द्वारा एक क्षणमें खिर जाते हैं इसलिये कहा है कि—"ज्ञानसमान न आन, जगतमें सुखको कारन..." तीन लोकमें सम्यग्दर्शनके समान सुखकारी दूसरा कोई नहीं है। आत्माके सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना जीवको सुखकी एक बून्द भी अनुभव नहीं आती अर्थात् धर्म नहीं होता।

ग्रंथकार कवि अपने आपको सम्बोधन करके कहते हैं कि हे दौलतराम-आत्मा ! यह हितोपदेश सुनकर, समझकर चेतो ! शीघ्र सम्यग्दर्शन धारण कर अपना हित करो। 'दौलतराम' अर्थात् अन्तरमें चैतन्यकी दौलतवाला आतमराम, चैतन्यकी सम्पदारूप अनन्त दौलतवाले हे दौलतराम ! हे आतमराम ! तुम तो सूज्ञ हो, विवेकी हो, और यह तुम्हारे हितका अवसर आया है। तुम कहीं मूर्ख नहीं हो, समझदार ज्ञानके भण्डार हो, अतः चेतो...समझो और सम्यक्त्वको अभी धारण करो। सम्यक्त्वकी प्राप्तिका यह अवसर है उसे वृथा मत खोओ।

जो समझदार हैं, जो आत्माको भवदुःखसे छुड़ाने तथा मोक्ष-सुखके अनुभवके लिये सम्यक्त्वका पिपासु है, ऐसे भव्य जीवको सम्बोधन करके सम्यग्दर्शनकी प्रेरणा देते हैं कि—अरे प्रभु! यह तेरे हितका अवसर आया है; तू कोई मूढ़ नहीं किन्तु समझदार है, सयाना है, हित-अहितका विवेक करनेवाला है, जड़-चेतनका विवेक करनेवाला है. इसलिये तू श्रीगुरुका यह उत्तम उपदेश सुनकर अब तुरन्त सम्यग्दर्शन धारण कर। यहाँ तक आकर अब विलम्ब न कर। शरीरादिसे भिन्न आत्माका अनुभव कर, उसका अंतरंग उद्यम कर।

"समझ, सुन, चेत, सयाने !" हे सयाने जीव ! तू सुन, समझ और सावधान हो। चेतकर अविलम्ब सम्यक्त्वको धारण कर। मोहका अभाव करके सावधान हो और अपनी ज्ञानचेतना द्वारा अपने शुद्ध आत्माको चेत...उसका अनुभव कर। सर्वज्ञ

परमात्मामें जो है वह सब तेरे आत्मामे भी है—ऐसा ।ना
प्रतीति करके स्वानुभव कर। मृगकी भाँति बाह्यमें मत ढूंढ़, ५
अन्दर है उसे अनुभवमे ले।

देखो, गृहस्थ-पंडितने भी शास्त्राधारसे छहढालाकी कितनी सुन्दर रचना की है।

संसारमें भटकते-भटकते अनंतकालमे बड़ी कठिनाईसे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ; उसमे ऐसा जैनधर्म और सत्समागम मिला, सम्यक्त्वका ऐसा उपदेश मिला, तो अब कौन ऐसा मूर्ख होगा जो इस अवसरको व्यर्थ गँवा दे? भाई, काल गँवाये बिना अंतरंग उद्यम पूर्वक तू निर्मल सम्यग्दर्शन धारण कर। चार गतियोंमें बहुत दुःख तूने सहे, अब उन दुःखोंसे छूटनेके लिये आत्माकी यह बात सुन। सम्यग्दर्शनकी ऐसी उत्तम बात सुनकर अब तू जागृत हो और तुरन्त ही सम्यग्दर्शन कर ले। यह तेरा समझनेका काल है, सम्यग्दर्शन प्रगट कर। देखो, कैसा अच्छा सम्बोधन किया है! भोगभूमिमें भी भगवान ऋषभदेवके जीवको सम्यग्दर्शनका उपदेश देकर मुनिराजने ऐसा कहा था कि—हे आर्य! तू इसी समय इस सम्यक्त्वको ग्रहण कर...तुझे सम्यक्त्वकी प्राप्तिका यह काल है। 'तत् गृहाण अद्य सम्यक्त्वं तत्लाभे काल एव ते'..और सचमुच उस जीवने तत्क्षण ही सम्यग्दर्शन प्रगट किया। उसीप्रकार यहाँ भी कहते हैं कि-हे भव्य! तू अविलम्ब—इसी समय सम्यक्त्वको धारण कर! और सुपात्र जीव अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

हे जीव! जितना चैतन्यभाव है उतना ही तू है; अजीवसे तेरा आत्मा भिन्न है, रागादि ममत्वसे भी आत्माका स्वभाव भिन्न है; ऐसे आत्माकी प्रतीतिके बिना अनंतकाल व्यर्थ गँवा दिया, परन्तु अब यह उपदेश सुननेके बाद तू एक क्षण भी मत गँवाना तुरन्त ही अन्तरमें सम्यक्त्वका उद्यम करना, प्रत्येक क्षण अति मूल्यवान है; बहुमूल्य मणि–रत्नोंसे भी मनुष्यभव मँहगा है और फिर उसमें भी इस सम्यग्दर्शन–रत्नकी प्राप्ति महा दुर्लभ है। अनंतबार मनुष्य हुआ और स्वर्गमें भी गया, परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया—ऐसा जानकर अब तू सम्यग्दर्शन प्रगट कर। जहाँ सच्चा पुरुषार्थ है वहाँ काललब्धि भी साथमें ही है। पुरुषार्थसे काललब्धि भिन्न नहीं है; इसलिये हे भाई! इस अवसरमें आत्माको समझकर उसकी श्रद्धा कर! अन्य निष्प्रयोजन कार्योंमें काल न गवाँ।

परके कार्य तेरे नहीं हैं और न परवस्तु तेरे कामकी है; आनन्दकन्द आत्मा ही तेरा है, उसीको काममें ले, श्रद्धा–ज्ञानमें ले। परवस्तु या पुण्य–पाप तेरे हितके लिये काम नहीं आयेंगे अपने ज्ञानानन्दस्वभावको श्रद्धामें ले वही तुझे मोक्षके लिये कार्यकारी है। समयसारमें आत्माको भगवान कहकर बुलाया है। जिस प्रकार माता बच्चेका पालना झुलाते हुए गीत गाती है कि "मेरा मुन्ना बड़ा सयाना..." उसीप्रकार जिनवाणी माता कहती है कि हे जीव! तू भगवान है...तू सयाना–समझदार है, इसलिये मोह छोड़कर जाग, चेत और अपने आत्मस्वभावको देख...आत्मस्वभावका

सम्यक्‌दर्शन यह मोक्षका दाता है। सम्यग्दर्शन हुआ कि मोक्ष अवश्य होगा। तेरा गुणगान करके तुझे जगाते हैं...और सम्यग्दर्शन प्राप्त कराते हैं।

आत्मा अखण्ड ज्ञान-दर्शनस्वरूप है, वह पवित्र है, पुण्य-पाप तो मलिन हैं, उसमें स्व-परको जाननेकी शक्ति नहीं है, और भगवान आत्मा तो स्वयं अपनेको तथा परको भी जाने ऐसा चेतकस्वभावी है।—ऐसे आत्माके सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा और अनुभव करनेसे जो सम्यग्दर्शन हुआ उसका महान प्रताप है। सम्यग्दर्शनसे रहित सब बिना इकाइके शून्यके समान है, धर्ममें उसका कोई मूल्य नहीं है। सम्यग्दृष्टिको अन्तरमें चैतन्यके शांत-रसका वेदन है। अहा, उस शांतिके अनुभवकी क्या बात! श्रेणिक राजा वर्तमानमें नरकगतिमें होने पर भी सम्यग्दर्शनके प्रतापसे वहाँके दुःखसे भिन्न ऐसे चैतन्यसुखका वेदन भी उनको वर्त रहा है। पहले मिथ्यात्वदशामें महापापसे उन्होंने सातवें नरककी असंख्य वर्षकी आयुका बंध कर लिया, परन्तु बादमें वे सम्यक्त्वको प्राप्त हुए और सातवें नरककी आयु तोडकर पहले नरककी मात्र ८४००० चौरासी हजार वर्षकी आयु कर दी। वे राजगृहीके राजा गृहस्थाश्रममें अव्रती थे, तथापि भगवान महावीरके समवसरणमें क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, नरक आयु नहीं बदल सकी परन्तु उसकी स्थिति तोड़कर असख्यातवें भागकी कर दी। नरककी घोर यातनाओंके बीच भी उससे अलिप्त ऐसी सम्यग्दर्शन परिणतिके सुखका वह आत्मा वेदन कर रहा है। "बाहर नारकीकृत दुःख

भोगै, अंतर सुखरस गटागटी।"—इसप्रकार सम्यग्दर्शन सहित जीव नरकमें सुखी है, और सम्यक्‌दर्शनके बिना तो स्वर्गमें भी वह दुःखी है। श्री परमात्मप्रकाशमें कहा है कि—सम्यग्दर्शन सहित तो नरकवास भी अच्छा है और सम्यग्दर्शनसे रहित देवलोकमें निवास भी अच्छा नहीं...अर्थात जीवको सर्वत्र सम्यग्दर्शन ही इष्ट है, भला है, सुखकारी है, इसके बिना जीवको कहीं सुख नहीं है। सम्यग्दर्शनमें अतीन्द्रिय आत्मरसका वेदन है; देवोंके अमृतमें भी उस आत्मरसका सुख नहीं है। मनुष्य-जीवनकी सफलता सम्यग्दर्शनसे ही है, स्वर्गकी अपेक्षा सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है, तीन लोकमें सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है। ज्ञान और चारित्र भी सम्यग्दर्शन सहित ही तभी श्रेष्ठताको प्राप्त होते हैं।

श्रेणिकको नरकमें भी भिन्न आत्माका भान है और सम्यक्त्वके प्रतापसे कर्मोंकी निर्जरा हो रही है; वहां भी उन्हें निरन्तर तीर्थंकर-प्रकृति बंधती है। नरकसे निकलकर वह जीव इस भरतक्षेत्रकी आगामी चौबीसीमें प्रथम तीर्थंकर होगा। उनके गर्भागमनके छह मास पूर्व इन्द्र-इन्द्राणी यहां आकर उनके माता-पिताका संमान करेंगे, तथा उनके आंगनमें रत्नवृष्टि होगी। यह जीव तो अभी नरकमें होगा। बादमें जब माताके उदरमें आयेगा तब भी वह जीव सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान एवं अवधिज्ञान सहित होगा। मैं देह नहीं, नारकी भी मैं नहीं, और मनुष्य भी मैं नहीं, इस देहके छेदन-भेदन होनेसे मेरे आत्माका छेदन-भेदन नहीं होता, मैं तो चैतन्यसुखका अखण्ड पिण्ड आत्मा हूँ—ऐसी आत्मश्रद्धा नरकमें भी उस जीवको

सदा रहा करती है, और वह मोक्षमहलकी सीढ़ी है। नरकमें रहता हुआ भी वह जीव सम्यग्दर्शनके प्रतापसे मोक्षके मार्गमें ही गमन कर रहा है। अहो, सम्यग्दर्शनकी कोई अद्भुत अचिन्त्य महिमा है। ऐसे सम्यग्दर्शनको पहचानकर हे जीवो! तुम अपनेमें उसकी आराधना करो।

हे जीव! दुनियाँकी सब चिन्ता छोड़कर तू आत्मज्ञानके द्वारा अपना हित कर ले। दुनिया नहीं जानती कि सम्यग्दर्शन क्या चीज है! सम्यग्दर्शन किसीको इन्द्रियज्ञानसे देखनेमें नहीं आ सकता। अहा, सम्यग्दर्शन होते ही आत्मामे मोक्षकी मुहर लग गई, और परम सुखका निधान खुल गया। जो स्वयं अनुभव करे उसे ही उसके महिमाकी सच्ची खबर पड़े। जिस प्रकार महा भाग्यसे हाथमें आये हुए चिन्तामणिको कोई मूर्ख समुद्रमे फेंक दे, तो फिर वह हाथमें आना मुशकिल है; इसप्रकार चिन्तामणि जैसा जो यह मनुष्य अवतार, उसे यदि सम्यग्दर्शनके बिना खो दिया तो भवके समुद्रमें फिर उसकी प्राप्ति होना बहुत कठिन है, अतः इस दुर्लभ अवसरमें अन्य सब प्रपंच छोड़कर सम्यग्दर्शन अवश्य कर लेना चाहिए। यह अवसर चुकना नहीं चाहिए।

सम्यग्दर्शन जिसका मूल है ऐसा वीतरागधर्म—"दंसणमूलो धम्मो" जिनवरदेवसे उपदिष्ट है। २५०० वर्षके पूर्व महावीर तीर्थंकर इस भरतक्षेत्रमें ऐसा ही उपदेश देते थे और उसे सुनकर अनेक भव्य जीव सम्यक्त्वादिकी प्राप्ति कर लेते थे; अभी वर्तमानमें सीमंधरादि तीर्थंकर भगवंत विदेहक्षेत्रमें ऐसा ही उपदेश दे रहे हैं,

अन्तमें फिर एकबार कहते हैं कि हे जीव! आत्माको कर श्रद्धा करनेका यह अवसर आया है उसको सफल कर हे भाई! आत्माका स्वरूप समझकर हित करनेके योग्य तेरेमें है, तो तेरे ज्ञानादिको परमें (संसारके कार्योंमें) मत किन्तु आत्महितके कार्यमें जोड़ दे। उपयोगको अंतर्मुख वीतरागविज्ञान प्रगट कर। तेरी बुद्धिको आत्मामें लगाकर कर। तू स्वयं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हो...अधिक क्या कहें? चेत...चेत!

卐 जय हो सम्यग्दर्शनधर्मकी 卐

[छहढाला : तीसरी ढालके प्रवचन पूर्ण हुए]

वीतरागविज्ञान–प्रश्नोत्तर [३]

इसके पहलेके दो पुस्तकोमें छहढालाके दो अध्यायके प्रवचनोंमेंसे ४४० प्रश्न–उत्तर दिये गये हैं। यहां तीसरी ढालके ३५४ प्रश्न–उत्तर दिये जाते हैं–जो छहढालाके अभ्यासमें विशेष उपयोगी होंगे।

* प्रश्नः–दूसरी ढालके अंतमें क्या शिक्षा दी है?

* उत्तरः–हे जीव! 'अब आतमके हित पंथ लाग!'

४४१. जीवके हितका पंथ क्या है?

सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र।

२. जीवके दुःखका कारण कौन है?

मिथ्याश्रद्धा–मिथ्याज्ञान–मिथ्याचारित्र।

३. सुख किसको कहते है?

जिसमें आकुलता न हो उसे।

४. ऐसा सुख कहां है?

जीवकी मोक्षदशामें पूर्ण सुख है।

५. सुखी होनेके लिये जीवको क्या करना चाहिए?

जीवको मोक्षके मार्गमें लगना चाहिए।

४६५. सुख क्या है ?

आत्माका स्वभाव।

६. राग क्या है ?

वह आत्माका स्वभाव नहीं है।

७. किसको जाननेसे सुख होता है ?

सुख स्वभावी आत्माको जाननेसे सुख होता है।

८. सुख रागमें होता है कि वीतरागतामें ?

वीतरागतामें ही सुख है, रागमें सुख नहीं।

९. रागमें और पुण्यमें सुख माने तो ?

तो उसे राग और पुण्य रहित मोक्षकी श्रद्धा नहीं है।

४७०. आत्माके अतीन्द्रिय सुखको कौन जानता ?

धर्मी ही उस सुखको जानता है।

१. वह सुख कैसे अनुभवमें आये ?

वीतराग विज्ञानसे ही वह सुख अनुभवमें आता है।

२. पुण्य बांधनेके भावमें क्या है ?

आकुलता और दुःख।

३. पुण्यफल भोगनेमें क्या होता है ?

आकुलता और दुःख।

४. सुख कहां है ?

आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है, उसकी सन्मुखता ही सुख है।

४७५. किसके बिना सुख नहीं होता ?

वीतराग विज्ञान बिना किसीको भी सुख नहीं होता।

६. धर्मी जीव किसमें राजी है ?

धर्मी जीव इन्द्रपदके वैभवमें राजी नहीं होता, वह तो चैतन्यके आनन्दमें ही राजी होता है।

७. जीव हैरान क्यों हो रहा है ?

आत्मामें सुख है-उसको भूलनेसे।

८. बाह्य विषयोंमेंसे सुख क्यों नहीं मिलता ?

वहां सुख है ही नहीं-फिर कहांसे मिले।

९. धनवान सुखी दरिद्र दुःखी-यह सच्चा ?

नहीं; निर्मोही सुखी और मोही दुःखी।

४८०. जड़ वैभवमें सुख है ?

नहीं; सुख तो आत्माका वैभव है।

१. भगवान सिद्ध और अरिहंत क्या करते हैं ?

बाह्यसाधनके विना ही आत्माका आनन्द अनुभव करते हैं।

२. मोक्षार्थीको क्या करना चाहिये ?

मोक्षके मार्ग पर चलना चाहिये।

३. मोक्षका मार्ग क्या है ?

वीतराग रत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

४. इस मोक्षमार्गमें राग आता है ?

नहीं, राग तो बन्ध मार्ग है, वह मोक्षमार्ग नहीं।

४८५. सच्चा-सत्यार्थ मोक्षमार्ग कौनसा है?

जो निश्चय मोक्षमार्ग है वही सत्यार्थ-सच्चा मोक्षमार्ग है।

६. व्यवहार मोक्षमार्ग कैसा है?

वह उपचारसे निश्चयका कारण है।

७. उसको उपचारसे कारण कैसे कहा?

वह मोक्षमार्गका सहकारी है इसलिये, (वह स्वयं सच्चा मोक्षमार्ग नहीं परन्तु मोक्षमार्गमें साथ रहता है)।

८. सच्चा कारण कैसा है?

सच्चा कारण-कार्य एक जातिका होता है, इसलिये शुद्धताका कारण शुद्धता ही होती है, शुद्धताका कारण राग नहीं होता।

९. सच्चा मोक्षमार्ग कैसा है?

शुद्ध स्वद्रव्यके आश्रित है।

१०. उपचार मोक्षमार्ग कैसा है?

परद्रव्यके आश्रित है।

१. सच्चा मोक्षमार्ग जानकर क्या करना?

उसमें लगे रहना (शिवमग लाग्यो चहिए)।

२. निश्चय-व्यवहार दोनोंको जाना हुआ कब कहा जाय?

निश्चय एकका आदर करे तब।

३. निश्चय मार्ग कैसा है?

वह स्वयंके शुद्ध उपादानसे प्रगट हुआ है।

४९४. व्यवहार मार्ग कैसा है ?

वह पराश्रित है।

५. सच्चे मोक्षमार्ग कितने हैं ?

एक ही है।

६. मोक्षमार्गके दूसरे नाम क्या हैं ?

आनंद मार्ग, मोक्षकी क्रिया, आराधना, धर्म, मोक्षका पुरुषार्थ, शुद्ध परिणति, मोक्षका साधन, अंतर्मुखभाव, वीतरागता, वीतरागविज्ञान, तीर्थंकरोंका मार्ग आदि।

७. नय क्या है ?

नय सच्चे ज्ञानका प्रकार है।

८. क्या अज्ञानीको एक भी नय होता है ?

नहीं।

९. सच्चा नय किसको होता है ?

आत्माके स्वानुभवसे सम्यग्ज्ञान करे उन्हे।

५००. निश्चय के बिना व्यवहार कैसा है ?

मिथ्या है।

१. सम्यग्दर्शनके साथमें क्या होता है ?

ज्ञान–चारित्र–आनंद वगेरे अनन्त गुणोंका अंश प्रगट होता है।

२. क्या समुद्रमें डुबकी लगानेसे आनन्द होता है ?

चैतन्यसमुद्रमें डुबकी लगानेसे आनन्द होता है।

३. चैतन्यका पहाड़ खोदने पर उसमेंसे क्या निकलता है ?

सम्यग्दर्शनादि अनंत आनन्दमय रत्न निकलते हैं।

५०४. तीन किंमती रत्न कौनसे हैं ?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

५. अनंत रत्नोंकी खाण कौन है ?

चैतन्यप्रभु आत्मा स्वयं।

६. मेरुसे भी बड़ा चैतन्यरत्नका पहाड़ अज्ञानीको क्यों दिखता नहीं।

क्योंकि उसकी दृष्टि समक्ष मिथ्यात्वका तिनका लगा है।

७. अरिहंतकी आत्माको वास्तवमें पहिचाने तो क्या हो ?

अपने आत्माका सच्चा स्वरूप पहिचाननेमें आये, अर्थात दर्शनमोहका नाश होकर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

८. अरिहन्त प्रभुके द्रव्य-गुण-पर्याय, कैसे हैं ?

वह तीनों चैतन्यमय हैं।

९. क्या उसमें जरा भी राग है ? नहीं।

१०. ऐसा जाननेसे क्या होगा ?

स्वयंमें चेतन और रागकी भिन्नताका अनुभव होता है।

१. अपने शुद्ध आत्माकी पहिचान, और अरिहन्तदेवकी पहिचान उसमें पहेला कौन ?

दोनों साथमें होते हैं।

२. उसकी पहिचान कब होती है ?

ज्ञान पर्याय अंतरमें ढले तब।

३. क्या रागसे मोक्षमार्ग शुरु होता है ?

नहीं, आत्माके अनुभवसे ही मोक्षमार्गकी शुरुआत होती है।

५१४. चैतन्यप्रभुको लक्षमें लेनेसे क्या हुआ ?

आत्मामें आनन्द सहित केवलज्ञानके अंकुर फुटते हैं।

५. क्या शुभरागमेंसे ज्ञानके अंकूर आते हैं ?—नहीं।

६. आनन्दका मार्ग कौनसा है ?

आतमराम निजपदमें रमे वह आनन्दका मार्ग है।

७. रागादि भाव कैसे हैं ?

वह परपद है, दुःखका मार्ग है।

८. मोक्षका मार्ग किसमें समाता है ?

स्वपदमें अर्थात् निजस्वरूपमें समाता है।

९. साधकका स्वसंवेदनरूप भावश्रुतज्ञान कैसा है ?

वह केवलज्ञानकी ही जातिका है अतीन्द्रिय है।

५२०. सम्यक्चारित्र कैसा है ?

शुभाशुभरागसे निवृत्तिरूप और शुद्ध चैतन्यमें प्रवृत्तिरूप सम्यक्चारित्र है।

१. शुभाशुभभाव कैसा है ?

संसारका कारण है।

२. सम्यक्चारित्र कैसा है ?

मोक्षका कारण है रागसे रहित है।

३. विकल्पमें चेतना है ?

नहीं।

५३४. तो सुखका साधन क्या है?
वीतराग-विज्ञान ही सुखका साधन है।

५. रागसे लाभ नहीं मानता ऐसा कब कहा जाये?
रागसे भिन्न चेतनवस्तुका लक्ष करे तब।

६. केवलज्ञान और श्रुतज्ञान दोनोंकी जातमें क्या फरक है?
दोनों एक ही जातके हैं।

७. किसमें उपयोग जोड़नेसे सुख होता है?
सुखस्वरूपी आत्मामें उपयोग जोड़नेसे सुख होता है।

८. शीघ्र करने योग्य क्या है?
'स्वद्रव्यका ग्रहण शीघ्र करो'

९. रागमें थोड़ा भी आनन्द है?
नहीं; उसमें तो दुःख ही है।

५४०. राग दुःख है, क्या दुःखसे सुख साधा जा सकता है?
नहीं; सुखका साधन भी सुखरूप ही होता है।

१. अरिहंतको पहिचानकर जीव क्या करना चाहता है?
अरिहंत जैसे अपने ज्ञानस्वभाव तरफ ढलना चाहता है।

२. सम्यग्दर्शनके निमित्तमें कौन हो सकता है?
सच्चे देव-गुरु-शास्त्र ही निमित्त होते हैं।

३. वीतराग देव-गुरु-शास्त्र क्या सिद्ध करते हैं?
वे आत्माके सर्वज्ञस्वभावको सिद्ध करते हैं।

५५४. सरस और सुन्दर क्यों है ?

क्योंकि राग रहित है, रागमें सुन्दरता नहीं है।

५. निश्चय सम्यग्दर्शन क्या है ?

परसे भिन्नता आत्माकी रुचि वह सम्यक्त्व है।

६. वह सम्यक्त्व कैसा है ?

भला है, उत्तम है, अच्छा है, हितकर है, सत्य है।

७. सम्यग्ज्ञान क्या है ?

आत्मस्वरूपका जानना ही सच्ची ज्ञानकला है।

८. सम्यक्चारित्र क्या है ?

आत्मस्वरूपमें लीनता वह सम्यक्चारित्र है।

९. सुखी होनेके लिये जीवको क्या करना चाहिये ?

ऐसे मोक्षमार्गके उद्यममें लगे रहना चाहिये।

६०. सबसे श्रेष्ठ कला क्या ?

आत्मस्वरूपके जाननेरूप ज्ञानकला ही सबसे श्रेष्ठ है।

१. वह ज्ञानकला कैसी है ?

आनन्दकी क्रीड़ा करती करती केवलज्ञानको साधती है।

२. चौथा गुणस्थानमें अव्रती गृहस्थका सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

अहो; वह ज्ञान भी केवलज्ञानकी जातिका ही है, वह ज्ञान रागकी जातिका नहीं, रागसे भिन्न है।

३. क्या भगवान शुभरागको मोक्षमार्ग कहते हैं ?

नहीं, उसे तो भगवानने बंध मार्ग कहा है।

५७३. व्यवहार कारण कैसा है?
धर्मास्तिकाय वत् है।

४. अनंतवार स्वर्गमें जानेके बाद भी जीवको सुख क्यों नहीं मिला?
क्योंकि उसने आत्मज्ञान नहीं किया।

५. निश्चय सम्यक्त्व कैसा है?
वह सिद्धदशामें (सदैव) रहता है।

६. व्यवहार सम्यक्त्व कैसा है?
राग छूटते ही वह छूट जाता है।

७. आत्माका स्वभाव रागादिसे संयुक्त है क्या?
नहीं, वह रागादिसे रहित होते हुये भी उसे रागादिसे संयुक्त मानना वह अज्ञानीयोंका मिथ्या प्रतिभास है।

८. धर्मीको रागके समय मोक्षमार्ग है?
हां; परन्तु रागको वह मोक्षमार्ग नहीं मानता।

९. सात तत्त्व क्या हैं?
जीव-अजीव-आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा और मोक्ष।

५८०. इन सात तत्वोंका सच्चा स्वरूप कहां है?
जैनमार्गमें है, दूसरेमें नहीं होता है।

१. सम्यग्दृष्टि जीव जैनमार्ग सिवाय दूसरेको मानता है क्या?
नहीं, स्वप्नमें भी नहीं मानता।

२. सात तत्त्वकी श्रद्धा कब सच्ची होती है?
शुद्धनयसे उसमेंसे शुद्धात्माको निकाल ले तब।

९४. सिद्ध परमात्मा कितने हैं?......अनंत।

५. अजीवतत्त्वके कितने भेद हैं?
पांच; पुद्गल-धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल।

६. उसमें रूपी कितने हैं?..... एक पुद्गल।

७. शरीर, इन्द्रिय वगेरे क्या हैं?
ये सब पुद्गलकी रचना है, जीवकी नहीं।

८. जीव-अजीव वगेरे तत्त्वोंको कब जाना कहलाता है?
उसको एक दूसरेमें मिलान न करे तब।

९. आत्माको जाने बिना परको जान सकता है क्या?
ना; उससे तो परमें आत्मबुद्धि है।

६००. पुण्यतत्त्वका समावेश किसमें होता है?
आस्रव और बंधमें; धर्ममें नहीं।

१. शुभ आस्रव कैसे हैं?
वह भी संसारका ही कारण है, इसलिये छोड़ने जैसे है।

२. संवरतत्त्व कैसा है?
वह सम्यग्दर्शनादि वीतरागभावरूप है।

३. सच्ची निर्जरा किस रीतिसे होती है?
उपयोगकी शुद्धता बढ़नेसे।

४. मोक्ष अर्थात् क्या?
जीवकी संपूर्ण ज्ञान और सुखदशा वह मोक्ष है।

६१७. क्या नरकमें भी अंतरात्मा है?

हां; वहां भी जो असंख्य सम्यग्दृष्टि है वह अंतरात्मा है।

८. अंतरात्माके गुणस्थान कौन-कौन?...चारसे बारह।

९. उत्तम अंतरात्मा कौन?

सातसे बार गुणस्थानवर्ती शुद्धोपयोगी मुनि।

२०. मध्यम अंतरात्मा कौन?

देशव्रती-श्रावक और महाव्रती-मुनि।

१. सबसे छोटा अंतरात्मा कौन?

सम्यग्दृष्टि-अव्रती गृहस्थ।

२. ये तीनों प्रकारके अंतरात्मा कैसे हैं?

'ये तीनों शिवमगचारी'-वह तीनों मोक्षमार्गी हैं।

३. क्या गृहस्थ भी मोक्षमार्गमें स्थित है?

हां; 'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थः निर्मोहो...(रत्नकरंड श्रावकाचार)

४. मनुष्य लोकमें कितने अरिहन्त भगवान विचरते हैं?

लाखों अरिहन्त परमात्मा मनुष्य लोकमें विचरते हैं।

५. अरिहन्तको कौनसा गुणस्थान है?

तेरहवां और चौदवां?

६. देहातीओ (ग्रामजनो) को इतनी बड़ी आत्माकी बात कैसे समझने आये?

भैया तू देहाती नहीं है, तू तो अनंतगुण सहित भगवान है।

६३८. संस्कृत भाषामें सबसे पहले सिद्धांत सूत्र किसने रचा?
श्री उमास्वामीने मोक्षशास्त्र संस्कृतमें रचा; वे कुन्दकुन्दाचार्यदेवके शिष्य थे।

९. मोक्षशास्त्रपर किसने–किसने टीका रची हैं?
पूज्यपादस्वामीने सर्वार्थसिद्धि, अकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्तिक और विद्यानंदीस्वामीने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक ये तीन महान टीकाओ रची हैं।

६४०. मोक्षशास्त्रका पहला सूत्र क्या है?
"सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्राणि मोक्षमार्गः।"

१. समयसारकी ११ गाथामें सम्यग्दर्शन किसको कहा है?
भूतार्थस्वभावके आश्रय सम्यग्दर्शन कहा है।

२. नव तत्त्वको जाने, परन्तु शुद्धात्माको न पहिचाने तो?
–तो उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता, और उसको नवतत्त्वका ज्ञान भी सच्चा नहीं कहलाता।

३. वीतराग भगवान कौन मार्गसे मोक्षमें गये?
अंतर्मुखी शुद्धरत्नत्रयके मार्गसे मोक्षमें गये।

४. जीवको बहिरात्म अवस्थामें क्या था?
बहिरात्म अवस्थामें वे एकांत दुःखी थे।

५. अब अंतरात्मा होनेसे क्या हुआ?
आत्माका सच्चा सुख अनुभवमें आया।

६४६. रागादिभाव कैसे हैं ?

वे अंतरस्वभावके आश्रयसे उत्पन्न नहीं हुये हैं।

७. अंतरस्वभावके आश्रयसे क्या उत्पन्न होता है ?

वीतरागी ज्ञान-आनंदरूप शुद्धभाव उत्पन्न होता है।

८. हम भी परमात्माको पहिचान सकते हैं ?

हां; अंतरात्मा होकर परमात्माको पहिचान सकते हैं।

९. क्या जड़ शरीरमें जीवका धर्म होता है ?. .ना।

६५०. बी. ए. एम. ए. पढ़े, परन्तु आत्माको न पहिचाने तो ?

—तो वीतरागी आत्मविद्यामें वह मूरख है।

१. आत्माके हितके लिये कैसी विद्या शीखनी ?

जीव-अजीवके भेदज्ञानरूप वीतराग-विद्या शीखनी।

२. अंतरात्माका लक्षण क्या ?

—ज्ञान चेतनाकी अनुभूति।

३. ज्ञानचेतना सहित अंतरात्माको वास्तवमें कौन पहिचान सकता है ?

जो स्वयं अंतरात्मा हो वह।

४. क्या अकेले अनुमानसे ज्ञानीको पहचान सकते हैं ?...नहीं।

५. राग और शरीरका नाश होनेसे आत्मा जी सकता है ?

हां, आत्मा अपने चेतनस्वभावसे सदा जीता है।

६. आत्माको प्राप्त करनेवाले अंतरात्मा कैसे हैं ?

वे तो परमात्माके पाड़ोशी हैं।

६५७. क्या अंतरात्माको राग होता है?

किसीको होता है; सबको नहीं।

८. राग होने पर भी अंतरात्मा क्या करते हैं?

अपनी चेतनाको रागसे भिन्न अनुभव करते हैं।

९. अंतरात्माकी पहिचान करनेसे क्या होता है?

जीव-अजीवका सच्चा भेदज्ञान हो जाता है।

६०. शरीर और रागसे लाभ माने तो क्या होता है?

तो वह रागसे और शरीरसे छूट नहीं सकता, तथा वीतरागी मोक्षमार्गमें नहीं आ सकता अर्थात् संसारमें ही रहता है।

१. सम्यग्दृष्टिको अशुभभाव हो तब?

वह भी अंतरात्मा है।

२. मिथ्यादृष्टि शुभभाव करे तब?

तब भी वह बहिरात्मा है।

३. रागके समय अंतरात्माकी चेतना कैसी है?

उस समय भी उसकी चेतना रागसे अलिप्त ही है।

४. व्यवहार रत्नत्रयवाला अज्ञानी कैसा है?

अव्रती-जघन्य-अन्तरात्मासे भी हलका है; उसका स्थान मोक्षमार्गमें नहीं है।

५. सम्यग्दृष्टिकी परिणति कैसी है?

कोई अद्भुत-आश्चर्यकारी है; ज्ञान-वैराग्य सहित है।

६. अविरत सम्यग्दृष्टिको कितनी कर्मप्रकृति नहीं बन्धती?

उसको कुल ४३ कर्मप्रकृति बन्धी ही नहीं। (४१+२)

६६७. अविरत सम्यग्दृष्टिको संयम है ?

नहीं, संयम नहीं है परन्तु संयमकी भावना निरंतर रहती है।

८. छोटेमें छोटे सम्यग्दृष्टिकी आत्मश्रद्धा कैसी है ?

सिद्धभगवान जैसी।

९. कुन्दकुन्ददेवने मोक्षप्राभृतमें सम्यग्दृष्टिको कैसा कहा है ?

"ते धन्य है, कृत्यकृय है, शूरवीर है पंडित है"।

७०. सर्वज्ञ परमात्माकी जिसको श्रद्धा नहीं वह जीव कैसा है ?

वह जीव बहिरात्मा है, गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

१. सर्वज्ञका सच्चा स्वीकार कौन करता है ?

ज्ञानदृष्टि सहित सम्यग्दृष्टि ही सर्वज्ञका सच्चा स्वीकार करता है।

२. सर्वज्ञके स्वीकारमें क्या क्या आता है ?

अहो! सर्वज्ञके स्वीकारमें तो ज्ञानस्वभाव है; वह धर्मका मूळ पाया है, उसमें तो अपूर्व तत्त्वज्ञान है; राग और ज्ञानकी जुदाईका अनुभव है।

३. सर्वज्ञता कैसी है ?

अहो, उसकी क्या बात! वह तो अतीन्द्रिय ज्ञानरूप है परम आनन्दरूप है, राग-द्वेष रहित है विकल्पसे पार उसकी महिमा है।

४. शरीर होने पर भी सर्वज्ञपद हो सकता है ?...हाँ।

५. सिद्धभगवान कैसे हैं ?

जगतमें सबसे उत्तम (श्रेष्ठ) है, अनन्ता है, भवका अंत

करनेसे महंत है, अनन्त सुख सहित है देह रहित है ज्ञान-शरीरी है।

६७६. अनन्ता जीव-पुद्‌गल कहां रहते हैं?
आकाशके अनन्त वे भाग रूप लोकमें।

७. क्या अनन्त आकाशको ज्ञान पूरा जान सकता है?
हां; ज्ञानका सामर्थ्य उससे भी अनन्त है।

८. आत्माके ज्ञानमें इन्द्रिय तो निमित्त है न?
नहीं, स्वाधीन ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञानमें इन्द्रियका निमित्त भी नहीं, इन्द्रियका निमित्त तो पराधीन ऐसा इन्द्रिय ज्ञानमें है परन्तु उस ज्ञानको तो हेय कहा है, अतीन्द्रिय ज्ञान ही आनन्दका कारण होनेसे उपादेय है।

९. केवलज्ञानको कोई निमित्त है?
हां; ज्ञेयरूप पूरा जगत उसको निमित्त है।

८०. सत्य समझनेकी शरुआत किस रीतिसे करनी?
अपना वस्तुका स्वरूप लक्षमें लेकर।

१. हलन-चलन करे तथा बोले वह जीव—क्या यह सच है?
नहीं; जो जाने वह जीव, जिसमें ज्ञान न हो वह अजीव है।

२. आस्रव बंधका कारण क्या है?
जीवका अशुद्ध उपयोग।

३. पुण्य-पापके आस्रव तथा बन्ध कैसे हैं?
जीवको दुखका कारण है, अतः छोड़ने जैसे हैं।

६८४. मेंढ़क सम्यग्दृष्टि होता है तो उसको तत्त्वश्रद्धा होती है?
हां; जिनमार्ग अनुसार उसको बराबर तत्त्वश्रद्धा होती है।

५. तत्त्वको जानकर क्या करना?
हितकर तत्त्वको ग्रहण करना, और दुःखरूप तत्त्वको छोड़ देना।

६. दुर्भागी कौन है?
अवसर प्राप्त होनेपर भी जो आत्माको न पहिचाने वह।

७. विद्यार्थीओको क्या करना चाहिये?
उनको भी ऐसी वीतरागी पढ़ाई पढ़नी चाहिये।

८. परमेश्वर कैसे हैं?
वे जगतके जाननेवाले हैं परन्तु जगतके कर्त्ता नहीं।

९. जगतके पदार्थ कैसे हैं?
स्वयं सत् हैं दूसरा कोई उनका कर्त्ता नहीं।

६९०. क्या आत्माके अनुभव विना सर्वज्ञको पहिचान सकते हैं?
नहीं।

१. शरीर छिन्न-भिन्न हो तब भी जीव शांति रख सकता है क्या?
हां, क्योंकि जीव शरीरसे अलग है।

२. जीवकी भूल कब मिटे?
अपनी भूलको एवं अपने गुणको जाने तब।

३. जीवको सुख-दुःखका निमित्त कौन?
अपने गुण-दोष; दूसरा कोई नहीं; कर्म भी नहीं।

६९४. क्या आत्माका स्वभाव दुःखका कारण होता है ?
नहीं; आत्माका स्वभाव सुखका ही कारण है।

५. राग और पुण्य कभी भी सुखका कारण हो सकता है ?
नहीं; राग और पुण्य तो हमेशा दुःखका ही कारण है।

६. ऐसा जाननेवाला जीव क्या करता है ?
पुण्य–पापसे भिन्न होकर आत्मा तरफ परिणमता है।

७. पुण्यसे भविष्यमें सुख मिलेगा ये सच्चा है ?—नहीं।

८. अज्ञानी किसको आदर करते हैं ?—पुण्यको।

९. ज्ञानी किसको आदर करते हैं ?
पुण्य-पाप रहित ज्ञानचेतनाको।

७००. आत्माको अलग रखकर धर्म हो सकता है ?
कभी भी नहीं; आत्माको पहिचाने तब ही धर्म होता है।

१. सम्यग्दर्शनके निमित्त कौन हैं ?
सच्चे देव-गुरु-धर्म ही सम्यक्त्वके निमित्त हैं।

२. गुण क्या ? पर्याय क्या ? द्रव्य क्या ?
(टके) कायम रहे ते गुण; परिणमन हो ते पर्याय; गुण-पर्याय सहित द्रव्य।

३. वीतरागी देव कौन हैं ?—अरिहंत और सिद्ध।

४ निर्ग्रंथ गुरु कौन हैं ?—आचार्य–उपाध्याय–साधु।

५. सच्चा धर्म कौनसा है।—सम्यक्त्वादि वीतरागभाव।

६. इंडांमें जीव है ?
पंचेन्द्रिय जीव है; उसका आहार मांसाहारी ही है।

७०७ वीतरागी मार्गमें अहिंसा किसको कहते हैं?
रागादि भावोंसे रहित शुद्धभाव वह अहिंसा है।

८ हिंसा किसको कहते हैं?
जितने रागादि भाव हैं उतनी चैतन्यकी हिंसा है।

९ हिंसा–अहिंसाका ऐसा स्वरूप कहां है?
सर्वज्ञ देवके मतमें ही है, दूसरेमें कहीं नहीं है।

७१०. ऐसे अहिंसा धर्मको कौन पहिचानता है?
सम्यग्दृष्टि ही पहिचानता है।

१. जैनसाधु कैसे होते हैं?
हमेशा निर्ग्रंथ होते हैं; उनको वस्त्र होते नहीं।

२. इससे भिन्न साधुपद माने तो?
तो उसे सम्यक्त्वके सच्चे निमित्तकी पहिचान नहीं है।

३. जीव कौनसी विद्या भूतकालमें नहीं पढ़ा?
वीतरागी विज्ञानरूप सच्ची चैतन्यविद्या कभी नहीं पढ़ा।

४. ज्ञान आत्मासे कभी भिन्न क्यों नहीं होता?
–क्योंकि ज्ञान वह आत्माका स्वरूप ही है।

५. कर्म और शरीर कैसे हैं?
आत्मासे भिन्न जातिके हैं, वे आत्माके स्वरूप नहीं हैं।

६. क्या पुण्य-पाप वाला आत्मा सच्चा आत्मा है?
नहीं, सच्चा आत्मा चेतनारूप और आनन्दरूप है।

७. मुमुक्षु जीवको क्या साध्य है?
मुमुक्षु जीवको मोक्षपद सिवाय दूसरा कुछ साध्य नहीं है।

७१८ सच्चा आनन्द (मोक्षका आनन्द) कैसा है ?

"स्वयंभू" है, आत्मा ही उस रूप हुआ है।

९ साधक दशाका समय कितना ?—असंख्य समय।

७२०. साध्यरूप मोक्षदशाका समय कितना ?—अनंत।

१. सिद्धदशा मोक्षदशा कैसी है ?

परम आनंदरूप, सम्यक्त्वादि सब गुण सहित, आठ कर्म रहित.

२. क्या चौथा गुणस्थानका सम्यग्दर्शन रागवाला है ?

नहीं; वहां राग होनेपर भी सम्यग्दर्शन तो राग रहित ही है।

३. सम्यक्त्वके साथका राग कैसा है ?

वह बंधका ही कारण है; सम्यक्त्व वह मोक्षका कारण है।

४ क्या कोईको अकेला सम्यग्दर्शन होता है ?

नहीं; निश्चय पूर्वक ही सच्चा व्यवहार होता है।

५. क्या कोईको अकेला निश्चय सम्यक्त्व होता है ?

हां; सिद्धभगवान वगेरेको अकेला निश्चय सम्यग्दर्शन है।

६. चैतन्य देव कैसा है ?

अहो ! उसकी महिमा अद्भुत है, उसमें अनंत स्वभाव है।

७. सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट होता है ?

आनन्दके अपूर्व वेदन सहित सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

८. सम्यग्दर्शनके साथमें धर्मीको क्या होता है ?

निशंकतादि आठ गुण होते हैं।

७२९. चैतन्यसुखका जिसने अनुभव नहीं किया उसको क्या होता है।
उसको ठंडे-ठंडे रागकी–पुण्यकी–भोगकी चाहना होती है।

३०. सम्यग्दृष्टि जीव कहां रहते हैं?
चेतनामें ही तन्मय रहते हैं, रागमें नहीं रहते।

१. धर्म करेंगे तब पैसा मिलेगा क्या ये सच्च है?
नहीं; उसको धर्म मालूम ही नहीं, वह तो रागको ही धर्म समझता है।

२. धर्मसे क्या मिलता है?
धर्मसे आत्माका वीतरागी सुख मिलता है।

३. पुण्यरूप धर्म कैसा है?
वह संसार योगका कारण है, वह मोक्षका कारण नहीं है।

४. उस पुण्यको कौन अनुभवता है? अज्ञानी।

५. धर्मी जीव किसकी इच्छा करता है?
वह अपना चैतन्यचिंतामणीके सिवाय कोईकी इच्छा नहीं करता।

६. स्वर्गका देव आये तो?
—वह कुछ चमत्कार नहीं, सच्चा चमत्कार तो चैतन्य-देवका है।

७. वीतरागताको साधनेवाला धर्मी किसको नमस्कार करता है?
वीतरागीदेवके अलावा दूसरे कोई देवको वह नमस्कार नहीं करता?

७३८. अरिहन्तके शरीरमें रोग और अशुची होता है?—नहीं।

९. साधकके शरीरमें रोगादि होता है?

हां; परन्तु अंदर आत्मा सम्यक्त्वादिसे सुशोभित है।

४०. मुनियोंका आभूषण क्या है?—रत्नत्रय उनका आभूषण है।

१. ऐसे मुनिराजको देखनेसे अपनेको क्या होता है?

अहो! बहुमानसे उनके चरणोंमें मस्तक झुक जाता है।

२. धर्ममें बड़ा कौन?

जिसमें गुण ज्यादा वह बड़ा; धर्ममें पुण्यसे बड़ा नहीं कहा जाता।

३. धर्मी अकेला हो तो?

तो भी घबराता नहीं; सत्यमार्गमें वह निशंक है।

४. जैसे माताको पुत्र प्यारा है, वैसे धर्मीको क्या प्यारा है?

धर्मीको प्यारा है साधर्मी; धर्मीको प्यारा है रत्नत्रय।

५. धर्मीकी सच्ची प्रभावना कोन कर सकता है?

जो स्वयं धर्मकी आराधना करे वह।

६. धर्मीको चक्रवर्तीपदका भी अभिमान क्यों नहीं होता?

क्योंकि चैतन्य–तेजके पास चक्रवर्तीपद तुच्छ लगता है?

७. मनुष्यका उत्तम अवतार प्राप्त कर क्या करना?

चैतन्यकी आराधना द्वारा भवके अंतका उपाय करना।

८. पुत्रको दीक्षाके लिये माता कौनसी शर्तसे अनुमति दी?

अब दूसरी माता न करना पड़े, इस शर्तसे।

७४९. शरीरके सुन्दररूपका अभिमान धर्मीको क्यों नहीं ?
क्योंकि सबसे सुन्दर ऐसा चैतन्यरूप उनसे देखा है।

५०. कुरूप–काला–कुबडा मनुष्य धर्म कर सकता है ?...हां।

१. शरीरके सुन्दररूपसे आत्माकी शोभा है ?... नहीं।

२. आत्माकी शोभा किससे है ?....सम्यग्दर्शनरूप आभूषणसे।

३. सबसे ऊंचामें ऊंची पढाई क्या है ?
ज्ञान द्वारा आत्माकी अनुभूति प्राप्त हो वह।

४. सच्चा श्रुतज्ञानका फल क्या है ?.. आनन्द और वीतरागता।

५. बाह्य विद्या तथा इन्द्रियज्ञानका महत्त्व किसको लगता है ?
आत्माके केवलज्ञानस्वभावको जो नहीं जानते उनको।

६. धर्मीको बाह्य पुण्य वैभवका अभिमान क्यों नहीं ?
क्योंकि सबसे श्रेष्ठ ऐसा चैतन्य वैभव उसने देखा है।

७. धर्मीकी जाति और कुल कौनसे है ?
हम सिद्धभगवन्तोंके जातिके तथा तीर्थंकरोंके कुलके हैं।

८. भरत और बाहुबली लडे तब क्या हुआ ?
उस समय भी दोनोंकी ज्ञानचेतना रागसे भिन्न ही थी।

९. शुभरागसे धर्म माने उसको त्याग–वैराग्य होता है ?...नहीं।

६० क्या सम्यग्दृष्टि अव्रती होने पर भी प्रशंसनीय है ?
हां, अव्रती होने पर भी उसका सम्यक्त्व प्रशंसनीय है।

१. संत–ज्ञानी वारंवार क्या कहते हैं ?
थोडा भी काल गंवाये विना सम्यक्त्वको धारण करो।

७६२. सम्यग्दर्शन तो कोई भी धर्ममें हो सकता है क्या?
नहीं; जैनमार्ग सिवाय दूसरेमें सम्यग्दर्शन नहीं होता।

३. सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेसे जीवको क्या हुआ?
वह पंचपरमेष्ठीकी नातमें मिल गया।

४. सम्यग्दर्शन रहित शुभभावकी करनी कैसी है?
वह भी जीवको दुःखकारी है।

५. क्या नरकमें सम्यग्दृष्टि होते हैं?....हाँ असंख्यात हैं।

६. कोई सम्यग्दृष्टि–मनुष्य मरकर विदेहक्षेत्रमें उत्पन्न होता है?
नहीं।

७. जैनमार्ग कैसा है?.. वह भगवान होनेका मार्ग है।

८. तीनलोक और तीनकालमें जीवको हितकर क्या है?
सम्यक्त्व समान दूसरा कोई हितकर नहीं है।

९. जीवको जगतमें अहितकारी क्या है?
मिथ्यात्व समान अहितकारी दूसरा कोई नहीं है।

७०. मिथ्यादृष्टि जीव स्वर्गमें उत्पन्न हो तो?
वह भी संसार ही है; उसे वहाँ भी सुख नहीं है।

१. सुखी कौन है?
सुखी तो समकिती है जिसने चैतन्यतत्त्वको देखा है।

२. सम्यक्त्व बिनाकी सब क्रिया कैसी है?
दुःखकी ही देनेवाली है।

७७३ दुनिया क्या देखती है?

-दुनिया तो बाह्य वैभवको देखती है, चैतन्यको नहीं देखती।

४. चैतन्यके जितने धर्म हैं उन सबका मूल क्या है?

सब धर्मोंका मूल सम्यग्दर्शन है,—'दंसणमूलो धम्मो'।

५. जल्दीसे जीवको करने लायक क्या है?

—हे जीव! तुम सम्यक्त्वको जल्दी धारण कर...बिना प्रयोजन काल मत गुमावो।

६. ज्ञान और चारित्र दोनों सम्यक्त्व विना कैसे हैं?

वे सम्यक् नहीं, अर्थात मिथ्या हैं।

७. रागके रस्तेसे मोक्षमें जा सकते हैं? —नहीं।

८. मोक्षका रस्ता क्या है?—सम्यक्त्वसहित स्वानुभूति।

९. सम्यक्त्व और शुभरागमें कुछ संबंध है।

नहीं, दोनों भाव तद्दन भिन्न हैं।

७८०. सम्यक्त्व होनेसे क्या हुआ?

जो ज्ञान पहले भवहेतु था वह अब मोक्षहेतु हुआ है।

१. संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव कौनसी दो वस्तु भूतकालमें नहीं पाया?

एक तो जिनवर स्वामी, और दूसरा सम्यक्त्व।

२. भगवानके पासमें जीव तो अनंतबार गया है न?

हा,-परन्तु उसने भगवानको पहिचाना नहीं।

७८३. भगवानको पहिचाने तो क्या होता है?
आत्मा पहिचाननेमें आता है और सम्यग्दर्शन होता है।

४. अनंते जीव मोक्ष गये–वे सब क्या करके मोक्ष गये?
सम्यग्दर्शन प्राप्त करके अनंत जीवो मोक्ष गये हैं।

५ सम्यग्दर्शन बिना कोई मोक्ष पाया है?...नहीं।

६. सम्यक्त्वका अच्छा (सरस) महिमा सुनकर क्या करना?
हे जीवो! तुम जागो...सावधान हो...और स्वानुभव करो।

७. ऋषभदेवके जीवको सम्यग्दर्शन प्राप्त कराने हेतु मुनिने क्या कहा?
'हे आर्य! तुम इस समय इस सम्यक्त्वको ग्रहण करो... क्योंकि तुझे सम्यक्त्वकी प्राप्तिका काल है।

८. ऋषभदेवके जीवने ऐसा सुनकर क्या किया?
मुनिराजकी उपस्थितिमें ही जीवने तत्क्षण ही सम्यग्दर्शन प्रगट किया।

९ इस उदाहरणसे हमको क्या करना चाहिये?
सम्यक्त्वको धारण करो...'काल वृथा मत खोवो।'

९०. देवोंके अमृतसे भी ऊंचा रस कौन सा है?
सम्यग्दृष्टिका अतीन्द्रिय आत्मरस अमृतसे भी ऊंचा है।

१. सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेसे क्या हुआ?
अहो, सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेसे आत्मामें मोक्षका लिक्का लग गया।

७९२. क्या इस कालमें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है?

हां, बहुतने प्राप्त किया है।

३. इस तीसरी ढालमें किसका उपदेश है?

मोक्षके मूलरूप सम्यग्दर्शनकी आराधनाका उपदेश है।

४. यह उपदेश सुनकर क्या करना?

हे जीव! तू आज ही सम्यक्त्वको धारण करो।